अंधविश्वास—निर्मूलन

(अनेक भ्रमों, भ्रान्तियों, संशयों, पाखंडों, वहमों एवं अंधश्रद्धाओं का समाधान)

मदन रहेजा

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

कुछ कहने से पहले....

अंधविश्वास और अंधश्रद्धा के कारण जब मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती तो वह जो नहीं करना चाहिए वह सब-कुछ करता रहता है। क्या ग़लत है, क्या सही है उसे पता नहीं चलता और कभी-कभी उसे भ्रान्ति होने लगती है कि जो कुछ वह कर रहा है सही है। इसी भ्रान्ति में वह सदा दु:खी रहता है। अंधश्रद्धा और अंधविश्वास के कारण अनेक प्रकार के पाप कर बैठता है और पापकर्म का फल क्या हो सकता है—विद्वज्जन स्वयं समझ सकते हैं! देखादेखी में—बिना सोचे-समझे जो भी कर्म होते हैं, उनका परिणाम प्राय: ठीक नहीं होता; कभी-कभी तो इतना बुरा होता है कि फिर पछतावे के सिवा कुछ नहीं बचता।

परमपिता परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की है कि वह इसे इस्तेमाल करे और सत्यासत्य का निर्णय कर सके। शंका उत्पन्न होना मनुष्य होने का प्रमाण है, अत: स्वाध्याय करके, या आप्त पुरुषों के संग करके, शंकाओं का समाधान प्राप्त किया जा सकता है। शंका के हटने पर ही श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से ही प्रेम-रस का आनन्द मिलता है।

जहाँ अल्पज्ञता होती है वहाँ भ्रान्तियाँ भी होती हैं और श्रद्धा-प्रेम डगमगाता है। श्रद्धा-प्रेम न होने के कारण ही मनुष्य नास्तिक बन जाता है। ईश्वर के स्थान पर जड़-पाषाण की पूजा करना—अनहोनी बातों को मान लेना, चेतन को जड़ समझना और जड़ को चेतन मान लेना भी नास्तिकता है। ईश्वर को न मानना एक प्रकार की नास्तिकता है, परन्तु जड़-पाषाणों को मानना भी नास्तिकता का दूसरा रूप है। जहाँ भी भ्रान्ति हो, किसी विद्वान् से उसका निवारण कर लेना चाहिए या स्वयं स्वाध्याय कर उसका निवारण कर लेना चाहिए। ऐसा न हो कि यह अनमोल जीवन ऐसे ही व्यर्थ में बीत जाय और फिर इस चोले के लिए न जाने कितना इन्तजार करना पड़े।

ईश्वर न्यायकारी है, इसीलिए हर सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य के लिए वेदामृत पिला देता है। वेद-ज्ञान से ही मनुष्य सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से स्वत:प्रमाण है।

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। *यजुर्वेद 31/7*

हर युग में आप्त पुरुष आते-जाते रहते हैं, अत: ऋषिग्रन्थों का भी स्वाध्याय करना चाहिए। जो-जो ग्रन्थ वेद-विरुद्ध प्रतीत होते हैं उनको क़तई मानना नहीं चाहिए। आज के युग में बाज़ारों में अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। आर्ष और अनार्ष पुस्तकों में मिश्रण होने के कारण पता ही नहीं चलता कौन-सा ग्रन्थ ठीक है और कौन-सा ग्रन्थ ग़लत है। परिणामत: सब भटक रहे हैं सत्य की खोज में!

—मदन रहेजा

भूमिका

मेरा उद्देश्य किसी की भी निन्दा करना नहीं है, प्रत्युत पाखण्ड का पर्दाफ़ाश करना अपना धर्म समझता हूँ। पाखण्ड का खण्डन होना ही चाहिए। मनुष्य वही है जो असत्य से समझौता नहीं करता; केवल सत्याचरण करता है। इस उद्देश्य को लेकर इस पुस्तक को सत्यार्थ-प्रकाश हेतु प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मनुष्य को इस संसार में आए 1,96,08,53,100 वर्ष हो गए हैं और सृष्टि के आरम्भ में ही ईश्वर ने सब मनुष्यों के कल्याणार्थ तथा अपवर्ग हेतु वेदों का ज्ञान प्रदान किया। तो भी मनुष्य को ठीक तरह से मनुष्य बनना नहीं आया। ईश्वर हमारा पिता है और हम सब आत्माएँ उसकी अमृत-संतानें हैं। सुपात्र, इस जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं और रह जाते हैं साधारण मनुष्य। कारण क्या है कि हम अभी तक यहीं रह रहे हैं? कारण को ढूँढते जाएँगे तो हमारे अपने ही कर्म सामने आ खड़े होंगे।

परमपिता परमात्मा ने वेदों का अमृत तो पिला दिया, परन्तु अपनी ही अज्ञानता के कारण हमने उसे उलटा दिया है। परिणाम—हम वहीं के वहीं खड़े हैं। आत्मा स्वतंत्र सत्ता है, अतः अपनी मर्ज़ी से जो चाहे कर्म कर सकता है। किसी की रोक-टोक नहीं है। अल्पज्ञ है-अज्ञानी है-स्वभाव से ही स्वार्थी मिज़ाज का है, इसी कारण जब सुकर्म करता है—निष्काम कर्म करता है तो सुख पाता है और जब कभी कुकर्म-पापकर्म करता है तो फलस्वरूप दुःख प्राप्त करता है। ईश्वर सर्वज्ञ है, सबका पिता है, सृष्टि का नियंता है, अतः अपनी संतानों का सदा भला ही चाहता है। बच्चे ग़लती करते हैं तो माता-पिता उसे दंड देते हैं। समझाने से भी नहीं समझते तो कड़ी सज़ा देते हैं। माता-पिता

किसी बदले की भावना से या वैर-द्वेष की भावना से बच्चों को दंड नहीं देते; केवल उनकी भलाई के लिए—उनके उत्थान के लिए ही देते हैं। बच्चे कैसे भी नालायक हों, फिर भी मन में उनके लिए प्रेम वैसा ही बना रहता है। खाना-पीना बराबर देते हैं, परन्तु उनकी स्वतंत्रता को कहीं न कहीं अंकुश लगा देते हैं—यह उनके लिए सबक है, शिक्षा है। परमपिता परमात्मा सबका माता-पिता बंधु-सखा है। वह जीवात्मा का सबसे बड़ा मित्र है, अतः वह जीवात्मा के कर्मों का फल देता है। वह सर्वज्ञ है, हम अल्पज्ञ हैं, अतः सर्वज्ञ को ही अधिकार है कि वह अल्पज्ञों को सही मार्ग दर्शाए।

(वेद मूल रूप में सद्-ज्ञान के स्रोत हैं। उपनिषदों में वेदों की ही व्याख्या सरल करके बताई गई है। दर्शनों में कुछ गूढ़ सिद्धान्तों का पता चलता है।)

सृष्टि के आरम्भ में तो सब ठीकठाक रहा, किन्तु जैसे-जैसे मतमतान्तर बढ़ते रहे, मनुष्य में स्वार्थता पनपती रही। स्वार्थपूर्ति के कारण कहें या अज्ञानता के कारण, मनुष्य ग़लतियों पर ग़लतियाँ करता चला गया। अपने-अपने ग्रुप (संगठन) बनाते रहे, अपने-अपने मत-मज़हब-पंथ बनाते रहे, नतीजा—दुःखों का आक्रमण अधिक होने लगा। उन मत-मज़हब-पंथों में जो स्वाध्यायशील थे, उन्होंने समाज-सुधार का काम प्रारम्भ कर दिया—इस प्रकार गुरु-शिष्य की परम्परा आरम्भ हो गई।

(गुरु-शिष्य परम्परा तो सृष्टि के आदिकाल से ही है, क्योंकि धर्मगुरु तो स्वयं परमपिता परमात्मा ही हैं; उनके शिष्य बने—अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषि, जिन्होंने वेद का संदेश सब मनुष्यों को प्रदान किया।)

कालान्तर में गुरु-शिष्य परम्परा को नया रूप दिया इन दुकानदारों ने! थोड़े-से स्वाध्याय से बड़ी-बड़ी बातें करके साधारण लोगों को भटकाना शुरू हो गया—बदले में बिना हाथ-पैर चलाए रोटी, कपड़ा और मकान, बिना परिश्रम के प्राप्त होता रहा। देखादेखी में गुरुओं की दूकानें खुलती गईं। लोग भटकते चले गए। जो गुरु ने कहा वही सच समझ लिया और भ्रान्तियों ने जन्म ले लिया। अन्धविश्वास और

अन्धश्रद्धा बढ़ती गई। यहाँ तक कि गुरुओं को ही ईश्वर समझकर पूजा होने लगी।

रोशनी की एक झलक ही अंधकार को मिटाने में सक्षम होती है। समय-समय पर साधु-संतों-महात्माओं ने प्रकाश के दीये का काम किया। राम और कृष्ण जैसे महापुरुषों ने अपने समय में समाज का इतना सुधार किया कि युगों बाद आज भी उनके नाम 'भगवान' के रूप में स्मरण किये जाते हैं।

19वीं सदी में एक सूर्य का उदय हुआ जिसने पाखंडों का खंडन करने हेतु एक ज्वलंत पताका फहराई और उसकी रोशनी में अनेक प्रकार की भ्रान्तियों का निवारण हो गया। वह धर्मध्वजी थे—महर्षि स्वामी दयानन्द जिन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की। सूर्य की भाँति महर्षि ने संसार को सत्य के प्रकाश द्वारा ज्योतिर्मय बना दिया। अफसोस कि दुराचारियों को यह मंजूर नहीं था, क्योंकि उनके कुकर्मों का भांडा फोड़ दिया गया था। परन्तु जाते-जाते भी स्वामी जी ने वेद-उपनिषद्-दर्शन आदि अनेक आर्ष ग्रंथों के प्रमाण-सहित "सत्यार्थप्रकाश" नामक ग्रन्थ लिखकर संसार को भ्रम-भ्रान्तियों के गर्त से बचने का शाश्वत आलोक प्रदान किया।

बहुत सोच-समझकर हमने 'अंधविश्वास-निर्मूलन' पुस्तक लिखने का प्रयत्न किया है जिसमें केवल वेद की ही बातों का प्रमाण देकर समझाने की कोशिश की है कि किन-किन पाखंडों से बचना उचित है। दुःख-निवृत्ति के लिए जहाँ भी सहारा मिलता है, मनुष्य वहीं भागता है; परन्तु जब वहाँ भी वह बुद्धि का सहारा नहीं लेता तो परिणाम और भी भयंकर हो जाता है। विश्वास अंधविश्वास में बदल जाता है। श्रद्धा अंधश्रद्धा में परिवर्तित हो जाती है। यही कारण है संसार में दुःख फैलता जा रहा है। निराश होने की बात नहीं। इस पुस्तक के माध्यम से अनेक जीवन दोबारा सही मार्ग पर आ जाएँगे—ऐसी हमें आशा और विश्वास है।

ईश्वर सबको सद्बुद्धि प्रदान करे!

—मदन रहेजा

सम्मतियाँ

सत्यासत्य को जानने के लिए

संसार अंधश्रद्धा और अंधविश्वास से भरा है। कैसी आश्चर्यजनक बात है! यह विज्ञान का युग है। विज्ञान की वृद्धि होने पर अंधविश्वास घटना चाहिए, परन्तु सच तो यह है कि ये और बढ़ रहे हैं। आजकल के तथाकथित शिक्षित लोग भी झूठे साहित्य तथा पाखंडी गुरुओं के पीछे भागते हैं। आज ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि उनका गुरु सब प्रकार के दुःखों को दूर करने की क्षमता रखता है, परन्तु जब ये स्वयं बीमार पड़ते हैं तो वैद्यों के पीछे भागते हैं। इसी प्रकार जो गुरु ऐसी घोषणा करते हैं कि वे सब रोगों को दूर भगा सकते हैं, वही बड़े-बड़े अस्पतालों का निर्माण कर, अनेक रोगों के विशेषज्ञ डाक्टरों की नियुक्ति भी करते हैं। यह सब कैसी विडम्बना है? एक तो वैसे ही मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों तथा समस्याओं से घिरा हुआ है, उस पर ये गुरु, ईश्वर-प्रदत्त अपनी कला, कौशल एवं शक्ति का दुरुपयोग कर, इनकी परेशानियों को दूर करने के बजाय इन्हें और मूर्ख बना कर ऐसी उलझनों में फँसा देते हैं जहाँ से इन सीधे-सादे व्यक्तियों का मुक्त होना कठिन हो जाता है। बजाय इसके कि ये गुरु इन भोले-भाले लोगों को मानसिक शान्ति प्रदान करें एवं वैदिक ज्ञान की ज्योति जलाएँ, ये तथाकथित गुरु इनको मूर्ख बना रहे हैं और नरक की अग्नि में झोंक रहे हैं। ईश्वर की आज्ञा है—**"ज्ञान रूपी प्रकाश को फैलाओ और अज्ञानता रूपी अंधकार को मिटाओ"**, परन्तु ये गुरुजन अज्ञानता के अंधकार को फैलाकर इन लोगों को ज्ञान के प्रकाश से दूर कर रहे हैं।

अब समय आ गया है कि सुशिक्षित विद्वान अज्ञानता-ग्रस्त लोगों के गले में पड़े अज्ञानता रूपी फंदे के बन्धनों को काटें। इसका एक ही उपाय है कि इन लोगों की भ्रान्तियों, शंकाओं तथा भ्रमों के कारण मस्तिष्क में भरे भय को दूर करें। लोग मन्दिरों में और गुरु की शरण में अनेक प्रकार के भय के कारण जाते हैं। उदाहरण के तौर पर, वे समझते हैं कि ईश्वर की पूजा नहीं करेंगे तो ईश्वर उन्हें दण्डित करेगा तथा नरक में फेंकेगा। वेद भगवान कहते हैं—**'ईश्वर की पूजा प्रेम तथा श्रद्धा से**

की जाती है, भय से नहीं।' इनके भयों, भ्रान्तियों एवं समस्याओं का समाधान इन शिक्षित विद्वानों द्वारा प्रश्न तथा उनके उत्तर के माध्यम से ही हो सकता है।

इसी कार्य का प्रयास श्री मदन रहेजा ने किया है। इनकी लिखी 'अंधविश्वास-निर्मूलन' नामक यह पुस्तक इस प्रकार भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाले प्रश्नों का बहुत सुन्दर एवं सटीक उत्तर है। श्री मदन रहेजा ने यह पुस्तक बहुत सुन्दर, आकर्षक और सरल भाषा में लिखी है। आधुनिक पीढ़ी, जिन्हें ऐसी बातों को जानने का अवसर ही नहीं मिल पाता, उनके लिए तो यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। ईश्वर की कृपा इनके पुरुषार्थ की सफलता एवं इनके सुखमय जीवन के लिए इन पर सदा बनी रहे। जो लोग धार्मिक सिद्धान्तों को जानने की जिज्ञासा रखते हैं, सत्यासत्य को जानने के लिए उत्सुक हैं तथा आज के युग में फैली भ्रान्तियों का निवारण चाहते हैं, मैं समझता हूँ उन सबको इस पुस्तक के माध्यम से समुचित लाभ होगा।

मेरी शुभकामनाएँ तथा आशीर्वाद इनके साथ हैं।

स्वामी सत्यम्
उपकुलपति, वैदिक यूनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका

युक्तियुक्त निवारण

श्री मदन रहेजा जी की पुस्तक—"अंधविश्वास निर्मूलन" देखी। इस पुस्तक में जिनती भ्रान्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं, वे सब मैंने देखीं। कुछ भ्रान्तियों का 'निवारण' भी पढ़ा। परन्तु समय के अभाव के कारण पूरी पुस्तक नहीं पढ़ पाया।

इस पुस्तक में युक्ति और तर्क के आधार पर श्री मदन रहेजा जी ने जो भ्रान्तियों का निवारण प्रस्तुत किया है, वह एक प्रशंसनीय प्रयास है। आज के भौतिकवादी प्रगतिशील समय में भी इस प्रकार की भ्रान्तियाँ समाज में फैली हुई हैं। उनका निवारण करने के लिए जो श्री मदन जी ने प्रयास किया है, इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

आशा है, यह पुस्तक मानव-कल्याण में एक मील का पत्थर सिद्ध होगी।

शुभाकांक्षी,

विवेक भूषण दर्शनाचार्य
दर्शन योग महाविद्यालय, साबरकण्ठा (गुजरात)

सम्पादक की कलम से....

महाभारत का युद्ध समाप्त हुए लगभग पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो गए हैं परन्तु आज भी हममें से स्वार्थी प्रवृत्तियाँ समाप्त होने के बजाय और अधिक बढ़ती ही जा रही हैं। क्या हमने कभी विचार किया कि इसका क्या कारण है ? आज हमने भौतिक रूप से तो बहुत उन्नति कर ली है किन्तु मानसिक रूप से हम बहुत अधिक व्यथित हैं। सुख के साधन तो बढ़ते जा रहे हैं किन्तु हमारे दु:खों में बढ़ोतरी होती जा रही है। इसका कारण हम स्वयं ही हैं क्योंकि सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए हम इतने लालायित हैं कि हम अपने अन्तिम लक्ष्य को भी भूल गए हैं।

जिस प्रकार प्रकाश होने पर अँधेरा दूर हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी प्रकाश से अज्ञान रूपी अन्धकार लुप्त हो जाता है। जिन क्लेशों से हम संतप्त हैं उन सबकी जड़ अविद्या है। हम जब तक अविद्या से दूर नहीं होते तब तक क्लेशों से मुक्त नहीं हो सकते। इस अविद्या के कारण ही हम सभी अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास में फँसे हुए हैं। स्वाध्याय न होने के कारण जो कुछ भी सुनते हैं उस पर सोचे-विचारे बिना ही विश्वास कर लेते हैं और अनेक दु:खों को आमंत्रित कर लेते हैं। इस अंधश्रद्धा तथा अंधविश्वास से छूटने का एक ही उपाय है कि हम सब स्वाध्याय कर शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति करें तथा दु:खों से मुक्ति पाएँ।

आज के दौर में तथाकथित गुरुओं की स्थान-स्थान पर दुकानें खुल गई हैं। वे अपने आधे-अधूरे ज्ञान से स्वयं तो भ्रमित हैं ही, दूसरों को भी भ्रमित करते जा रहे हैं। इनकी वजह से अनेक भ्रान्तियाँ जन्म लेती जा रही हैं जिनमें पढ़े-लिखे लोग भी उनके शिकार बन जाते हैं। देखादेखी में सीधे-सादे लोग भी इन स्वार्थी गुरुओं के जाल में फँस जाते हैं। वर्तमान में टीवी आदि के माध्यम से इन पाखंडी गुरुओं की दुकानें खूब फल-फूल रही हैं जिसके कारण समाज में अंधविश्वास अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है।

आज आवश्यकता है इन अंधविश्वासों से मुक्ति पाने की। इसका एक ही उपाय है कि हम, लोगों तक सत्य ज्ञान को पहुँचाएँ। समाज में फैले अनेक भ्रमों, भ्रान्तियों एवं संशयों का निवारण श्री मदन रहेजा ने "अंधविश्वास निर्मूलन" पुस्तक के द्वारा बहुत ही सरल भाषा में, वैज्ञानिक तथा युक्तियुक्त ढंग से किया है कि आज की नई पीढ़ी भी इसे सरलता से समझकर लाभान्वित हो सकती है। उनका यह प्रयास वास्तव में एक प्रशंसनीय प्रयास है। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास में फँसे लोगों को अवश्य मुक्ति मिलेगी। ऐसा मुझे विश्वास है।

विश्व भूषण आर्य

(प्रधान : सिने म्यूज़िशियन एसोसिएशन मुम्बई)

क्रम-सूची

अंधविश्वास : 1 : ईश्वर सगुण साकार है।

निर्मूलन : सगुण का अर्थ साकार नहीं होता। सगुण का अर्थ है=गुण- सहित, और साकार का अर्थ है=आकार-सहित। ईश्वर आकारवाला नहीं है, फिर भी सगुण है। ईश्वर सत्+चित्+आनन्दस्वरूप है। वह सद्गुणों की खान है, अतः वह सगुण कहाता है। उसमें लेशमात्र भी दुर्गुण नहीं है, अतः वह निर्गुण भी कहा जाता है। परमपिता परमात्मा निराकार-सर्वशक्तिमान्-न्यायकारी-दयालु-अजन्मा-अनन्त-निर्विकार-अनादि-अनुपम-सर्वाधार-सर्वेश्वर-सर्वव्यापक-सर्वान्तर्यामी-सर्वज्ञ-अजर-अमर-अभय-नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्ता है—उसीकी उपासना करनी योग्य है। सभी जीवों के कर्मों का फल देनेहारा तथा सृष्टि के आरम्भ में सब मनुष्यों के हितार्थ वेदों का ज्ञान प्रदान करता है। ईश्वर एक है। उसके समान या उससे अधिक और कोई नहीं हो सकता।

अंधविश्वास : 2 : बामणों के पूजा-पाठ करने से भटकती आत्माओं को शान्ति मिलती है।

निर्मूलन : प्रायः लोगों का इस प्रकार का मानना है कि जो भी दुर्घटनाएँ होती हैं और दुर्घटनावश जिन मनुष्यों की मृत्यु हो जाती है, उनकी आत्माएँ भटकती हैं अर्थात् उन दिवंगत आत्माओं को शरीर नहीं मिलता, अतः यहाँ-वहाँ कहीं भी भटकती हैं। उन आत्माओं के लिए अगर पूजापाठ नहीं करवाया गया तो वे आत्माएँ भटकती रहेंगी और उनको शान्ति नहीं मिलेगी। यह भी एक भ्रान्ति है जिसका निराकरण अवश्य होना चाहिए।

मृत्यु होने पर शरीर यहीं रह जाता है जिसे शव या प्रेत कहते हैं। जब उसे जला देते हैं तब उसे भूत कहते हैं। 'भूत' कालबोधक

संज्ञा है जिसका तात्पर्य यह है कि वह बीते युग की कहानी बन गया, उसका भौतिक शरीर अब नहीं रहा, वह Past thing हो चुका है। शरीर से निकलते ही दिवंगत आत्मा यमाधीन हो जाती है, ईश्वर की व्यवस्था के आधीन हो जाती है। ईश्वर उस आत्मा को उसके पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार एक नया शरीर प्रदान करता है। उसे कौन-सी योनि मिलनी है—यह केवल ईश्वर ही जानता है। जैसे उसके कर्म होते हैं उन्हीं के अनुसार जन्म मिलता है।

आत्मा का भटकना संभव नहीं, क्योंकि मरने के पश्चात् आत्मा को जब तक नया शरीर नहीं मिलता, वह मूर्छितावस्था में ईश्वराधीन रहती है। आत्मा शरीर की अनुपस्थिति में कुछ नहीं कर सकती, क्योंकि शरीर उसके निवास का साधन है। साधन ही नहीं रहा तो आत्मा कुछ भी नहीं कर सकती!

झूठे बामण लोग स्वार्थी होते हैं और अपने भोले-भाले यजमानों की भावनाओं से खेलते रहते हैं और पूजापाठ के बहाने अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। पूजा-पाठ से कुछ नहीं होता। जैसे-जैसे समय बीतता है मृतक के परिवार में स्वाभाविक रूप से वातावरण शान्त हो ही जाता है। Time is a great healer अर्थात् समय सबसे बड़ा वैद्य है! सबसे पहले तो बामण जी को पूछना चाहिए कि दिवंगत आत्मा किस रूप में क्या कर रहा है और उसे कैसे मालूम हुआ कि वह आत्मा भटक रहा है?

ब्राह्मण और बामण में बहुत अंतर है। जो-जो गुण एक ब्राह्मण में होते हैं उनके विरुद्ध गुण बामण में होते हैं। सरल भाषा में जो अंतर आर्य और अनार्य में होते हैं—जो भेद विद्वान् और मूर्ख में होते हैं—जो फ़र्क साधु और शैतान में होते हैं—उसी प्रकार ब्राह्मण और बामण में भिन्नताएँ होती हैं।

एक सच्चे ब्राह्मण की परिभाषा—गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मण, अर्थात् ज्ञात्त के संचय और प्रसार में लगा विद्वान्। धनोपार्जन में उसकी रुचि नहीं होती; जितनी दक्षिणा मिले उसीसे निर्वाह करता है। ऐसे ब्राह्मण को श्रद्धा से कभी भी भोजन करा देने में कोई दोष नहीं है।

इसके विपरीत बामण वह है जो ब्राह्मण के गुणों से शून्य होता

है। इनका पढ़ाई-लिखाई से वास्ता नहीं। दूसरों के घरों में रसोइये का काम करनेवाले, या अधबटाई पर खेत जोतनेवाले बामण में ब्राह्मणत्व कहाँ? जैसे एक सच्चे साधु की ओट में सौ पाखंडी साधु पलते हैं, वैसे ही एक ब्राह्मण की ओट में सौ बामण मौज उड़ाते हैं।

मनुष्य के वर्ण की पहचान उसके गुण-कर्म-स्वभाव से ही होती है। पाखंडी लोगों को उनके गुण-कर्म-स्वभाव से पहचाना करें।

रही बात पूजा-पाठ की, तो हर आत्मा को अपने ही किये का फल मिलता है। कोई किसी के लिए नहीं करता और न ही कर सकता है। कर्त्ता ही भोक्ता होता है। 'करे कोई और भुगते कोई'—यह अन्याय की परिभाषा है। ईश्वर कभी अन्याय नहीं करता—वह न्यायकारी है—न कम, न अधिक; पूरा-पूरा कर्मफल प्रदान करता है। उसके दरबार में कोई सिफ़ारिश नहीं होती और न ही ईश्वर पक्षपात करता है क्योंकि वह न्यायकारी है। पूजापाठ स्वयं के लिए तो ठीक है, परन्तु दूसरों द्वारा किये गए पूजा-पाठ के प्रभाव से दिवंगत आत्मा को शान्ति प्राप्त हो जाए—ऐसा कभी नहीं हो सकता!

यज्ञ-कर्म ऐसा कर्म है जिससे कर्ता को तो फल मिलता ही है, औरों को भी लाभ पहुँचता है। जो कर्म सर्व-हितार्थ होता है वह यज्ञ कहलाता है। पूजा-पाठ अपनी ही उन्नति के लिए होता है—आध्यात्मिक उत्थान के लिए होता है। पूजापाठ बामण करे और दिवंगतात्मा को दुःखों से छुटकारा मिले, यह तो पोपलीला है। यह पाखंड है जिसकी कमाई ये बामण लोग खाते हैं!

वैदिक दृष्टिकोण : अन्त्येष्टि के पश्चात् दिवंगतात्मा के लिए कोई भी कुछ भी नहीं कर सकता और न ही करना चाहिए। दान-दक्षिणा अच्छे कर्म हैं, सुकर्म हैं, सबको करने चाहिएँ। दान-दक्षिणा, पूजा-पाठ से मनोबल बढ़ता है—आत्मोन्नति होती है जिससे अपने ही मन को शान्ति प्राप्त होती है। जो जीव चल बसा, उसके लिए कोई कुछ नहीं कर सकता। चल+बसा अर्थात् वह जीवात्मा यहाँ से चलकर और कहीं बसा है तो फिर आप कौन होते हैं उस प्रभु की व्यवस्था में बाधा डालनेवाले? क्या इससे प्रभु प्रसन्न होंगे? हमने अज्ञानता की हद पार कर ली है। इन यजमानों को और ऐसे बामणों को ज्ञान के

दीपक की आवश्यकता है। स्वार्थ के कारण ये ठग लोग मनुष्यता से ही गिर चुके हैं। जिनका अपने-आप में भरोसा नहीं होता वे ही इन बामणों के चक्कर में चकराते हैं।

सावधान हो जाइये! कोई आत्मा भटकती नहीं। ईश्वर की व्यवस्था में शंका करना—संशय करना मूर्खता है, नास्तिकता है।

ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखें—आत्मविश्वास बनाए रखें। प्रभु में ध्यान लगाए तो ज्ञान-दीप जल उठता है। यही विवेक है। विवेकी कभी भी पाखंडों में नहीं फँसता।

एक सच्चे ब्राह्मण और झूठे बामण में क्या अन्तर है, इसको और स्पष्ट करते हैं—

ब्राह्मण असली होता है और बामण नकली होता है। ब्राह्मण वैदिक धर्मानुसार संस्कार कराता है और बामण जो भी कर्मकांड करता है उसमें सब-कुछ उल्टा-पुल्टा होता है। संस्कार क्या है, किसे कहते हैं, इन अज्ञानी बामणों को कुछ पता नहीं होता। उनको केवल आपना स्वार्थ सिद्ध करना होता है; यजमान का हित हो या अहित, उससे कोई मतलब नहीं होता!

ब्राह्मण सदा ब्रह्म अर्थात् ईश्वरीय कार्य में लगा रहता है, परहित की सोचता है और परहित में लगा रहता है। वेदादेशानुसार स्वयं आचरण करता है एवं सबको वैसी ही प्रेरणा देता है। पाखंड से सदा दूर रहता है। दान-दक्षिणा का लालच नहीं करता। ब्राह्मण का मुख्य काम विद्या का प्रचार-प्रसार करना है, ज्ञान द्वारा अज्ञान को दूर करना है, सत्य मार्ग पर स्वयं चलना तथा औरों को चलाना—यह ही उसका धर्म है। जो अज्ञानी है, दूसरों की कमाई खाता है, मृतकों के नाम पर श्राद्ध खाता है, मंत्रों के स्थान पर और कुछ ही उच्चारण करता है, पाखंड करता है, तिलक लगाकर, माला पहनकर स्वयं को ब्राह्मण दर्शाता है—वह मूर्ख 'बामण' कहाता है।

अंधविश्वास : 3 : यात्रा से पहले वाहन के पहियों पर पानी छिड़कने से यात्रा सफल होती है!

निर्मूलन : यह शत-प्रतिशत तो भ्रान्ति नहीं है। इसमें वैज्ञानिक् तर्क अवश्य है। तेज़ रफ़्तार से चलनेवाले और लम्बी यात्रा करनेवाले

वाहनों के पहिये जल्द गर्म हो जाया करते हैं और यही कारण है कि कुछ घंटे यात्रा करने के पश्चात् थोड़ी देर के लिए वाहन को विश्राम दिया जाता है और पहियों पर पानी डालकर ठंडा करते हैं कि आगे सफर में कोई परेशानी न हो। परन्तु धीमी गति और छोटी-सी यात्रा करने के लिए वाहन के पहियों पर यात्रा से पहले पानी छिड़कना और ऐसा समझना कि इससे हमारी यात्रा सफल हो जाएगी—यह अज्ञानता या भ्रान्ति अवश्य है।

पूर्वकाल में रथ या घोड़ा-गाड़ियाँ हुआ करती थीं और उनके पहिये चलते-चलते टूट जाते थे या दुर्घटनाग्रस्त हो जाते थे। कारण वही कि गर्म होने के कारण उनके ऊपर लगा रबड़ पिघलकर टूट जाता था। ऐसी दुर्घटनाओं को रोकने के लिए आज भी उत्तर भारत में जहाँ बैलगाड़ियाँ या घोड़ेगाड़ियाँ चलती हैं, यही परम्परा जारी है कि यात्रा के पूर्व ही पहियों पर पानी छिड़कते हैं, और इसे शुभ मानते हैं।

वर्तमान में तो मोटर गाड़ियों का ज़माना है। हायवे (बड़े-चौड़े राजमार्ग) पर जगह-जगह विश्राम-स्थल बनाए गए हैं जहाँ लोग स्वयं भी विश्राम एवं जलपान करते हैं, साथ-साथ वाहनों को भी राहत मिलती है। यह एक Scientific (वैज्ञानिक) कारण है। कम दूरी की यात्रा के पूर्व वाहनों के पहियों पर पानी डालने से कोई लाभ नहीं; परन्तु साथ में अगर पानी का भरा डिब्बा ले लें तो बेहतर है, यह पानी आगे यात्रा में काम आता है!

अंधविश्वास : 4 : यात्रा में नींबू, मिर्च, पापड़, अचार, शराब आदि साथ में नहीं लेने चाहिएँ। इनसे सफ़र में दुर्घटना होने का अंदेशा रहता है!

निर्मूलन : इस भ्रान्ति में दो बातें हैं—अगर पापड़-अचार इत्यादि कहीं ले-जाने के लिए साथ में हैं तो कोई हर्ज नहीं है, कोई शंकावाली बात नहीं है; और अगर सफ़र में खाने-पीने के लिए ही लिये हैं तो वह ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि यात्रा सुखद हो यह सबकी इच्छा रहती है। नींबू और अचार की तेज़ खटास, शराब का नशा, तेज़ मिर्चों से जलन की आशंका बराबर बनी रहती है। यात्रा में इनके खाने-पीने

से हो सकता है कि यात्रा करनेवालों का स्वास्थ्य बिगड़ जाए और यात्रा का मज़ा किरकिरा हो जावे।

पापड़-अचार इत्यादि तामसिक वस्तुएँ हैं और स्वादिष्ट होने के कारण सफर में ये चीज़ें अधिक मात्रा में खाई जाती हैं, परिणामस्वरूप पेट में दर्द और बदहज़मी होने की संभावना होती है। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हो चुकी होंगी, इसीलिए पूर्वजों ने इस प्रकार की वस्तुएँ साथ में ले-जाने को मना किया होगा।

कुछ मात्रा में नींबू-मिर्ची तो भूख बढ़ाती हैं और जी मतलाने या बस-यात्रा में चक्कर आने पर नींबू का प्रयोग करना ठीक भी है। लंबे सफर में अगर ऐसी तीखी चटपटी वस्तुओं का प्रयोग नहीं किया जाए तो अच्छा ही है। सफ़र में जितना हो सके सात्त्विक, सादा और पौष्टिक भोजन खाना चाहिए जिससे यात्रा सुखद हो, अपने लिए और दूसरों के लिए भी!

दुर्घटना होने का अंदेशा होता है यह निराधार भ्रान्ति है। पापड़-अचार साथ लेने से अगर विमान दुर्घटनाग्रस्त हो सकता है तो फिर देशद्रोहियों के बम लगाने की क्या आवश्यकता है? दुर्घटना का होना अनेक कारणों पर निर्भर करता है। नींबू-मिर्ची-पापड़-अचार इत्यादि दुर्घटनाओं के कारण नहीं हैं। मिर्च-मसाले इत्यादि सब वाहनों द्वारा ही निर्यात होते हैं। गाड़ी, रेलगाड़ी, पानी के जहाज़, विमानों द्वारा ही अलग-अलग स्थानों तक लाए या पहुँचाए जाते हैं। इन वस्तुओं के कारण कोई दुर्घटना हुई हो—ऐसा कभी सुना या पढ़ा नहीं है। अतः ये सब व्यर्थ की भ्रान्तियाँ हैं, इन पर विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

अंधविश्वास : 5 : घर से निकलते समय यदि बिल्ली रास्ता काट ले तो यह अपशकुन होता है!

निर्मूलन : बिल्ली आपका रास्ता काटे या आप बिल्ली का रास्ता काटें—इससे क्या फ़र्क पड़ता है? बिल्ली अपने रास्ते जा रही है और आप अपने काम पर जा रहे हैं। बिल्ली के रास्ता काटने से अगर आपका काम बिगड़ता है तो बिल्ली का भी तो काम बिगड़ सकता है! ये सब बेकार की बातें हैं। जिनको कोई काम नहीं होता वे इस प्रकार की फ़िज़ूल की बातें किया करते हैं—स्वयं तो बेकार हैं, औरों

को भ्रम में डालकर तमाशा देखते हैं। बिल्ली का आपसे क्या सम्बन्ध है? ये नासमझी की बातें हैं। छींक आ जावे तो भी कार्य बिगड़ते हैं। जाते समय किसी ने पीछे से आवाज़ दी, तो भी काम बिगड़ते हैं। रास्ते में भंगी आड़े आ जाए, तो भी अपशकुन माना जाता है। किसी की अंतिम यात्रा जाती हो, तो भी खराब माना जाता है। अपने कुकर्मों को कोई नहीं देखता। काम खराब होता है तो दोष दूसरों पर मढ़ा करते हैं। कितना मज़ाक बना रखा है! जो लोग विमान द्वारा यात्रा करते हैं, न जाने कितने लोगों को लाँघ जाते हैं—कितने समुद्र लाँघ जाते हैं—कितने देशों को लाँघ जाते हैं—इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि जो नीचे लोग हैं उन सबके काम बिगड़ते होंगे!

प्रिय पाठकगणो! ऐसा कुछ नहीं होता। ये निकम्मों की बातें हैं जो स्वयं तो काम करते नहीं और दूसरों को भी आगे बढ़ने से रोकते हैं। क्या बिल्ली भी आपके भाग्य को बदल सकती है? क्या बिल्ली के रास्ता काटने से आपके किये-कराये पर पानी फिर सकता है? इस तरह की वैर-भावना रखना भी मूर्खता है।

धर्म यही सिखाता है कि सबसे प्रेम करो, वैर-भावना का त्याग करो, इसी से सुख और शान्ति प्राप्त होती है। जब हम अन्य प्राणियों के प्रति प्रेम-भाव रखते हैं, तो अन्य प्राणी भी हमारे प्रति प्रेम-भाव रखते हैं। द्वेष-भाव रखने से हमारे मन में भय की प्रतीति होती है।

अंधविश्वास : 6 : सपने में हम जो कुछ देखते हैं प्रायः वे सब सच होते हैं। सपने में अपने-आपको मरा देखो तो उम्र बढ़ती है!

निर्मूलन : *यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वदति,*
यद् वाचा वदति, तत् कर्मणा करोति,
यत् कर्मणा करोति, तत् समाधेन॥

सपने सपने ही हुआ करते हैं। इतनी सचाई तो अवश्य है कि जो व्यक्ति जिस प्रवृत्ति का होता है उसको वैसे ही सपने दीखते हैं। चोर-डाकू को हमेशा पुलिस के सपने आते हैं, साधु-संत को सत्संग के सपने आया करते हैं, साधारण मनुष्यों को आपसी झगड़ों के सपने आते हैं, छोटे-छोटे बच्चों को हँसने-खेलने के सपने आते हैं। यही

कारण है कि बच्चे नींद में कभी हँसते हैं तो कभी रोते हैं—खिलौना टूट गया—किसी ने देने से इन्कार किया तो रोते हैं। व्यापारी को सपने में भी व्यापार ही दिखता है—सपने में ही लेन-देन करता है। धार्मिक लोगों को सुखद सपने आते हैं। मूर्तिपूजक को शिवशंकर, राम, कृष्ण, माताओं के सपने आते हैं। जागृतावस्था में जो मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, उसको वैसे ही सपने आते हैं, अर्थात् ये स्वप्न-जागृतावस्था के संस्कारों की परछाइयाँ हैं। स्वप्नावस्था में मन अपनी ही सृष्टि का सृजन करता है, अपनी कामनाओं को पूर्ण करने की चेष्टा करता है—इसी को सपना कहते हैं।

गाढ़ निद्रा या सुषुप्ति की अवस्था में कोई स्वप्न नहीं आते, क्योंकि सुषुप्ति-अवस्था में मन भी विश्राम करता है।

यह देखा गया है कि जब मनुष्य की इच्छाएँ जागृत अवस्था में पूर्ण नहीं होतीं और इच्छाएँ प्रबल होती हैं तो उसी का बना-बिगड़ा रूप वह स्वप्न में देखा करता है। इसका यह मतलब नहीं कि सपने सच हुआ करते हैं। कतई नहीं। जिस मनुष्य की जिस-जिस कार्य में रुचि होती है या वह उस कार्य को करने में असफल हो जाता है तो उसका अंतिम समाधान हमारा अचेतन मन सपने में ही खोजता है। दिन में सोचता रहता है कि काश ऐसा हो! यही भावना, यही प्रवृत्ति रात में भी नींद नहीं आने देती। सोचते-सोचते सोते हैं, वही विचार सपना बनकर दीखने लगते हैं।

हम लोगों को मरते देखते हैं—किसी न किसी की शव-यात्रा प्रायः देखते हैं। मन में यह बात घर कर लेती है कि हम भी एक दिन ऐसे ही इस जगत् से चले जाएँगे। जब कभी अपने ही घर के किसी सदस्य की मृत्यु होती है तो जो कुछ भी हम अपनी आँखों से देखते हैं और मरनेवाले के स्थान पर जब हम अपने-आपको रखते हैं तो दिल दहल जाता है, वैराग्य आने लगता है—मन दुःखी हो उठता है। बार-बार वही दृश्य सामने आता है—श्मशान का दृश्य—मृत-शरीर का अग्नि में जलने का दृश्य···इस प्रकार की सब बातें जब मस्तिष्क में घर कर लेती हैं तो रात्रि में भी वही बातें चलचित्र की भाँति सामने आने लगती हैं। परिणामस्वरूप वैसे ही स्वप्न आते हैं। कभी-कभी

हम अपने-आपको मरा हुआ देखते हैं, घर के सदस्य रोते दिखाई देते हैं और हम झटके से नींद में से डर के मारे उठ खड़े होते हैं—शरीर काँपने लगता है। यह एक स्वाभाविक क्रिया है।

जब मनुष्य का हृदय कमज़ोर होता है या उसे मृत्यु के बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं होता तो यही होता है। जब उस सपने का विस्तार से जिक्र औरों से करते हैं तो वे लोग सांत्वना देते हुए कहते हैं कि कोई बात नहीं—इससे आपकी उम्र लंबी होगी।

सच मानिए—सपने सपने ही होते हैं, प्रायः मन के विचार दर्शाते हैं। सपने कभी-कभी सच भी हुआ करते हैं तो कभी-कभी उल्टे भी हुआ करते हैं, अतः इन पर अधिक ध्यान न देकर व्यर्थ में समय नहीं गँवाना चाहिए। जो होना है वह अवश्य होगा, मृत्यु होनी है तो उसे रोका नहीं जा सकता, अतः ऐसी बातों से घबराना नहीं चाहिए।

कहते हैं कि सपने में साँप देखें तो अच्छा होता है, शेयरों के भाव बढ़ते हैं; खाई देख लें या बाढ़ देखें तो व्यापार में गिरावट आती है; अपने-आपको हँसता देखें तो बुरा ही बुरा होता है; काल्पनिक देवी-देवता दिख जाएँ तो जीवन सफल होता है; राक्षस इत्यादि दिखें तो बुरी बात है; हत्या देखें तो भी अशुभ होता है; अपने-आपको पक्षियों की भाँति उड़ता हुआ देखें तो व्यापार में वृद्धि होती है; फल-फूल-तितलियाँ देखें तो घर हरा-भरा समृद्ध होता है; अपने किसी घर के सदस्य को मृत देखें तो अशुभ माना जाता है; देश पर दूसरे देश का आक्रमण देखें तो युद्ध की संभावना होती है—इस प्रकार के स्वप्नों पर अक्सर लोग टीका-टिप्पणी करते हैं, परन्तु इन पर विश्वास करना नासमझी है।

सपना तो सपना ही होता है—सच नहीं होता!

अंधविश्वास : 7 : हीजड़े(नपुंसक व्यक्ति) को सताना नहीं चाहिए क्योंकि उसकी बद्दुआ लगती है!

निर्मूलन : किसी को भी सताना नहीं चाहिए—यही धर्म है। जैसा व्यवहार हम अपने लिए दूसरों से चाहते हैं, वैसा ही व्यवहार हमें भी दूसरों के साथ करना चाहिए—यही धर्म की परिभाषा है।

हीजड़े भी इन्सान हैं परन्तु वे स्त्री या पुरुष के समान नहीं होते।

उन्हें स्त्रीलिंग या पुंल्लिग श्रेणी में नहीं माना जाता। वे दया के पात्र हैं। परमपिता परमात्मा ने उनको उन अंगों से वंचित रखा है जिनसे सन्तानोत्पत्ति होती है, अतः उनका मज़ाक उड़ाना ठीक नहीं है। उनका भी दिल होता है—मन होता है—भावनाएँ होती हैं, अतः उनका मज़ाक उड़ाकर अपने-आपको गिराना नहीं चाहिए। उनके पास कोई कमाने का तरीका नहीं है, अतः उनको धन-वस्त्र देना चाहिए जिससे उनकी भी जीविका चलती रहे।

प्रायः लोग उनकी नकल करते हैं या छेड़खानी करते हैं जिससे वे (हीजड़े) अपशब्द बोलते हैं। यह उनका दोष नहीं है। अधिक सताने से वे शाप देते हैं। घर में शादी हो या किसी के यहाँ बच्चा पैदा होता है तो ये हीजड़े बधाई देने आते हैं और कुछ रुपयों की माँग करते हैं। उनका यही धंधा है। थोड़ा-कुछ मिलने पर वे लोग दुआएँ भी देते हैं।

अब इन लोगों की दुआओं का या बुद्दुआओं का प्रभाव पड़ता है या नहीं—सोचनेवाली बात है।

कहे-सुने का प्रभाव तो पड़ता ही है। माता-पिता-बुजुर्ग आशीर्वाद देते हैं—प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। अच्छा लगता है—मनोबल बढ़ता है, आत्मिक शक्ति उन्नत होती है। दूसरी ओर कोई अपशब्द कहते हैं तो मानसिक संतुलन विचलित हो जाता है—ईर्ष्या-द्वेष-बदले की भावना उत्पन्न होने लगती है—वैर-विरोध बढ़ता है। अब आप स्वयं ही निर्णय करें कि क्या हमें किसी को तंग करना चाहिए या किसी का मज़ाक उड़ाना चाहिए? ये बुरी बातें हैं; इन पर अंकुश लगाना ही ठीक है। जो सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करता है वह सदा सुखी रहता है। जो दूसरों से अभद्र व्यवहार करता है सदा दुःखी रहता है!

हीजड़े भी तो इन्सान हैं, उनकी बद्दुआ क्यों लेते हैं? जी हाँ, बद्दुआ असर करती है। मन से निकली 'हाय' जिन्दगी तबाह कर सकती है, अतः कभी किसी का मन मत दुखाओ। जिस प्रकार बड़ों के आशीर्वाद से चार चीजें बढ़ती हैं—(1) आयु, (2) विद्या, (3) यश, और (4) बल, इसी प्रकार किसी के दिल से निकली 'आह' सर्वनाश कर सकती है। अतः सावधान रहें!

अंधविश्वास : 8 : "ईश्वर अवतार लेता है"—भगवान श्री कृष्ण ने तो गीता में ऐसा ही कहा है।

निर्मूलन : अवतरण कहते हैं—ऊपर से नीचे उतरना। आत्मा एकदेशी है, अतः उसका अवतरित होना सम्भव है, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकतीं। पहले भगवान किसे कहते हैं इसे समझने की आवश्यकता है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य तेजसः यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव, षष्णां भग इतींगिना॥

(विष्णु पुराण)

अर्थात् जिस मनुष्य में छः गुण विद्यमान होते हैं उसे भगवान कहा जाता सकता है। वे गुण हैं—ऐश्वर्य-तेज-यश-श्री-ज्ञान और वैराग्य। श्रीकृष्ण योगिराज तो थे ही, साथ-साथ भगवान भी थे। मनुष्य में अगर ये उपर्युक्त गुण हैं तो वह भगवान कहाने योग्य बनता है। ईश्वर गुणों का भण्डार है, उसमें अनेक गुण हैं, अतः वे भी भगवान कहाते हैं। परन्तु एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि मनुष्य भगवान तो बन सकता है, परन्तु ईश्वर कभी नहीं बन सकता। अक्सर लोग इसमें भ्रमित हो जाते हैं कि भगवान और ईश्वर एक ही हैं। यह ग़लत है।

अब अवतार तो वही ले सकता है जो एकदेशी अणु हो, जैसे आत्मा! परमात्मा सर्वव्यापक है, अतः उसके ऊपर से नीचे उतरने का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर को अवतार के रूप में मान लेना अज्ञानता है।

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप – निराकार – सर्वशक्तिमान् — न्यायकारी-दयालु-अजन्मा-अनन्त-निर्विकार-अनादि-अनुपम-सर्वाधार-सर्वेश्वर-सर्वव्यापक – सर्वान्तर्यामी – सर्वज्ञ – अजर – अमर – अभय – नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है। जो स्वयं इस संसार को बनाता है, सँवारता है और संहार करता है, उस सर्वत्र विद्यमान को अवतरण की क्या आवश्यकता है?

ईश्वर निराकार है—निर्विकार है—सर्वज्ञ है, फिर उसको माँ के पेट में 9 महीने 10 दिन रहने की क्या आवश्यकता है? निराकार होकर साकार होना असंभव है। भला वह परमात्मा विकारी क्योंकर बन

सकता है? सर्वज्ञ होकर वह अल्पज्ञ क्यों बनना चाहेगा? ईश्वर तो सर्वव्यापक है, ऐसा कौन-सा स्थान है जहाँ वह पहले से विद्यमान नहीं? वह सदा से एकरस है, शुद्ध-पवित्र है—वह सबका माता-पिता-बंधु-सखा है, फिर उसे किसी का बेटा बनने की क्या पड़ी है?

श्रीकृष्ण भगवान योगेश्वर थे, उनको अच्छे-बुरे का भलीभाँति ज्ञान था। महान् आत्मा होने के कारण उनकी प्रबल इच्छा थी कि जब-जब धरती पर अन्याय के कारण अधर्म फैलता है उस समय अगर मैं अवतरित होकर लोगों को अधर्म से बचाऊँ और धर्म की फिर से स्थापना करूँ, तो इस कथन में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? महात्मा लोग अवतरित होते ही इसलिए हैं कि भटके हुओं को सही मार्ग दिखाएँ तथा उनको लक्ष्य तक पहुँचाने में ही उनका मार्ग प्रशस्त करें।

श्रीकृष्ण भगवान योगी थे—दूरंदेशी थे। अगर उनकी यह इच्छा रही होगी तो क्या बुराई है? उनके कथन को हम लोगों ने ग़लत समझा है कि वे जब चाहें जन्म ले सकते हैं। मुक्तात्माएँ भी यही चाहती हैं कि वे संसार में जाकर सबका मार्गदर्शन करें।

ईश्वर की व्यवस्था के बिना कोई भी आत्मा स्वेच्छा से शरीर धारण नहीं कर सकता और न ही शरीर का निर्माण कर सकता है।

ज़रा सोचिये और विचारिये कि ईश्वर जन्म क्यों लेना चाहेगा या अवतार लेना क्यों चाहेगा? दुष्ट लोगों का सफ़ाया करने के लिए? परमपिता परमात्मा कभी बिना कारण के किसी को कष्ट नहीं देता। मनुष्य मरता है अपने ही कारणों से। प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध आचरण से शरीर में परिवर्तन आता है—शरीर रोगी बन जाता है और अंतिम परिणाम मृत्यु होती है। मृत्यु के अनेक कारण होते हैं।

ईश्वर सबको सुधरने का अवसर देता है। मनुष्य बुरा हो या अच्छा—सबको जीने का अधिकार मिलता है। किसी विशेष व्यक्ति का नाश करने के लिए ईश्वर अवतार ले, यह तो ईश्वर का निरादर करना है। कंस को मारने के लिए श्रीकृष्ण ने जन्म लिया या अवतार लिया—यह धारणा वेदविरुद्ध सिद्ध होती है। अगर ऐसा है तो हर मनुष्य को मारने के लिए एक-एक मनुष्य को पैदा होना पड़ेगा। कहते हैं न—

ईश्वर की लाठी चलती है तो आवाज नहीं करती ! भला ईश्वर स्वयं अवतार ले—संसार के चक्कर में आवे—खावे-पीवे—विवाह करे—उससे भी बच्चे हों—संसारी बन जावे और अन्त में मृत्यु को प्राप्त होवे तो फिर ब्रह्माण्ड को कौन चलाएगा ?

अवतारवाद को माननेवाले ज्ञानी-ध्यानी लोग नहीं होते। भगवान की तस्वीर दिखाकर उसे ईश्वर का अवतार मानते हैं और दूसरों को मनवाते हैं और इन्हीं चित्रों की आड़ में कौन-से गुल खिलाया करते हैं—सभी जानते हैं। इनके कारनामे समाचारपत्रों में प्रायः छपते रहते हैं। परमपिता परमात्मा की कोई तस्वीर-मूरत नहीं होती, न ही वह काया धारण करता है। वह परमात्मा निराकार है, अकाय है, सर्वव्यापक होने से उसका अवतार नहीं हो सकता! '**स पर्यगात् शुक्रमकायम्**.....' मन्त्र यही तो घोषणा करता है।

मनुष्य का अवतरण अवश्य हो सकता है—महापुरुषों का अवतरण संभव है—देवी-देवताओं अर्थात् (दिव्यगुण वाले महापुरुषों) का अवतरण होता है, परन्तु ईश्वर को ऐसे बंधनों में बाँधना केवल नामसमझी की ही बात है। ये स्वार्थी लोगों की पोपलीलाएँ हैं, और कुछ भी नहीं है।

जो वस्तु दिखती है वह प्रकृति का विकृत रूप है। सृष्टि में भी अनेक वस्तुएँ सूक्ष्म होने के कारण नहीं दिखतीं, परन्तु उनका अस्तित्व है जो जड़ होता है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही चेतन हैं और दोनों ही निराकार हैं अर्थात् उनको साकार रूप में लाना असंभव है। उनको ज्ञान द्वारा अनुभव किया जा सकता है जिसको साक्षात्कार कहते हैं। याद रहे—आत्मा एवं परमात्मा इन चर्मचक्षुओं से कभी नहीं दिख सकते। दोनों ही अध्यात्म के विषय हैं जो (मन्त्र) योगसाधना से, स्वच्छ और पवित्रात्मा में ही प्रकट होते हैं।

न कभी ईश्वर का अवतार हुआ है और न कभी भविष्य में होगा—यही सत्य है, यही वैदिक मान्यता है। ईश्वर निराकार है और निराकार ही रहेगा।

प्रमाण

1. योगदर्शन समाधिपाद—24

ईश्वरस्य च तत्सम्बन्धो न भूयो न भावी ।।

2. श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय—3, श्लोक—19

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

अंधविश्वास : 9 : रात्रि के समय चाबियाँ नहीं खटकानी चाहिएँ।

निर्मूलन : ईश्वर ने रात्रि विश्राम करने के लिए ही बनाई है। रात्रि का समय शांत होता है। अब ऐसे समय कोई बच्चा या कोई अन्य व्यक्ति चाबियों से खेले, आवाज़ करे तो कितना खराब लगता है! इससे औरों को कष्ट होता है तथा विश्राम करने में बाधा आती है। इसीलिए बड़े कहते हैं कि रात को चाबियों की आवाज़ नहीं करनी चाहिए।

इसमें किसी प्रकार का वहम या भ्रान्ति नहीं रखनी चाहिए।

अंधविश्वास : 10 : शनिवार के दिन शनि देवता की मूर्ति पर राई का तेल चढ़ाने से शनि का दुष्प्रभाव कम होता है—शनि देवता सताता नहीं, अपितु प्रसन्न होता है।

निर्मूलन : सबसे पहले तो शनि ग्रह इतना बड़ा है तो उसकी मूर्ति का निर्माण पृथ्वी पर कैसे हो सकता है? शनि ग्रह गोल है परन्तु लोगों ने शनि की तस्वीर काले पत्थर को तराश कर, उसकी आँख-नाक इत्यादि बना रखी है। यह काल्पनिक काले पत्थर को शनि मान लेना अज्ञानता को दर्शाता है। वैज्ञानिक युग में भी लोग इतने अन्धविश्वासी हैं इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। पत्थर की प्रतिमा पर राई का तेल चढ़ाना कहाँ की समझदारी है?

पुराणों में एक कथा आती है कि हनुमान और शनि की आपस में किसी बात पर लड़ाई हुई और हनुमान जी ने शनि को खूब मारा और हड्डी-पसली एक कर दी। जहाँ-जहाँ शनि जी के चोट लगी वहाँ-वहाँ खरोंच आने के कारण लहू बहने लगा। उसके रोकने के लिए लोगों ने राई का तेल लाकर लगाया जिससे घाव भरने लगे। बस यही कारण है कि आज तक शनि के घावों को भरने के लिए लोग राई के तेल का इस्तेमाल करते हैं। लगता है बेचारे शनि देवता के घाव आज तक भी नहीं भर पाए हैं।

शनि ग्रह जड़ पदार्थ है और हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी के सेवक! भला इनकी आपस में कब भेंट हुई, कोई नहीं जानता। हो सकता है शनि नाम का कोई देवता रहा हो, फिर भी बात बनती नहीं। देवता लोग लड़ते नहीं हैं। हनुमान जी वेदों के बहुत बड़े विद्वान् थे जो रामचन्द्रजी को उनके वनवास-काल में मिले थे। पूरे रामायण में शनि का नाम कहीं नहीं आता। इससे तो यही ज़ाहिर होता है कि यह कहानी बनावटी है।

शनि (ग्रह) देवता से सभी डरते हैं कि उसकी छाया किसी पर पड़ जाए तो वह व्यक्ति दर-दर की ठोकरें खाता है—भटकता रहता है—एक जगह नहीं रह पाता, देश-विदेश की यात्रा करते हुए समय कटता है।

पृथ्वी पर सब ग्रहों का तो प्रभाव पड़ता है, परन्तु उन प्रभावों के कारण लोग घर छोड़कर इधर-उधर नहीं भटकते। लोग भटकते हैं अपने कारणों से! देश-विदेश भ्रमण करते हैं अपने व्यापार के लिए या फिर और किसी कारण से। अगर शनि-मंगल ग्रह इतने ही बुरे हैं तो क्या ईश्वर ने इनको रचकर ग़लती की है? इससे तो ऐसा आभास होता है कि ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है या ईश्वर ने जानबूझकर लोगों को दु:खी करने के लिए इन ग्रहों का निर्माण किया है। ये सब पोपलीलाएँ हैं जिनके कारण उनका अपना पेट भरता है। नाम मंगल और शनि का लेते हैं, किन्तु स्वार्थ अपना सिद्ध करते हैं।

मंगल का अर्थ है कल्याण करनेवाला, मंगल करनेवाला। शनि का अर्थ होता है 'शनैश्चर' अर्थात् 'धीरे चलनेवाला'; इससे हमें यह प्रेरणा मिलती है कि जो कुछ कार्य करें सोच-समझकर, धैर्य से करें, क्योंकि जो कार्य जल्दबाज़ी में करते हैं, वे बिगड़ते हैं, अत: धीरजपूर्वक कार्य करें।

रवि-सोम-मंगल-बुध-गुरु(बृहस्पति), शुक्र और शनि—ये सात ग्रह हैं जिनके नाम से ही सप्ताह में सात दिनों के नाम रखे गए हैं।

रवि—प्रकाश और अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

सोम—सौम्यता और प्रेम की प्रेरणा प्रदान करता है।

मंगल—सबका कल्याण करने की प्रेरणा देता है।

बुध—सद्‌बुद्धि धारण करने की शिक्षा देता है।

गुरु (बृहस्पति)—बड़ा बनने की प्रेरणा देता है।

शुक्र—शुद्ध-पवित्रता का जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है।

शनि—धैर्य-गंभीर बनने की प्रेरणा (शिक्षा) देता है।

अब विद्वज्जन देखें कि कौन-सा ग्रह अच्छा है और कौन-सा ग्रह बुरा है! प्रभु की असीम कृपा है कि इन ग्रह-उपग्रहों के आकर्षण के कारण ही हमारी पृथिवी आकाश में स्थित है। जितने भी ग्रह-उपग्रह हैं, ईश्वर ने जीवों की सुरक्षा के लिए ही बनाए हैं। मनुष्य सर्वश्रेष्ठ योनि है, अतः इन ग्रहों से बहुत-कुछ सीख सकता है, उनसे प्रेरणा पा सकता है। उनकी गति देखकर अपनी गति को व्यवस्थित कर सकता है। उनके नियम देखकर अपने नियम ठीक कर सकता है। ग्रहों से वैर करना या उनको बुरा-भला कहना मनुष्य को शोभा नहीं देता। मनुष्य चेतन है और ये सभी ग्रह जड़ हैं। हमारे लिए जो पूज्य देवता हैं वह ईश्वर हैं। परमपिता परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना सच्चे मन से करनी चाहिए—उसी में हम सबकी भलाई है।

शनि देवता का मंदिर महाराष्ट्र में शिर्डी के साईं बाबा मंदिर से 80 किलोमीटर की दूरी पर अहमदनगर के रास्ते पर बनाया गया है। गाँव का नाम शिंगणापुर है जो 'शनि शिंगणापुर' के नाम से आजकल प्रसिद्ध हो गया है। मंदिर खुले में है तथा काले पत्थर को तराशकर चार-पाँच फुट ऊँचे स्थान पर रखा है। लोग राई का तेल चढ़ाने आते हैं। काले पत्थर पर तेल चढ़ाते हैं—तेल बहकर पृथ्वी में चला जाता है। फर्श पर तेल होने से फिसलन होती है। केवल पुरुष लोग ही उस पर तेल चढ़ा सकते हैं, स्त्रियों को मना है। स्त्रियाँ दूर से ही देखती हैं। हो सकता है स्त्रियाँ तेल के फर्श पर फिसली होंगी तथा उनके तन पर कपड़े टिक नहीं सके होंगे या उनका मज़ाक बन गया होगा जिससे स्त्री-जाति का अपमान हुआ होगा। अब वहाँ के कार्यकर्त्ताओं ने सख्त मनाही कर रखी है कि केवल पुरुष ही उस शनि के पत्थर पर तेल चढ़ाने के लिए तीन-चार सीढ़ियाँ चढ़कर सँभल-सँभलकर आ-जा सकते हैं। पुरुषों को नहाकर तथा केवल पीले-भगवे रंग की धोती पहनकर ही अभिषेक करने का अधिकार है। अभिषेक के लिए

फूल, काला रूमाल, तेल की शीशी से भरी थालियाँ बिकती हैं। नारियल को श्रद्धालु भक्त स्वयं तोड़ते हैं और छिलके उतारकर नारियल की गिरी साथ ले जाते हैं। इस गाँव में केवल इस शनि देवता के मंदिर के सिवाय कुछ भी नहीं है। अतः जो दुकानें हैं वे सब फूल और तेल की हैं जो बिना ताला लगाए ही खुली रहती हैं। वैसे भी चोरी का भय तो हो ही नहीं सकता। कहते हैं यहाँ चोरी नहीं होती, और हो भी क्या सकती है! जो लोग यहाँ आते हैं अपनी गाड़ियों को बंद करके ही पत्थर के शनि पर तेल चढ़ाने जाते हैं। यहाँ शनि के काले पत्थर का फोटो उतारना मना है। यहाँ भी माँगनेवालों की कोई कमी नहीं। खाने-पीने के लिए कुछ दुकानें हैं। तीन-चार एकड़ की जगह में ही यह शनि देवता की तीर्थ नगरी बनी है।

विद्वज्जन समझ ही गए होंगे कि कितना अन्धविश्वास हमारे देश में फैलता जा रहा है। काले पत्थर की इस शिला (4-5 फुट ऊँची, 3 फुट लम्बी और एक फुट चौड़ी) को किसी शिल्पकार ने तराशकर रखा है। उस पर पानी चढ़ाओ या तेल या फिर और कोई द्रव्य—उसे क्या पता चलता है? भावना कैसी भी हो, परन्तु भावना से जड़ कभी चेतन नहीं हो सकता। व्यर्थ में रोज़ न जाने कितना राई का तेल नष्ट किया जाता है। फूल-अगरबत्ती और काला कपड़ा बेकार में वायुमंडल को दूषित करता रहता है। शनि ग्रह जो हमारी पृथ्वी से लाखों गुणा बड़ा है, उससे इस काले पत्थर में आँख-नाक बनाकर सीमित रखना कहाँ की समझदारी है? क्या केवल तेल डालने से शनि ग्रह शांत हो जाएगा? या काला कपड़ा देने से किसी की नज़र नहीं लगेगी? वातावरण के दूषित करने से क्या ये जड़ देवता प्रसन्न होंगे? पत्थरों को मानते-मानते लगता है लोगों के मस्तिष्क में पत्थर घुस गए हैं! जो लोग वहाँ फर्श पर गिरते हैं—हड्डियाँ तुड़वा आते हैं—अपने हाथ-पाँव तोड़ आते हैं—तो क्या इनके कर्म ऐसे थे?

मनुष्य-योनि प्राप्त करना तो सौभाग्य की बात है। न जाने कितने पूर्व-जन्म-जन्मान्तरों के शुभकर्मों के फलस्वरूप यह मनुष्य-देह मिली है। इसे इस प्रकार पाषाणों की पूजा में लगाकर व्यर्थ में क्योंकर गँवाएँ? जड़ की पूजा से उसका गुण 'जड़ता' ही प्राप्त होता है और चेतन

(परमात्मा) की पूजा से उसका गुण 'आनन्द' ही प्राप्त होता है। आत्मा चेतन है और परमात्मा भी चेतन है, अत: इन दोनों का मिलाप (योग) होना संभव है। जड़ और चेतन का योग नहीं हो सकता। भावना शुद्ध-पवित्र होने से जड़ चेतन नहीं बनता—यही प्रकृति का नियम है—यही विधि का विधान है।

अंधविश्वास : 11 : इतने लोग मंदिरों में जाते हैं, क्या वे सभी अंधविश्वासी-अंधश्रद्धालु हैं?

निर्मूलन : मंदिरों में जानेवाले सभी अंधविश्वासी या अंधश्रद्धालु नहीं होते। ये सब दर्शनीय स्थान हैं जहाँ सभी प्रकार के लोग जाते हैं। ईश्वर में आस्था रखनेवाले मंदिर जाएँ या नहीं जाएँ—इससे ईश्वर को कोई फ़र्क नहीं पड़ता। जो लोग ईश्वर में विश्वास करते हैं तथा श्रद्धा रखते हैं, वे कहीं भी ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर सकते हैं। जहाँ मंदिर नहीं होते, क्या वहाँ लोग ईश्वर की भक्ति नहीं करते? ईश्वर तो सर्वव्यापक है, सर्वत्र रहता है—वह तो घट-घट में भक्त के साथ ही रहता है। क्या मंदिर में न जाने से ईश्वर ऐसे भक्तजनों को भुला देता है?

वैदिक काल में कहीं भी प्रतिमायुक्त मंदिरों का वर्णन नहीं है, अपितु यजुर्वेद में इसका प्रमाण है कि "**न तस्य प्रतिमा अस्ति**" अर्थात् उस परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है। (यजु०)

भारतवर्ष में कुछ काल पूर्व से ही जैनियों तथा बौद्धों ने मूर्तियोंवाले मंदिरों की स्थापना की। तब से ही देखादेखी में हिन्दुओं ने अपने देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ बनाकर मंदिरों में स्थापित कीं और मूर्तिपूजा प्रारम्भ की।

मंदिर तो कलाकार की कलाकृति का प्रदर्शन है। उसको देखने कोई भी जावे तो रोक-टोक नहीं है। लोगों ने इसे व्यापार बना रखा है—यह ग़लत है। अंधविश्वासी और अंधश्रद्धालु वे लोग हैं जो इन तस्वीरों-मूर्तियों को ही भगवान मानते हैं और भेंट चढ़ाते हैं।

जो परमपिता परमात्मा सारे संसार को खिलाता-पिलाता है, क्या उसको हम खिला-पिला सकते हैं? कदाचित् नहीं। जो सारे विश्व को प्रकाशित करता है, क्या उसे हम दीपक दिखाकर अपमानित नहीं

करते? जो इस ब्रह्माण्ड को रचकर शुद्ध-पवित्र बनाए रखता है, क्या उसे हम एक फूल भेंट कर सुगंधित करना चाहते हैं? क्या हम रुपये-पैसे देकर उसे धनवान बनाना चाहते हैं? धातु से बने चंद सिक्कों से क्या हम उसे प्रसन्न करना चाहते हैं? जी नहीं! ये सब हम-आप अपने लिए ही करते हैं। सौ रुपये का लालच देकर लाखों-करोड़ों पाना चाहते हैं। थोड़ा-सा दान देकर अपने-आप को हम देवता समझते हैं। अपने नाम की पट्टियाँ लगाकर अपने-आपको दानवीर कर्ण समझते हैं। अब सोचिये-विचारिये, ऐसा कार्य करनेवाले क्या अंधविश्वासी नहीं हैं? अंधश्रद्धालु नहीं हैं? मंदिरों-मस्जिदों-गिरजों-गुरुद्वारों में जाने से कोई भगवान का भक्त नहीं बनता। भगवान की भक्ति करनेवाला ही भक्त कहलाता है। भक्ति क्या है? भक्त किसे कहते हैं? इसको भी जान लेना आवश्यक है। धूप-अगरबत्ती जलाने से कोई भक्त नहीं बनता। नारियल तोड़कर खानेवाला भी भक्त नहीं कहलाता।

ईश्वर का सच्चा भक्त वही है जो ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है, ईश्वर के कहे को मानता है, सबसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करता है, सबसे प्रेम करता है, जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानता, मानता और व्यवहार में लाता है, वही ईश्वर का सच्चा भक्त है।

ईश्वर की आज्ञा है कि मनुष्य अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करे और उसी के अनुसार कर्म करे। इसी से सब प्रकार के दुःखों से निवृत्ति तथा आनन्द की प्राप्ति संभव है।

ईश्वर की आज्ञा का पालन करना ही सच्चे अर्थों में ईश्वर की भक्ति करना है।

ईश्वर का भक्त बनने के लिए सभी जिज्ञासुओं को वेदों का अध्ययन करना चाहिए—यही मनुष्यमात्र के धर्म-ग्रन्थ हैं। मनुष्य को क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए—वेदाध्ययन से ही मालूम पड़ सकता है। जिन मंदिरों में वेदपाठ होता है—संध्या-हवन-यज्ञादि सत्कर्म होते हैं, उन मंदिरों में अवश्य जाना चाहिए। जिन मंदिरों में पाषाण-पूजा नहीं होती—निराकार परमात्मा की पूजा होती है, वहाँ अवश्य जाना चाहिए। जिन मंदिरों में ब्राह्मण रहते हैं, उन मंदिरों में अवश्य जाना चाहिए।

अंधविश्वास : 12 : घर में दीपक-अगरबत्ती जलाने से भगवान प्रसन्न होते हैं।

निर्मूलन : प्रसन्न और अप्रसन्न तो वे होते हैं जो अल्पज्ञ होते हैं। प्रसन्नता तब होती है जब मनचाही वस्तु प्राप्त होती है, और जब कोई वस्तु चली जाती है तो अप्रसन्नता होती है। ईश्वर तो परिपूर्ण है; उसके पास किसी वस्तु की कमी नहीं है। ईश्वर सर्वज्ञ है, पूर्णज्ञानी है, अतः उसके सुखी अथवा दुःखी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर सदा एकरस रहता है, उसमें किसी बात की बढ़ोतरी या घटोतरी नहीं होती। जो परमपिता परमात्मा सूर्य इत्यादि ग्रहों को प्रकाशित करता है, उसे हम कुछ दीपक जलाकर क्या प्रसन्न कर सकते हैं? इतना प्रदूषण करके अगर कोई थोड़ी-सी अगरबत्तियाँ जला लेता है तो उससे उसके घर में ही सुगंध फैलती है। भला इससे ईश्वर क्यों प्रसन्न होंगे? मनुष्य स्वार्थी स्वभाव का प्राणी है। वह जो कुछ करता है अपने स्वार्थ के लिए ही करता है। वह प्रभु-स्मरण करता है तो भी उसमें मनुष्य का स्वार्थ ही छुपा होता है।

घर में रोशनी नहीं है तो दीया-दीपक जलाने से प्रकाश मिल सकता है। बिजली चली जाती है तो अक्सर लोग मोमबत्ती या दीया जला लेते हैं। जहाँ गाँव-खेड़े में अभी तक बिजली का प्रबंध नहीं है वहाँ आज भी शाम होते ही दीपक या लालटेन जलाते हैं। ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए दीया जलाना बिलकुल अज्ञानता की बात है। धूप-अगरबत्ती से थोड़ा धुआँ उठता है तथा खुशबू फैलती है जिससे मच्छर इत्यादि जीव भाग जाते हैं। ईश्वर को सुगंध की क्या आवश्यकता है?

भाइयो और बहनो! दीया, अगरबत्ती, धूप इत्यादि जो हम पूजा में जलाते हैं, वे सब यज्ञकर्म न करने के बहाने हैं। यज्ञकर्म में दीया जलाया जाता है अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए, सामग्री में सुगंधित वस्तुओं का मिश्रण इसलिए होता है जिससे अग्नि में आहुति देने से वायुमंडल में सुगंध फैले और जड़ी-बूटियों से कीट-कीटाणुओं का सफाया हो। इससे घर में पवित्रता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है जिससे विषैले प्रदूषण का प्रभाव नहीं पड़ता। घी के परमाणु अनेक

रोगों को घर में आने से रोकते हैं। यज्ञकुण्ड में डाली हुई सभी वस्तुएँ अपना-अपना कार्य करती हैं।

आजकल यज्ञकर्म को सभी पवित्र लाभकारी तो मानते हैं, परन्तु कर्मकांड करने का किसी को समय नहीं। दीपक-धूप-अगरबत्ती यज्ञ का ही बिगड़ा हुआ या संक्षिप्त रूप है। शत-प्रतिशत नहीं तो 0.1 प्रतिशत तो लाभ मिलेगा—यही सोचा गया। प्राय: स्त्रियाँ घरों में संध्या होते ही दीपक जलाती हैं, धूप-अगरबत्तियाँ जलाती हैं। कुछ न करने से यह भी अच्छा ही है। धार्मिक भावनाएँ जीवित तो रहती हैं। यहाँ हवन के रूप में यज्ञ को सीमित अर्थ में लिया गया है।

दीपक देसी घी का ही जलाना लाभकारी है, क्योंकि घी (गाय के दूध से बना) कीटाणुनाशक होता है। घी जलकर अपने सूक्ष्मरूप से अनेक बीमारियों को रोकता है। रसोईघर शुद्ध पवित्र रहता है। जो गृहणियाँ शत-प्रतिशत लाभ उठाना चाहें तो यज्ञ को अपनाएँ। प्रतिदिन सवेरे-शाम यज्ञकर्म करना चाहिए क्योंकि यज्ञ से ही स्वर्ग का वातावरण उत्पन्न होता है, इसीलिए तो कहा है जो स्वर्ग की कामना करते हैं उन्हें यज्ञ अवश्य करना चाहिए। अत: यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है।

दीपक, धूप, अगरबत्ती से यज्ञ का कोई विरोध नहीं है। इनको जलाना लाभकारी है। परन्तु यह धार्मिक होना नहीं है। इस बात को अपने मस्तिष्क से निकाल दें कि दीया जलाने से ईश्वर प्रसन्न होंगे।

दीया प्रकाश देता है। प्रकाश का आध्यात्मिक अर्थ है ज्ञान, अत: दीया हमें ज्ञान का दीपक जलाने की प्रेरणा देता है। प्रकाश से ही अंधकार दूर होता है, अत: ज्ञान से ही अज्ञानरूपी अँधेरा भाग जाता है। अगरबत्ती सुगंध देती है। हमें प्रेम और श्रद्धा की सुगंध से समाज को सुगंधित करना है—यही भावना होनी चाहिए।

अंधविश्वास : 13 : पूर्णिमा के दिन दान-दक्षिणा देना और यज्ञ-कर्म करना शुभ माना जाता है। अशुभ दिनों में शादी-ब्याह नहीं करते। कुछ दिन भी शुभ-अशुभ होते हैं।

निर्मूलन : शुभ दिनों में शुभ कर्म करने चाहिएँ इसका अर्थ यह हुआ कि अशुभ दिनों में अशुभ कार्य करने की पूरी-पूरी छूट है। सच

तो यह है कि कोई भी दिन शुभ-अशुभ नहीं होते, मनुष्य के कर्म ही शुभ-अशुभ होते हैं। ईश्वर ने सभी दिन शुभ ही बनाए हैं। उसमें शुभ कर्म करो या अशुभ करो, आप पर निर्भर करता है। शुभ दिन में शुभ करना चाहिए और अशुभ दिनों में अशुभ कर्म करने चाहिएँ—कहीं नहीं लिखा!

जब हम शुभ कर्म करते हैं तो उनका फल भी शुभ मिलता है, और जब हम अशुभ कर्म करते हैं तो उनका फल भी अशुभ अर्थात् दुःख मिलता है। सब दिन बराबर होते हैं। ऋतुओं के आधार पर दिन गर्म और शीतल होते हैं। बारिश के दिनों में बारिश होती है। बरसात के कारण आप स्वयं बाहर नहीं गए, काम नहीं किया तो दोष बारिश पर मढ़ते हैं। ऐसा नहीं है। बारिश के मौसम में बारिश होगी, अतः पहले से ही योजनाएँ बनानी चाहिएँ। फिर कार्य बराबर चलता है। दिनों को भला-बुरा कहना अज्ञानता है।

श्राद्ध के दिनों में विवाह नहीं करते-कराते। यह भी एक बड़ी भ्रान्ति है। क्या उन दिनों में मुस्लिम-यहूदी-ईसाइयों के घरों में शादियाँ नहीं होतीं? केवल हिन्दू ही ऐसा मानते हैं। उनके लिए श्राद्ध अशुभ दिन माने जाते हैं। क्या श्राद्धों में (अशुभ दिनों में) हम खाना नहीं खाते? क्या व्यापार नहीं करते? क्या इन दिनों में बच्चे पैदा नहीं होते? क्या लोग नहीं मरते? क्या श्राद्धों में सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-उपग्रह अपने सब कार्य रोक देते हैं? जब सब काम निर्धारित ढंग से होते हैं तो श्राद्ध के 15 दिन अशुभ माननेवालों के पास इन दिनों को अशुभ मानने का कोई ठोस आधार नहीं है।

ईश्वर की रचना पर शक करना, शंका करना, संशय करना, भ्रान्ति करना, भ्रम करना, वहम करना—यही पापकर्म है, यही अशुभ है।

जो लोग कुछ दिनों को अशुभ मानते हैं तो क्या अशुभ दिनों में अशुभ कर्म कर सकते हैं? क्या ऐसा करने से अशुभ कार्य शुभ बन जाते हैं? जिस घर में मृत्यु होती है, कहते हैं उस घर में सदस्यों को मंदिर में जाना नहीं चाहिए, घर में पूजा-पाठ नहीं करना चाहिए। कितनी बेतुकी बातें हैं! जिस घर में मौत होती है वहाँ तो पूजा-पाठ,

संध्या–हवन प्रतिदिन करना चाहिए। इन 10–12 दिनों में जितने शुभ कर्म कर सकते हैं करने चाहिएँ। इससे घर में धैर्य–संतोष रहता है, आत्मिक बल बढ़ता है, दिवंगतात्मा के जाने के दुःख का प्रभाव कम होता है, मन की शान्ति बनी रहती है, घर के वातावरण में शुद्धता–पवित्रता बनी रहती है। अब विद्वज्जन ही निर्णय करें कि क्या ऐसे शुभ कर्म करना अशुभ होते हैं ?

वैदिक सिद्धान्तानुसार ईश्वर सर्वज्ञता से सृष्टि की रचना करता है और ईश्वर जो कुछ करता है सब जीवों के हित के लिए ही करता है। वह कभी अशुभ नहीं करता। किसी भी दिन को शुभ या अशुभ नहीं कहा जा सकता। जब एक चोर किसी के घर में चोरी करता है तो वह दिन चोर के लिए शुभ बन जाता है, और जिसके घर चोरी होती है उसके लिए वह दिन अशुभ होता है। फिर एक ही दिन को शुभ या अशुभ कैसे मान सकते हैं ? किसी भी दिन या सप्ताह या महीने को अशुभ बताना—ईश्वर का निरादर करना है। ईश्वर में विश्वास और श्रद्धा न होने से लोग इस तरह सोचते हैं जो पाप है। ईश्वर के कार्य में शंका करना स्वयं को नास्तिकता की ओर ले जाना है। स्वयं ही फैसला करें कि आप कौन हैं ? अस्तिक या नास्तिक ?

अंधविश्वास : 14 : ईश्वर जिसे चाहे उसी पर अपनी कृपा करता है, सब पर नहीं!

निर्मूलन : ईश्वर की कृपा सदा सब पर रहती है। कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जिस पर उस प्रभु की कृपा सदा न होती हो। अब यह जिज्ञासा अवश्य होती है कि किस पर परमात्मा विशेष कृपा करता है ? यूँ तो ईश्वर सब पर समान कृपा करता है, सभी को हवा, पानी, रोशनी प्रदान करता है, किन्तु सज्जनों और पुरुषार्थी व्यक्तियों पर उसकी विशेष कृपा बनी रहती है। उनके हृदय में सदैव सन्तोष एवं आनन्द की अनुभूति प्रदान कर अपनी विशेष कृपा करता है।

ईश्वर की कृपा के लिए सुपात्र होना परमावश्यक है। जैसे कोई भिखारी भिक्षा माँगने किसी के घर जाता है। घर में खीर बनी है। गृहणी देखती है कि भिखारी का पात्र गंदा है, अतः खीर देने पर ख़राब हो जाएगी और खाने के काम नहीं आएगी, अतः वह पात्र में खीर डालने

से पहले उस भिक्षुक को कहती है कि पहले अपना पात्र धोकर स्वच्छ करके आओ, तभी भिक्षा लेना। जिसका पात्र शुद्ध-साफ़ होता है वही भिक्षा का भागी बन सकता है। यही किस्सा सबके साथ जुड़ा है। जब तक मनुष्य अपने हृदयपात्र को साफ़ नहीं कर लेता—शुद्ध पवित्र नहीं बना लेता अर्थात् काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-द्वेष इत्यादि गंदगियों को निकाल बाहर नहीं फैंक देता, तब तक ईश्वर की अमृतमयी कृपा को कैसे प्राप्त कर सकता है ? ईश्वर सर्वज्ञ है—सर्वान्तर्यामी है—सर्वव्यापक है। उसे मालूम है कौन कुपात्र है और कौन सुपात्र। बिना माँगे ही सुपात्र को सब-कुछ मिल पाता है और माँगने पर भी कुपात्र को कुछ भी नहीं मिलता।

जब तक साँस में साँस है, समझो ईश्वर की कृपा हो रही है। ईश्वर ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, नक्षत्र सब जीवों के लिए ही बनाए हैं। जिसमें जितनी योग्यता है, वह इन भूतों से, जड़ देवताओं से लाभ उठाता है। यही तो परमपिता परमात्मा की कृपा है। इन्सान जीवित है—प्राण चल रहे हैं, यह भी तो उस प्रभु की ही कृपा का प्रभाव है !

अंधविश्वास : 15 : जो भाग्य (किस्मत) में लिखा है वही मिलता है या होता है।

निर्मूलन : यह मान्यता बिलकुल सत्य है। जो नसीब में लिखा है वह तो मिलना ही मिलना है। इसे कोई रोक नहीं सकता। किस्मत में इस प्रकार नहीं लिखा होता कि आपको गाड़ी, टीवी या फ्रिज मिलेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि अगर आपके पूर्व-कर्म अच्छे हैं तो फल शुभ ही मिलेगा। किस रूप में मिलेगा यह कहना कठिन है।

पूर्व-जन्म के संचित कर्मों का फल जब प्राप्त होता है, तो उसे ही किस्मत, नसीब अथवा भाग्य कहते हैं; किन्तु केवल किस्मत के भरोसे बैठना नहीं चाहिए, क्योंकि आपको नहीं मालूम कि किस्मत में क्या लिखा है ? हमारा कर्त्तव्य है हमेशा प्रयत्नशील—कर्मशील रहना। वर्तमान में किये कर्म का फल भी मिलता है, अतः कभी इस भरोसे नहीं बैठना चाहिए कि पिछले कर्म के फल पकेंगे सो मिलेंगे। ये निकम्मों की बातें हैं।

मनुष्य को क्रतु कहा है, अर्थात् कर्म करनेवाला। मनुष्य जब तक जीवे, कर्म करते हुए जीवे।

ठग ज्योतिषी और अज्ञानी साधु-संत प्रायः ऐसा कहते हैं कि आपके भाग्य में फलाँ-फलाँ लिखा है—वह झूठ जानो, क्योंकि किस्मत का लिखा कोई नहीं पढ़ सकता। जो होना है वह अवश्य होना है। किसी के कहने या न कहने से कुछ नहीं होता। भाग्य माथे पर लिखा नहीं होता; भाग्य तो कर्मों में छुपा होता है। किसी के कर्मों को परमपिता परमात्मा के सिवा कोई नहीं जानता, यहाँ तक कि स्वयं कर्ता भी नहीं जानता।

इसीलिए तो कहते हैं कि जो भी काम करो, सोच-विचार कर, ज्ञानपूर्वक करो। सौ काम छोड़कर भी भोजन करना चाहिए—हज़ार काम छोड़कर भी स्नानादि करना चाहिए—लाख काम छोड़कर भी दान करना चाहिए और करोड़ काम छोड़कर भी पहले प्रभु की उपासना करनी चाहिए।

अंधविश्वास : 16 : पशुबलि देने से सब कार्य पूर्ण होते हैं—रुके हुए कार्य पूरे होते हैं—मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

निर्मूलन : मनुष्य के मस्तिष्क का क्या कहना! जब निष्काम काम करता है तो इन्सान से भगवान बन जाता है, और जब कुकर्म करता है तो वह शैतान बन जाता है। वेद में कहीं भी नहीं लिखा कि पशुवध करके उसकी बलि चढ़ाने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं! इस प्रकार की बातें पापात्माएँ करती हैं। मनुष्य जब मनुष्य नहीं रहता, पशु-जैसे कर्म करने लगता है तो उसकी बुद्धि भी पशु-सी बन जाती है। अपनी रसना की पूर्ति के लिए, स्वार्थ-पूर्ति के लिए जो नीच कर्म करता और करवाता है, उसे ज्ञात हो कि किसी भी जीव की बिना कारण हत्या करना घोर पाप है। वेद में तो सब प्राणियों से प्रेम करना सिखाया है। हत्या तो दूर की बात है, वैर-विरोध करना भी अनुचित बताया है। जिस धर्मग्रन्थ में अहिंसा को सबसे पहले प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ भला हत्या की बात कैसे हो सकती है? अपितु वैदिक धर्म में तो मन, वाणी एवं कर्म से अहिंसा का पालन करने की प्रेरणा दी गई है।

बलि ही देनी है तो अपने-आप की बलि देनी चाहिए, अपने घमंड की बलि देनी चाहिए। ईश्वर के प्रेम में सर्वस्व की बलि देनी चाहिए। बलि का अर्थ यह नहीं है कि किसी के शरीर को काटकर, खून बहाकर उसे अग्नि के हवाले करें—यह तो नीच कर्म है। इससे बड़ा पाप हो ही नहीं सकता! यह अघोरी जाति का कार्य हो सकता है—मनुष्य का नहीं!

पशु का वध करके बलि देना मूर्खता का काम है—पापी लोगों का काम है। जो ऐसा करते हैं या मानते हैं उनसे बड़ा बोझ इस पृथिवी पर नहीं हो सकता। मानव-धर्म में तो किसी के भी दिल को दुखाना पाप है, तो ऐसे मूक पशु-पक्षियों को काट-मारकर बलि देना, फिर स्वयं उस मांस से अपना उदर भरना—यह तो पशुता की भी पराकाष्ठा है। शाकाहारी पशु भी ऐसा नहीं करते, और यदि मनुष्य ऐसा करे तो वह तो पशु कहलाने के काबिल भी नहीं बचता! पढ़े-लिखे समाज में ऐसी बातें करना-सोचना तो अपने- आपको हैवान प्रमाणित करना है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि सर्वश्रेष्ठ प्राणी की बलि देना सर्वश्रेष्ठ कार्य होना चाहिए, उन्हें अपने घर से ही शुरुआत करनी चाहिए। ऐसे लोगों को उचित है कि वे अपने ही परिवार के किसी सदस्य की बलि चढ़ाएँ।

कार्य पूर्ण होते हैं परिश्रम से। ज्ञानपूर्वक कर्म करने से रुके हुए कार्य भी पूरे होते हैं। कर्म किये जाओ, बाकी सब ईश्वर पर छोड़ दो। ईश्वर हम सब की आवश्यकताओं को भलीभाँति जानता है और पूरा भी करता है। मनोकामनाएँ तो मरने तक पूर्ण नहीं होतीं। एक होती है तो वह सौ और इच्छाओं को जन्म देती है, अतः विवेकी वह है जो मन पर संयम करे, जो परिश्रम से प्राप्त हो उसे प्रभु का प्रसाद समझकर उपयोग करे। इच्छाओं का कभी अन्त नहीं होता। शरीर का अन्त होने से पहले इन इच्छाओं का अन्त करना सीख लें। अपनी इन्द्रियों को वश में रखें, इसी से हमारा मन शान्त और प्रसन्न रहता है। मन तो जड़ है, वह भला क्या कर सकता है? बुद्धि द्वारा उस पर अंकुश लगाना सीखें—आत्मा को पवित्र बनाएँ। यही तो मनुष्य- जीवन का लक्ष्य है, इसी पर सदा ध्यान दें और इसमें सफलता प्राप्त करने

का यथाशक्ति योग द्वारा प्रयास-प्रयत्न करते रहें।

सबसे प्रेम करना सीखें, यहीं से ईश्वर की भक्ति प्रारम्भ होती है। प्रेम ही सबसे पहली सीढ़ी है जिसके द्वारा श्रेयमार्ग पार करके व्यक्ति अपने प्रियतम परमेश्वर से मिल सकते हैं।

अंधविश्वास : 17 : गुरु धारण करना अनिवार्य है। बिना गुरु के मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

निर्मूलन : हाँ, गुरु धारण करना सचमुच अनिवार्य है, किन्तु पहले यह समझना होगा कि गुरु क्या है और गुरु-धारण से कोई लाभ है कि नहीं ?

गुरु की सबसे सरल परिभाषा यही है कि जो अपने शिष्यों को अंधकाररूपी असत्य से छुड़ाकर प्रकाशरूपी सत्य की ओर प्रेरित करे, जो अज्ञान से छुड़ाकर ज्ञान की ओर ले जावे, स्वयं सत्याचरण करे और औरों को भी सत्याचरण करना सिखावे। जो सही मार्गदर्शन करे। गुरु Guide होता है, अतः स्वयंसिद्ध पुरुष ही दूसरों को सिद्धि का मार्ग दिखा सकता है।

गुरु कहते हैं शिक्षक को अर्थात् जो विद्या दान दे। मोटी भाषा में— जिससे भी हमें कोई न कोई ज्ञान प्राप्त होता है वह गुरु कहलाता है। मार्ग भटक जाने पर जो हमें मार्ग दर्शाता है वह भी एक प्रकार का हमारा गुरु है। जो विद्यालय/कॉलेज में हमें लिखना-पढ़ना सिखाता है वह भी गुरु है। इस संसार में किस प्रकार जीना है—जो ऐसी बातें बताता है वह भी गुरु कहाता है।

जो गुरु अपने शिष्यों को आत्मा-परमात्मा की बातें बताता है अर्थात् जो आत्मिक उन्नति हेतु सद्ज्ञान प्रदान करता है—वेदों की बातें बताता है—वह, आध्यात्मिक गुरु कहाता है, जिसे अधिकांश लोग सद्गुरु कहते हैं। जो अपने शिष्यों को बिगाड़ता नहीं, अपितु सँवारता है—वह सच्चा गुरु है। जो सबको समदृष्टि से देखता है चाहे वे उसके शिष्य हों या कोई अन्य हों—वह सच्चा गुरु होता है। जो केवल अपने शिष्यों की ही भलाई नहीं चाहता, अपितु अपनी विद्या सबको समान रूप से प्रदान करता है—वह सच्चा गुरु कहलाने योग्य है। अब भ्रान्ति है कि गुरु का होना अनिवार्य है कि नहीं, और है तो क्यों ?

इस संसार में मनुष्य का सबसे पहला गुरु उसकी 'माता' होती है जिससे वह ममता और प्रेम प्राप्त करता है। दूसरा गुरु उसका 'पिता' होता है जो उसका पालन-पोषण और संरक्षण करता है। दुनियादारी की बातें पिता ही सिखाता है। अन्त में तीसरे दर्जे का गुरु 'आचार्य' होता है जो अपने शिष्य को परा और अपरा विद्या का दान देता है, उसके आचरण को सँवारता है, संस्कारों को सुसंस्कृत करता है, अपनी योग्यता से असत्य से छुड़ाकर सत्यमार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है, अपने शिष्य को समय-समय पर परखता है, परीक्षण करता है—परीक्षा लेता रहता है। गुरु आध्यात्मिक विकास करता है—सत्यासत्य का ज्ञान करा देता है, अपने शिष्यों की सभी शंकाओं का वैदिक सिद्धान्तों से समाधान करता है। जैसे माता के गर्भ में बच्चा पैदा होता है और माता उसके सांसारिक पिता के दर्शन कराती है, उसी प्रकार 'आचार्य' अपने शिष्यों को दोबारा जन्म देता है क्योंकि वह उसे परमपिता परमात्मा के दर्शन कराता है। यही कारण है कि इस सच्चे गुरु का दर्जा महान् माना जाता है।

इन तीनों गुरुओं से भी बड़ा, परम गुरु एक और भी है जिसे 'ईश्वर' कहते हैं। सृष्टि के आदि में मनुष्य की उन्नति के लिए, उसकी भलाई के लिए, उसकी मुक्ति के लिए उसकी ग्रहण करने की क्षमता के अनुसार समस्त ज्ञान 'वेद' द्वारा प्रदान करता है। वेद ही सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है जिसमें मनुष्यमात्र के लिए सत्य-प्रेम का पाठ पढ़ाया गया है—जिसमें परा-अपरा दोनों विद्याओं का सम्पूर्ण ज्ञान है। संसार में ऐसा कोई प्रश्न/शंका नहीं जिसका उत्तर/समाधान वेद में न हो, क्योंकि वेद ईश्वरीय ज्ञान का अथाह भण्डार है। जितना वेद का स्वाध्याय और आचरण करेंगे उतना ही अधिक ज्ञान मिलता है। गूढ़ से गूढ़ विषय भी वेदाध्ययन द्वारा आसानी से समझ में आ जाते हैं।

जो वेदाध्ययन करके वैसा आचरण करता है और औरों को कराता है वह सद्गुरु का दर्जा प्राप्त करता है। गुरु-शिष्य परम्परा तो सृष्टि के आदि से ही चली आ रही है। गुरु का पूरा ज्ञान बाँटने के लिए होता है, तभी तो वह गुरु पूजनीय होता है। गुरु रुपये-पैसों के

लिए हाथ नहीं फैलाता, न ही अपने भक्तों से आग्रह करता है।

अब आइये—वर्तमान काल के गुरुओं पर कुछ ध्यान देते हैं कि ये सचमुच में गुरु कहलाने योग्य हैं या केवल चेलों में ही प्रसिद्धि प्राप्त किये हुए हैं। आज के युग में गुरुओं की अनेक दुकानें खुल गई हैं। जी हाँ, दुकानें खुल गई हैं और रोज़ नई-नई दुकानें खुलती जा रही हैं, क्योंकि चेलों की कमी नहीं है। हाँ, शिष्यों की कमी अवश्य है। शिष्यों की इसलिए कमी है क्योंकि सच्चे गुरुओं का अकाल पड़ गया है। जो आज भी सच्चे गुरु हैं—वैदिक गुरु हैं—उनके यहाँ 15-20 से अधिक योग्य शिष्य भी नहीं मिलते जो अपना पूरा जीवन मनुष्य-निर्माण में लगाए रहें।

आजकल के बाज़ारी गुरु नामदान के नाम पर अपने चेलों से क्या नहीं करवाते! ईश्वर को अपने पीछे रखे हुए हैं और स्वयं आगे बैठे हैं। ईश्वरीय पूजा के स्थान पर अपनी पूजा कराते हैं। कहते हैं गुरुस्मरण से ही प्रभु की प्राप्ति होगी क्योंकि गुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है, दोनों एक ही हैं। ये अपने-आपको ही ईश्वर मान बैठे हैं। ऐसे गुरु वाहनों में घूमते हैं और चेले भी अपने गुरु की शान देखकर खूब खुश होते हैं। सबको अपना-अपना गुरु अच्छा लगता है। गुरु के जितने अधिक चेले, उतना ही गुरु महान्!

परन्तु ऐसा विचारना मिथ्या है। प्रकट में जो दीखता है वह ग़लत भी हो सकता है। जैसे जादूगर अपनी कलाकारी दिखाते हैं—हाथ की सफाई का प्रदर्शन करते हैं—उसे सही मान लेना मिथ्याज्ञान है; उसकी गहराई में जाकर देखेंगे तो लगेगा हम ग़लत थे, वैसे ही भीड़ देखकर अंदाजा न लगा लें कि यहाँ सत्संग हो रहा है तो गुरु कमाल का होगा—सिद्ध पुरुष होगा—या उसकी पहुँच परमशक्ति तक होगी। ज्यादा लोग इकट्ठे करना कोई कमाल नहीं है। मदारी भी रास्ते पर भीड़ इकट्ठी करता है। नेता लोग तो लाखों की तादाद में श्रोताओं को जमा करते हैं। यह दुकानदारी है! अपने ग्राहकों को बड़े-बड़े पंडालों में इकट्ठा करते हैं—कुछ सुनाते हैं, कुछ हँसाते हैं और अपने पीछे लगा लेते हैं। चेले भी क्या करें! उनके पीछे-पीछे चल पड़ते हैं। जहाँ भीड़ देखी वहाँ चल दिये! सुनने में अच्छा लगता है, टाइम

पास (समय व्यतीत) होता है, किन्तु क्रियात्मक कार्य कुछ नहीं होता। गुरु कहते हैं जब तक हमारा नामदान नहीं लोगे—गाड़ी आगे नहीं जाएगी। देखा-देखी में चाहे-अनचाहे चेलों की कतारें नामदान ग्रहण करने के लिए लग जाती हैं। कौन सुपात्र है कौन कुपात्र है—कौन देखता है? भरी जनता को दो-चार ईश्वर के गौण नाम जपने को कहते हैं—'नाम जपते रहो, यही ध्यान है। ऐसा जपने से (गुरु के नामदान को जपने से) आपका बेड़ा पार हो जाएगा। बाकी सब गुरु पर छोड़ दो। कुछ भी करो गुरु सँभाल लेगा।' बदले में गुरु-दक्षिणा तो देनी ही पड़ेगी! गुरु-दक्षिणा क्या होती है—पाठकगण-विद्वज्जन समझ ही गए होंगे! तीन-चार-पाँच नाम के बदले कितना धन इकट्ठा करते हैं इसका अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता। बस गुरु का अपना काम तो हो गया। चेले भी नासमझी में गुरु द्वारा बताया काम करते रहते हैं और अपनी सब प्रकार की समस्याएँ गुरु पर छोड़ देते हैं। सच्चे ईश्वर का स्वरूप तो भूल ही जाते हैं। उनके ध्यान में गुरु ही गुरु समा जाता है। ईश्वर के स्थान पर गुरु की तस्वीर को मन में बसा लेते हैं। क्या करें! जो उनके गुरु ने समझाया है वही तो करते हैं! न गुरु अपने चेलों की खबर लेता है, न ही चेले अपने गुरु के बारे में कुछ सुनना चाहते हैं। चेले बेचारे आशा लेकर आते हैं और उसी आशा में मर-खप जाते हैं। जैसा गुरु वैसा चेला! 'हाँ जी, हाँ जी' करते-करते पूरा जीवन ऐसे ही गँवा देते हैं। ईश्वर क्या चीज है, आखिर तक पता नहीं चलता।

यह दुकानदारी नहीं तो और क्या है? दुकानदार सस्ते में माल खरीदता है और महँगे में बेचता है। ये दुकानदार गुरु भी ऐसा ही करते हैं—मुनाफ़ा स्वयं डकारते हैं! यहाँ-वहाँ से सुनकर या कुछ पुस्तकें पढ़कर चेलों को अच्छे-खासे भाव में बेचते हैं। न गुरु सन्मार्ग का आचरण करता है, न ही चेले करते हैं। बात वहीं की वहीं रह जाती है। जैसे आए थे वैसे ही चले गए! मनुष्य-योनि व्यर्थ में गँवा देते हैं। हर युग में अनेक गुरु आते-जाते रहे हैं, फिर भी संसार में लोग क्यों नहीं बदलते? सोचनेवाली बात है। उलटा पापकर्म बढ़ते जाते हैं। वर्तमान में जितने गुरु (दम्भी-पाखण्डी) इस प्रकार की दुकानदारी

चला रहे हैं, उतने ही उनके So Called चेले बिना विचारे सब काम करते हैं। परिणाम सबके सामने है। समाचारपत्रों में प्राय: ऐसे गुरुओं के कारनामे छपते रहते हैं। (हम यहाँ लिखना उचित नहीं समझते। समझनेवाले समझ ही गए होंगे।)

विचारणीय यह है कि गुरु धारण करना अनिवार्य है कि नहीं ?

जिस-जिस विषय में हमें ज्ञान नहीं है उसकी जानकारी तो पूछने से ही हो सकती है, अत: मार्गदर्शक का होना ज़रूरी है—अनिवार्य है। आध्यात्मिक विषय गूढ़ होते हैं, अत: अच्छी तरह पूरी जानकारी के लिए आध्यात्मिक गुरु अगर मिल जाए तो बहुत अच्छा है। सच्चा गुरु मिल जावे तो सोने में सुहागा है। गुरु किसे नहीं चाहिये ? जहाँ कहीं से सद्ज्ञान प्राप्त हो, अवश्य ग्रहण करते रहना चाहिए। जिस गुरु से आपकी शंकाओं का समाधान हो, उनसे संपर्क बनाए रखना चाहिए। गुरु सच बोलता है या नहीं—इसकी पहचान तो स्वाध्याय करने से ही होती है। यह ज़रूरी नहीं कि गुरु की हरएक बात को सद्-वचन मान लें। जो-जो बातें वेदानुसार खरी उतरती हैं—जो-जो बातें विज्ञान के अनुसार ठीक हैं—जो-जो बातें अपने मन, बुद्धि और आत्मा को अच्छी लगती हैं, उन बातों पर अवश्य मनन और आचरण करना चाहिए। गुरु रात को दिन कहे और दिन को रात बताए तो ऐसी अविश्वसनीय बातों को नहीं मानना चाहिए। जिन बातों का प्रमाण न मिले या प्रकृति-नियम के विरुद्ध हों, उन्हें मानने से इनकार करने में कोई पाप नहीं है। इसमें गुरु का अपमान नहीं समझना चाहिए। हो सकता है कि जो गुरु कहता है वह ग़लत हो, क्योंकि गुरु भी तो एक मनुष्य ही है और मनुष्य ग़लतियाँ कर सकता है। इस स्थिति में आर्ष ग्रन्थों का सहारा लेना परमावश्यक है। वेद ही अंतिम प्रमाण है, अत: वेदाध्ययन उससे भी जरूरी है। वेद का आदेश है सत्याचरण करो और किसी भी जीव को मत सताओ। यदि गुरु इसके विरुद्ध पाठ पढ़ाता है तो उस गुरु के त्यागने में एक क्षणभर की भी देर नहीं करनी चाहिए। जो वेदविरुद्ध कहता है, वह सच्चा गुरु नहीं हो सकता। जो गुरु ईश्वरीय ज्ञान को न जानता है, न मानता है, उसे गुरु कहना तो दूर की बात है, वह तो एक सामान्य मनुष्य की श्रेणी में भी नहीं आता। निर्मल आत्मा

सत्यासत्य को जाननेवाला होता है, अतः अपनी आत्मा की आवाज़ सुनने का प्रयास करें। अंधश्रद्धा छोड़कर अपनी बुद्धि का प्रयोग करें, अपने विवेक को जागृत करें। गुरु कोई भगवान नहीं है—ईश्वर नहीं है कि वह जो कहे वही सत्य है। गुरु तो कोई भी बन सकता है—स्वाध्याय करके—आर्ष ग्रन्थों को पढ़कर—थोड़ा वेदों को पढ़कर—अच्छी-अच्छी बातें सुनकर—फिर उन्हीं बातों को प्रवचन में कहना—यह तो कोई भी कर सकता है। आजकल तो जिसे भी थोड़ा-बहुत बोलने की कला आ जाती है वह अपने-आपको गुरु मानने और मनवाने लगता है। जो शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति कर, स्वयं भी वैसा ही आचरण करता है तथा परोपकार की भावना से सबको सुनाता है—समझाता है—वही सच्चा गुरु कहलाता है। नाम-दान के बदले दाम लेनेवाले, गुरु नहीं हो सकते, भले ही कितने भी विद्वान् ही क्यों न हों। ये तो व्यापारी हैं, दुकानदारी करते हैं; क्योंकि इनकी बातें कुछ और होती हैं और आचरण कुछ और। ऐसे दुकानदारों की बातें नहीं सुननी चाहिएँ और न ही उनपर आचरण करना चाहिए, क्योंकि हो सकता है परिणाम कुछ और निकले!

ईश्वर स्रष्टा, पालक और संहारक है, तदनुसार उसके गुण-कर्म-स्वभाव भी भिन्न-भिन्न हैं, अतः उसके नाम भी अनेक हैं; परन्तु परमपिता परमात्मा का निज और सर्वप्रिय प्रसिद्ध नाम 'ओ३म्' है जिसका उच्चारण ओम् होता है। सब आर्षग्रन्थों में भी ईश्वर का निज नाम ओम् ही बताया गया है, अतः 'ओम्' नाम का जाप करना, ओम् नाम का अर्थपूर्वक स्मरण करना अत्युत्तम है।

ईश्वर के किसी भी अन्य गौणिक नाम में अगर श्रद्धा-प्रेम है तो वह भी आपके लिए उतना ही लाभकारी है जितना कि प्रभु का प्यारा नाम 'ओम्'। ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि नाम का अर्थ क्या है? शब्द के अर्थ का विचार/ध्यान करना उतना ही आवश्यक है जितना नाम को स्मरण करना। नाम में जो-जो गुण-कर्म-स्वभाव हैं, उनको स्मरण करके अपने जीवन में उन अर्थों का आचरण करना ही सही मायनों में नामस्मरण है। यही नामस्मरण की विधि है। नामस्मरण गुरु से संपर्क करके करें या स्वयं विवेक से भी करें, कोई

फ़र्क नहीं पड़ता, क्योंकि नाम की शक्ति उसमें छुपे अर्थ में होती है। अर्थ ही मालूम नहीं तो नाम जपने का क्या अर्थ?

मंत्र तो वेदों के होते हैं। वेदों की ऋचाओं को ही मंत्र कहते हैं, जो परमेश्वर के दिये होते हैं। मनुष्य तो मंत्र का निर्माण कर ही नहीं सकता। गुरुमंत्र (गायत्री मंत्र) वैदिक ही है। मंत्र चारदीवारी में छुपाकर अपने शिष्यों को देने की चीज नहीं है। मंत्र सब के समक्ष भरी सभा में सुनाना चाहिए। अर्थ-सहित मंत्रपाठ से ही भला हो सकता है। जब मंत्र का रचयिता ईश्वर है तो अपनी ओर से मंत्र देनेवाला गुरु कौन होता है? चोरी-छुपे देने का अभिप्राय क्या हो सकता है? चोरी-छुपे जो भी काम होता है—Secrate (रहस्य) होता है उसका कारण तो होना चाहिए? कुछ ही लोगों को नामदान दें, अन्यों को उससे वंचित रखें, यह या तो अन्याय है या फिर उसके पीछे स्वार्थ छुपा है। ये बातें गुरुओं के चेलों को अपने गुरु से पूछनी चाहिएँ। ये गुरु जो मंत्र या नामदान देते हैं, औरों को बताने से भी इनकार करते हैं—कहते हैं कि अगर दूसरों को इन नामों के बारे में बताओगे तो गूँगे हो जाओगे—फिर हमसे कुछ मत कहना। वाह जी! क्या मंत्र इतना बुरा है जो दूसरों के बताने से—बतानेवाला गूँगा बन जाता है? एक और बात गुरु जी कहते हैं कि 'तुमने हमको गुरु माना है—अब इसके बाद किसी को गुरु नहीं बनाना। न ही किसी गुरु के दर पर जाके माथा टेकना। ऐसा करोगे तो सर्वनाश हो जाएगा।' वाह जी! आपके ग्राहक दूसरी दुकान पर जाएँगे तो उनका सर्वनाश क्योंकर होगा? नुकसान तो आप ही का होगा कि एक ग्राहक कम हो जाएगा।

भाइयो! इस प्रकार के दम्भी-पाखण्डी गुरुओं से सावधान! सच्चे गुरु मिल जाएँ तो उन्हें अवश्य गुरु मानना चाहिए। उन सद्गुरुओं से मंत्र-दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए। सद्गुरुओं की श्रद्धापूर्वक हर प्रकार से सेवा करनी चाहिए। सद्गुरुओं का मान-सम्मान करना चाहिए। सद्गुरुओं की आज्ञाओं का पालन अवश्य करना चाहिए। सद्गुरु ही इस भवसागर से पार उतारता है—यह बिल्कुल सही बात है, इसमें कोई विरोध नहीं है!

गुरु सत्य मार्ग को बताता है, अतः वह मार्गदर्शक का कार्य करता

है। जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है, जो असत्य से छुड़ाकर सत्य पथ पर चलाता है, जो मृत्यु के फंदे (चंगुल) से छुड़ाकर अमृतपान कराता है, ऐसे गुरुजनों को कोटि-कोटि प्रणाम! उनके चरणों में शीश झुकाना ही शिष्यों का धर्म है—ऐसे गुरुओं की हर बात को अवश्य मानना चाहिये।

अंधविश्वास : 18 : कहते हैं कि साधु-संत या गुरु की निन्दा नहीं करनी चाहिए। इससे पाप लगता है।

निर्मूलन : किसी की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए—यह सच है, परन्तु सत्य कहने में कभी डरना भी नहीं चाहिए। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही कहना-जानना-मानना स्तुति कहाता है। जो व्यक्ति जैसा है और उसके बारे में जैसा जानते हैं तो वैसा कहने में क्या आपत्ति है ? यह उस व्यक्ति की निन्दा नहीं है। किसी के बारे में गलत कहना—उसकी बिना कारण बुराई करना—पीठ-पीछे किसी के बारे में ऐसा कहना जो हम नहीं जानते—इसको निन्दा कह सकते हैं।

कोई चोर है, चोरी करता है और उसके बारे में कहें कि इस अमुक व्यक्ति से बच के रहना चाहिए—तो क्या यह निन्दा होती है? जी नहीं! जो संत-महात्मा हैं, अगर उनके बारे में ग़लत बात करें तो वह निन्दा है; परन्तु अगर उनके बारे में सही-सही बता रहे हैं तो यह निन्दा नहीं अपितु उनकी स्तुति है। किसी की भी निन्दा करना पाप है—यह हम भी मानते हैं—जानते हैं। सत्य बोलने में कोई पाप नहीं। हाँ, असत्य बोलने में या असत्य बात को छुपाने में अवश्य पाप लगता है।

जो साधु-संत-महात्मा-गुरु वेद-विरुद्ध बात करते हैं, वास्तव में वे साधु-संत-महात्मा या गुरु तो हो ही नहीं सकते। इन लोगों का पोल खोलने में ही परोपकार है। जो कभी कुछ कहते हैं और कभी कुछ—ऐसे लोग महात्मा या गुरु कहाने के योग्य नहीं होते। ये माना कि मनुष्य ग़लतियां करता है—ग़लतियों का पुतला है, परन्तु उनको भी चाहिए कि जो भी वक्तव्य दें—प्रवचन दें, उनमें भेद नहीं होना चाहिए। कभी सत्य बोलें—कभी असत्य बोलें—तो ऐसे व्यक्तियों की ग़लती को कहना—निन्दा नहीं होती! गुरु हो या महागुरु, अगर ग़लती करता है

तो उसको सही करना ही सबका धर्म है।

बिना वजह किसी की बुराई करना पाप है!

हमने गुरुओं (आजकल के बाजारू दुकानदारी करनेवाले, अपने-आप को गुरु कहलानेवाले) की जो भी बात की है वह देखी-सुनी हुई बातें हैं। हमने उनके अनेक प्रवचन सुने हैं—कभी वेदों की बातें करते हैं, कभी वेदों का खंडन करते हैं तो ऐसे गुरुओं को क्या कहना चाहिए? जो केवल अपने शिष्य (चेले) बनाने में ही लगे हैं—अपनी पूजा कराने में ही लगे हैं—धन बटोरने में ही लगे हैं—केवल भीड़ इकट्ठी करने में ही अपनी शान-मान-सम्मान समझते हैं—कभी रुलाते हैं कभी हँसाते हैं—ये तमाशाई गुरु नहीं तो और क्या हैं? क्या गुरु नहीं कहता—मेरा नामदान ग्रहण करो तो ही तुम्हारा कल्याण होगा? क्या ऐसे लोगों को आप गुरु मानते हैं? जो समाज के कल्याण के लिए कुछ नहीं करते, केवल उनका अपना कल्याण कैसे हो इसी में लगे रहते हैं—क्या उनको गुरु का दर्जा देना चाहिए?

जो सच्चे गुरु हैं उनकी हम नतमस्तक होकर वंदना करते हैं। उनकी बात को मानना ही शिष्यों का परमधर्म है। जो सच्चे गुरु हैं उनका हम भी सेवा-सत्कार करते हैं। जो हमारा सत्य मार्गदर्शन करते हैं ऐसे गुरुओं की निन्दा कैसे हो सकती है? सच्चे गुरु तो स्वयं भी ऐसा कहते हैं कि जो कुछ सत्य है—वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल है उसी को जानना-मानना चाहिए। गुरु मनुष्य ही होता है। वह ईश्वर तो कभी बन ही नहीं सकता और उस सच्चे गुरु को ईश्वर का दर्जा देना भी पाप है।

सच्चे गुरु की अवश्य ही पूजा होनी चाहिए इसमें कोई दो राय नहीं है।

अंधविश्वास : 19 : मनुष्य डरपोक प्राणी है। निर्भयता का उपाय है तंत्र-मंत्र और यंत्र शक्ति का सहारा लेना।

निर्मूलन : डर लगने के अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु मुख्य कारण है 'अज्ञानता'। जब तक मन में डर बैठा हुआ है, वह चैन की साँस नहीं ले सकता। भीरुता मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है और निडर ही उन्नति के पथ पर चल सकता है।

डर के कारण ही मनुष्य में हीनता उत्पन्न होती है, फलस्वरूप वह अपने जीवन में हमेशा दु:खी रहता है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की है—विवेक दिया है, परन्तु उसका प्रयोग अधिकतर लोग नहीं करते। डरते हैं कि बुद्धि के इस्तेमाल से शायद बुद्धि खत्म न हो जाए। इसी ग़लतफहमी में उनकी बुद्धि पर ज़ंग लग जाती है और बुद्धि के प्रयोग न करने से बुद्धि क्षीण हो जाती है।

यह प्राकृतिक नियम है और Scientific (सैद्धान्तिक) भी है कि जो वस्तु हम जमा करते हैं वह सदा घटती है, और जिस वस्तु को बाँटते हैं वही वस्तु बढ़ती रहती है। गुलाबी फूल सूर्य की किरणों में से केवल गुलाबी रंग ही वापस लौटा देता है, परिणामत: उसमें गुलाबी रंग ही रहता है। सफेद रंग अपने पास कुछ नहीं रखता, सब रंग लौटा देता है, इसी के परिणाम से वह सफेदी को बरक़रार रखता है। कोयला सूर्य की किरणें वापस ही नहीं करता, तभी तो वह काला रहता है। विद्वान् लोग अपना ज्ञान औरों को बाँटते रहते हैं। परिणामत: वे अधिक विद्वान् हो जाते हैं। स्कूल-मास्टर रोज़ पढ़ाते हैं, अत: उनको अपना विषय याद रह जाता है। संगीतकार जितना संगीत रचता और बाँटता है, उतना ही वह सुलझा हुआ संगीतकार कहाता है। कोई भी वस्तु जितनी बाँटी जाती है—यह विधि का विधान है कि वही वस्तु उसके पास अधिक रहती है। दान देनेवाला कभी निर्धन नहीं होता। विद्यादान देनेवाला कभी मूर्ख नहीं होता। जो मनुष्य दूसरों को अभयदान देता है, वह कभी डरपोक नहीं होता—सदा निर्भय होता है। जो दूसरों की रक्षा करता है, सभी उसकी रक्षा करने में तत्पर रहते हैं। निर्भयता मिलती है प्रभु-स्मरण से! निर्भयता प्राप्त होती है निष्काम कर्मों से! निर्भयता मिलती है सब प्राणियों के प्रति प्रेम करने से। निर्भयता प्राप्त होती है बुरे और अशुभ कर्मों से बचने से! सबसे मित्रता करने से!

प्रभु-भक्ति से मनुष्य में जो सबसे पहला सद्गुण प्राप्त होता है वह है 'निडरता'। निर्भय मनुष्य ही परमपिता परमात्मा की गोद में बैठने का अधिकारी होता है। प्रभु की अमृतमयी गोद में बैठकर डर किसका?

कुछ लोगों का काम ही डराना-धमकाना है, इसी को गुंडागर्दी

कहते हैं। धर्म के नाम पर डराना तो गुंडागर्दी से भी अधिक भयंकर पाप है। धर्म की आड़ में मंत्र-तंत्र-यंत्र का पाखण्ड करना और सीधे-सादे लोगों को भ्रमित करना तथा अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए काली विद्या से डराना धूर्त लोगों का काम है। कुछ लोग अपने-आपको तांत्रिक समझते हैं और कहते हैं कि 'हमारे पास आओ तो हम आपका कल्याण करेंगे; किसी का अशुभ करना है तो हमारे द्वारा हो सकता है—हम तांत्रिक विद्या से जो चाहें कर सकते हैं—किसी का कल्याण या किसी की तबाही भी कर सकते हैं—यहाँ तक कि किसी की मृत्यु भी करा सकते हैं। हमारी काली विद्या का सहारा लेना है तो किसी से इस बात का ज़िक्र भी न करना, वरना तुम्हारा सर्वनाश हो जाएगा।' ऐसे धूर्तों से बचो! निडर होकर जियो!

अंधविश्वास : 20 : मंत्र, यन्त्र और तंत्र में अनेक प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। उनसे हर प्रकार के कार्य सिद्ध होते हैं।

निर्मूलन : मंत्र क्या है और उसकी शक्ति क्या है—यह एक और भ्रान्ति है जो सबकी समझ में अच्छी तरह नहीं आती, क्योंकि उन्होंने मंत्र का सही स्वरूप समझा ही नहीं है।

मंत्र कहते हैं—मंत्रणा को। जिस पर कुछ विचार किया जा सके, उस विषय को मंत्र कहते हैं। याद रहे कि मंत्र ईश्वरीय ही होते हैं अर्थात् वेद की ऋचाओं को ही मंत्र की उपाधि दी जाती है। किसी ऋषि-मुनि-साधु के बनाए वाक्यों को 'श्लोक' एवं 'दोहा' कहते हैं। गीता में श्लोक हैं—उपनिषदों में सूक्त हैं—दर्शनग्रंथों में सूत्र होते हैं, परन्तु मंत्र केवल और केवल वेद की ऋचाओं को ही कहते हैं। वेद के हर एक मंत्र पर विचार किया जा सकता है तथा उन विचारों से मनुष्य-जीवन में प्रगति और उत्थान हो सकता है।

जब वेद में कहे मंत्र पर आचरण किया जाता है, तभी मंत्र की शक्ति अपना काम करती है। मंत्र को समझकर उसका आचरण करना ही सही मायनों में मंत्र-पाठ कहाता है। मंत्रोच्चारण से मंत्र कंठस्थ हो सकता है परन्तु मंत्र-शक्ति तभी प्राप्त होती है जबकि उस मंत्र के भाव पर आचरण करते हैं।

जब किसी मंत्र के भाव को लेकर किसी वस्तु का निर्माण किया

जाता है, उस वस्तु को (उपकरण को) यंत्र कहते हैं। वही यंत्र जब किसी काम के लिए उपयोग में लाया जाता है तो उसे तंत्र की संज्ञा दी जाती है। मंत्र लिखकर तावीज बनाकर किसी के गले में बाँध देना—लोग इसको भी तंत्र कहते हैं।

मंत्र+यंत्र+तंत्र। प्रायः लोग तंत्र-विद्या से किसी का अशुभ करने करवाने का प्रयत्न करते हैं, जो उचित नहीं है। जो दूसरों का अशुभ करता है, प्रकृति-नियमानुसार उसका ही अशुभ होता है। भला करनेवाले का भला होता है और बुरा करनेवाले का या बुरा चाहनेवाले का बुरा ही होता है—आज़माकर देख लीजिये! हाथ कंगन को आरसी क्या, और पढ़े-लिखे को फारसी क्या? जो जैसा करता है उसको वैसा ही फल मिलता है, अतः ईश्वर की न्यायव्यवस्था से सावधान रहो! कर्म करने से पहले सोचो-विचारो, फिर उस कार्य को करो!

अज्ञानता का दूसरा नाम 'डर' है। जो डरता है समझो अज्ञानी है—अनाड़ी है—ईश्वर में विश्वास नहीं है—नास्तिक है। जब ईश्वर साथ में है तो डर किस बात का?

दुष्ट आदमी से कैसे व्यवहार करें? दुष्ट से कभी-कभी दुष्टता का व्यवहार भी करना पड़ता है। तभी तो कहते हैं—शठे शाठ्यं समाचरेत्। यदि दुष्टता से स्वयं को बचाना है तो दुष्ट से मेलजोल ही न बढ़ाएँ। जब कभी आमना-सामना हो जाए तो प्रेम और समझदारी से काम लें। प्रेम से बात करेंगे और विवेक को जागृत कर व्यवहार करेंगे तो शत्रु भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। विद्वानों से मित्रता करें और जो अनाड़ी हैं उनसे वैर-विरोध न करके प्रेम और समझदारी से बुद्धिपूर्वक व्यवहार करें। इसी में समझदारी है। जीओ और जीने दो—यही मूलमंत्र है जो सभी के लिए हितकर है।

वेदाध्ययन करें—स्वाध्याय में नाग़ा न करें—आर्षग्रन्थों का नियम से स्वाध्याय करें—अपने व्यवहार में परिवर्तन लाएँ। काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-द्वेष-अहंकार ही हमारे असली शत्रु हैं, इनको त्यागें और प्रेम को अपने जीवन में धारण करें। श्रद्धा से ही प्रेम उत्पन्न होता है—प्रेम से ईश्वर की प्राप्ति होती है—ईश्वर ही सब प्रकार के सुखों का भण्डार है—अमृत-सागर है। ईश्वर-प्राप्ति में ही परम आंनन्द है।

अंधविश्वास : 21 : आत्मा परमात्मा का अंश है, परम आनन्दस्वरूप है।

निर्मूलन : जी नहीं! आत्मा अलग है और परमात्मा अलग है। दोनों ही अलग-अलग सत्ताएँ हैं। इन दोनों का मेल तो होता है, परन्तु आत्मा का परमात्मा में विलय नहीं होता। यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि आत्मा परमात्मा का ही अंश है। वस्तुतः आत्मा परमात्मा का अंश हो ही नहीं सकता। हम यहाँ कुछ तर्क देते हैं, बुद्धिजीवी लोग इस पर विचारकर निर्णय स्वयं ही कर सकते हैं। नीचे कुछ प्रश्न करते हैं उनका उत्तर ढूँढने का प्रयत्न करें—

(1) आत्माएँ अनेक हैं तो ये सभी परमात्मा से कब अलग हुईं?

(2) जब से यह दुनिया है—आत्माएँ भी हैं और परमात्मा भी है। देखने में तो यही आता है कि प्रतिदिन जीवों की बढ़ोतरी होती जा रही है। तो क्या ईश्वर अपने को अनेक टुकड़ों (अंशों) में बाँटकर नई आत्माओं का निर्माण कर रहा है?

(3) अगर इसी प्रकार आत्मा परमात्मा से जुदा होती रही तो एक दिन ऐसा भी आएगा जब परमात्मा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। क्या ऐसा सम्भव है?

(4) आखिर परमात्मा में इतना विकार क्यों होता है कि उसके अंश होते रहते हैं?

(5) कहते हैं ईश्वर एक और अखंड है। जब आत्माएँ परमात्मा के अंश हैं तो ईश्वर क्या अनेक टुकड़ों में बँट गया है?

(6) हम (आत्माएँ) परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं। आत्माएँ परमात्मा का अंश मानें तो क्या हम अपनी ही पूजा करते हैं? यह तो ढोंग हुआ?

(7) ईश्वर से हम (आत्माएँ) मुक्ति की याचना करते हैं, परन्तु जो स्वयं (ईश्वर) ही छिन्न-भिन्न होता जा रहा है, जो अपनी ही रक्षा-सुरक्षा नहीं कर सकता तो हमारी बात कैसे सुनेगा? जो स्वयं ही परेशान है वह औरों की क्या सोचेगा?

(8) आत्मा अगर परमात्मा का अंश है तो दोनों में समानता होनी

चाहिये—दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव एक-से होने चाहिएं, परन्तु ऐसा नहीं है ? क्यों ?

(9) कर्मफल ईश्वर देता है—इसका तो यही अर्थ हुआ कि वह अपने-आपको दण्ड देता है, अर्थात् ईश्वर होकर भी (आत्मा अगर परमात्मा का अंश है तो) शुभाशुभ कर्म क्यों करता है और फल भी स्वयं ही क्यों भुगतता है ?

(10) जब आत्मा परमात्मा का ही अंश है तो वह परमात्मा अपने ही भाग (अंश) बनाकर किसको दिखाता है ? उसका ऐसा करने में क्या प्रयोजन है ? ऐसी लीला किसके लिए रचाता है ?

(11) परमात्मा प्रकृति में विकृति उत्पन्न कर सृष्टि की रचना क्यों करता है ? किसके लिए करता है ?

(12) स्वर्ग और नरक, पाप और पुण्य किसके लिए हैं ?

(13) वेद का ज्ञान किसके लिए है ?

(14) ईश्वर सर्वज्ञ है तो अपने ही अंश बनाकर अल्पज्ञ क्यों बनता है ? यह तो अल्पज्ञ ही कर सकता है, है ना ?

(15) अपने ही कर्मफल के बदले में इतनी सारी योनियों में भटकना क्या किसी सर्वज्ञ का काम हो सकता है ?

(16) साधारण मनुष्यों का ऐसी बातें सोच-सोचकर ही मस्तिष्क घूम जाता है, अर्थात् ईश्वर का मस्तिष्क भी घूमता है ?

(17) स्त्री-पुरुष के संयोग से संतान उत्पन्न होती है। अगर आत्मा परमात्मा का अंश है तो क्या संयोग-वियोग ईश्वर स्वयं से ही करता है ?

(18) प्रलयावस्था में क्या आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है ? अगर हाँ तो कर्मफल का क्या हुआ ? अगर नहीं तो ईश्वर क्या सदा से खंडित है और ऐसा ही रहेगा ?

(19) भूकम्प-बाढ़ इत्यादि आधिदैविक दुःख में अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं—कितनी ही आत्माओं को इनका सामना करना पड़ता है—क्या ईश्वर अपनी ही बनाई सृष्टि से अपने-आपको दुःख देता है ?

(20) अगर आत्मा परमात्मा का अंश है तो इतने सारे मंदिर-मस्जिदों की क्या आवश्यकता है? इतने मत-मज़हब-जातियाँ—इतने झगड़े-फसाद—इतने देश—इतनी अज्ञानता किसकी है? क्या ईश्वर इतना अज्ञानी हो गया है? ऐसा है तो वह इतने बड़े ब्रह्माण्ड को कैसे सँभालता होगा?

सज्जनो और विद्वज्जनो! ऐसा कुछ भी नहीं है। आत्मा न तो परमात्मा का अंश है और न ही जीवात्मा कभी परमात्मा के अंश हो सकते हैं। ईश्वर एक है, अखंड है और सदा एकरस रहता है—वह सर्वज्ञ है!

परमपिता परमात्मा को संक्षेप में समझने का प्रयास करें! अपने गुणों के अनुसार ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप-निराकार-अनादि-अनुपम-सर्वशक्तिमान्-न्यायकारी-दयालु-अजन्मा-अनन्त-निर्विकार-सर्वाधार-सर्वान्तर्यामी-सर्वेश्वर-सर्वव्यापक-अजर-अमर-अभय-नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्ता है। सब जीवों के कार्यों का फलदाता मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ वेदज्ञान का प्रदाता है।

ईश्वर को खंडित जानना-मानना मूर्खता है—आत्मा को परमात्मा का अंश-भाग-हिस्सा-टुकड़ा मान लेना अज्ञानता है—घोर पाप है। आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है, इसका अस्तित्व परमात्मा से पृथक् है। इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए कि तीन तत्त्व अनादि-अजर-अमर हैं, वे हैं (1) ईश्वर, (2) जीव, और (3) प्रकृति। प्रकृति जड़ है, जबकि ईश्वर और जीव चेतन हैं अर्थात् इनमें ज्ञान है। ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापाक है—निराकार है और सृष्टिकर्ता है। दूसरी ओर जीव अल्पज्ञ है—एकदेशी अणु है और ईश्वर की कृपा से ही शरीर धारण करता है। ससीम होने के कारण वह सृष्टि-निर्माण नहीं कर सकता। भोग और योग की सिद्धि के लिए उसको इस जड़ शरीर की साधन के तौर पर आवश्यकता पड़ती है जो वह अपने ही किये कर्मों के फलस्वरूप सर्वज्ञ परमपिता परमात्मा से प्राप्त करता है, अतः आत्मा भी बिना शरीर के (प्रकृति की भाँति) कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर, जीव (आत्माएँ) और प्रकृति, इन तीनों के मेल से ही संसार में रौनक बनी रहती है। ईश्वर प्रकृति-तत्त्व से ही सृष्टि का निर्माण

करता है। अगर जीव को ईश्वर का अंश मान भी लें, तो फिर जीव को कर्म करने की आवश्यकता ही क्या है ? हम (आत्माएँ) कार्य करते हैं—खाते हैं—पीते हैं—सोते हैं—जागते हैं—अनेक अच्छे-बुरे कार्य करते हैं और अच्छे फल की इच्छा करते हैं। अब ज़रा सोचिये-विचारिये! हम ऐसा क्यों करते हैं ? अगर हम स्वयं ही ईश्वर हैं (ईश्वर के अंश हैं तो) तो फिर किसी से भी क्योंकर डरते हैं ? फिर हमें अच्छे कार्य करने की प्रेरणा कौन देता है ? आनन्द कौन बख्शता है ? हम मंदिर-मस्जिद इत्यादि भवनों में क्यों जाते हैं ? दुःख के समय उस परमशक्ति परमपिता परमेश्वर को क्यों याद करते हैं ? इन भ्रान्तियों का निवारण तो यही है कि हम स्वयं अलग सत्ता हैं और हमारा परमप्रिय परमवंदनीय परमात्मा हम अल्पज्ञों से जुदा है जिसके भण्डार 'आनन्द' रस से भरे हुए हैं। उस परमानन्द को प्राप्त करने के लिए ही हम सभी (आत्माएँ) उस प्रभु से प्रार्थना करते हैं, उसकी उपासना करते हैं। कर्म करके फल उसके ऊपर छोड़ देते हैं। जो फल वह परमात्मा हमको प्रदान करता है, वह भुगतना ही पड़ता है।

त्रैतवाद के सिद्धान्त को जाने बिना ज्ञान-प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। एकवाद-द्वैतवाद के जानने-माननेवाले त्रैतवाद के सिद्धान्त के आगे क्यों झुक जाते हैं ? वैदिक मान्यता यही है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों ही पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं जो कभी, किसी भी स्थिति में एक-दूसरे में लीन नहीं हो सकते। अतः आत्मा को परमात्मा का अंश माननेवाले लोगों को सत्य को जानना और मानना चाहिए।

केवल स्वार्थपूर्ति के लिए, अपनी पूजा करवाने की लालसा में जन-साधारण को अज्ञानता की खाई में नहीं ढकेलना चाहिए। जन-साधारण से भी हम प्रार्थना करते हैं कि स्वाध्याय करें—आर्षग्रन्थों को घर में रखें, उन्हें स्वयं भी पढ़ें, औरों को भी पढ़ने की प्रेरणा देते रहें। स्वयं आर्य (श्रेष्ठ) बनें और दूसरों को भी आर्य बनावें।

अंधविश्वास : 22 : दिवाली के शुभावसर पर लक्ष्मीपूजन करना चाहिए! ऐसा न करेंगे तो लक्ष्मी नाराज होकर—रूठकर घर से चली जाती हैं और दरिद्रता का सामना करना पड़ता है।

निर्मूलन : दिवाली के शुभावसर पर ही नहीं, परन्तु सभी दिन

लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। इसकी पूजा न करने से यह सच है कि लक्ष्मी रूठ जाती है और घर में अनेक प्रकार के कष्ट आते हैं।

आगे बढ़ने से पहले हमें अच्छी तरह समझना होगा कि 'लक्ष्मी' किसे कहते हैं और लक्ष्मी की 'पूजा' का क्या तात्पर्य है एवं लक्ष्मीपूजन कब और कैसे करना चाहिए?

लक्ष्मी उसे कहते हैं जो लक्ष्य तक पहुँचाए। हर एक के जीवन का कोई न कोई लक्ष्य (मंजिल) होता है, परन्तु मनुष्यमात्र का परम लक्ष्य है **परमसुख की प्राप्ति** अर्थात् आनन्द की प्राप्ति। इस लक्ष्य को हासिल करने का सरलतम तरीका है—ईश्वर-प्राप्ति!

धन-दौलत लक्ष्मी का ही स्वरूप है क्योंकि जीवन को सुखमय बनाने में इसका बहुत बड़ा हाथ होता है। धन-दौलत से संसार-भर की जड़ वस्तुएँ खरीदी जा सकती है—यह बिल्कुल सच है। अगर संसार में सुखपूर्वक रहना है तो इस लक्ष्मी को भी हमारे पास रहना होगा और अगर उस परलोक में (ईश्वर के पास) रहना है तो हमें ऐसी लक्ष्मी का सहारा लेना होगा जो हमको परमपिता परमात्मा तक पहुँचाने में सहायता करे।

पहले संसारिक लक्ष्मी के बारे में बताते हैं, फिर उस लक्ष्मी के बारे में बताएँगे जो परमप्रिय प्रभु से मिलाती है। संसार की लक्ष्मी 'रुपया-पैसा-धन' है जो वह सफेद भी होती है और काली भी। विद्वज्जन तो जानते ही हैं कि सफेद और काली लक्ष्मी कैसी होती है।

जो धन ईमानदारी से, धर्मपूर्वक, परिश्रम से कमाया जाता है वह 'सफेद धन' होता है—इसी को सफेद लक्ष्मी कहते हैं। यह लक्ष्मी जिसके घर में वास करती है वह घर सौभाग्यशाली होता है। जिस घर में बेईमानी से, अधर्मपूर्वक और बिना परिश्रम किये (जुआ-तस्करी द्वारा) धन आता है उस घर की बरबादी शुरू हो जाती है। पहले तो घर में खुशियों जैसा वातावरण बना रहता है, परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् वही खुशी मायूसी में परिवर्तित हो जाती है—दुनिया-भर के दुःखों का पहाड़ टूट पड़ता है और छुटकारा पाना बहुत ही कठिन हो जाता है।

धर्म से कमाया धन हमेशा साथ देता है और अधर्म से इकट्ठा किया हुआ धन घर की तबाही करता है। जो धर्म से कमाया हुआ धन होता है उसका व्यय भी धर्मपूर्वक ही होता है—यही लक्ष्मी की सही पूजा है अर्थात् धन का सदुपयोग करना ही लक्ष्मी की पूजा कहाती है। जो धन बिना परिश्रम किये घर में आया है—उल्टे-सीधे कार्य करके आया है—कुकर्म करके 'काले धन' की प्राप्ति हुई है—सच मानो ऐसा काला धन काले कार्यों में ही व्यय होता है। **यह लक्ष्मी का निरादर है।**

जब कहीं ख़र्च करना उचित है—आवश्यक है, अर्थात् जब धन का सदुपयोग होता है तो वह लक्ष्मीपूजन है, और जब धन का दुरुपयोग होता है, वह लक्ष्मी का निरादर है।

दिवाली के शुभ अवसर पर लक्ष्मीपूजन करना चाहिए। तात्पर्य आप समझ ही गए होंगे, अर्थात् परिश्रम से कमाई हुई लक्ष्मी का ठीक-ठीक उपयोग करें—नेक कार्य में लगाएँ—धर्मकार्यों में लगाएँ—गरीबों को दान दें, इत्यादि—यही लक्ष्मीपूजन है।

अक्सर लोग घरों में, दूकानों में, दफ्तरों में चाँदी के सिक्के दूध में डुबाकर लक्ष्मी की पूजा करते हैं, भजन गाते हैं और लक्ष्मी (धन) को घर में ही बसे रहने की याचना करते हैं और वृद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। यहाँ इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि जो धन पुण्यकार्यों में खर्च होता है—वह खर्च नहीं होता, अपितु आपके पुण्यकर्मों में जमा होता रहता है। इन्हीं शुभ कार्यों से परमपिता परमात्मा धन की वृष्टि उस घर में करता है। जिन घरों में धर्म-कार्य नहीं होते—ग़लत कार्य होते रहते हैं—लक्ष्मी (धन) वहाँ से प्रस्थान करती है, अर्थात् धन का दुरुपयोग होने से धन की समाप्ति हो जाती है—घर में दीनता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।

भौतिक लक्ष्मी जड़ है। उसे अगरबत्ती-धूप का धुआँ दिखाने से या दीये की ज्योत दिखाने से उसमें कोई फर्क नहीं आता! इन चाँदी के सिक्कों के स्थान पर कोई नोट नहीं रखता—क्यों? डर है कि नोट जलकर राख हो जाने की संभावना है। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि यह लक्ष्मीपूजन केवल दिखावा है, वास्तविकता नहीं।

दिवाली के शुभावसर पर सच्ची लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। घर में जो भी अपने से बड़े बुजुर्ग लोग हैं उनके पैर छूकर, आगे झुककर आशीर्वाद लेना चाहिए। मातृ-शक्ति का मान-सम्मान-सत्कार करना चाहिए। गृहलक्ष्मी अर्थात् धर्मपत्नी को सदा प्रसन्न रखने का प्रयास करना चाहिए। गृहलक्ष्मी नाराज है, रूठी हुई है तो उसे मनाना चाहिए। गृहलक्ष्मी प्रसन्नचित्त नहीं है तो लक्ष्मी (धन) का घर में प्रवेश बन्द हो जाता है। जिस घर में कलह-क्लेश और जहाँ प्रेम के वातावरण की न्यूनता होती है, उस घर से लक्ष्मी सचमुच रूठ जाती है। स्त्री-पुरुष का प्रेम ही घर में सुख-सम्पत्ति-शान्ति को बढ़ावा देता है, अत: गृहस्थी लोगों को सदा प्रसन्नचित रहना चाहिए।

धन-दौलत तो आनी-जानी वस्तु है। उसे अधिक प्राथमिकता न देकर अपने परमलक्ष्य की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। धन को साधन समझें, साध्य न बनाएँ। गृहस्थ हो या अकेला व्यक्ति, सबका साध्य सुख-शान्ति है। जितने में घर का ख़र्च बराबर चले—घर में सुख-समृद्धि बरकरार रहे, उतना ही धन गृहस्थी के लिए आवश्यक है। 'खूब कमाओ और खूब दान करो!' परन्तु आवश्यकता से अधिक धन भी हानिकारक होता है। अधिक धन को परोपकारी कार्य में लगाने से घर में सुख-सम्पत्ति-शान्ति का वातावरण बना रहता है। दानपुण्य-कर्मों से घर में समृद्धि और प्रेम बना रहता है। फ़िजूलखर्ची से ही घर में अशान्ति और अन्य प्रकार के अनेक नाखुश वातावरण उत्पन्न होते हैं।

ज्यों जल बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम॥

मनुष्य की असली लक्ष्मी 'ज्ञान' है जिसकी प्राप्ति सबको करनी चाहिये। ज्ञान ही सच्ची लक्ष्मी है जो परमपिता परमात्मा से मिलाप कराती है। सद्ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें परिश्रम, वैराग्य, सबसे प्रेम और आर्ष ग्रंथों के स्वाध्याय की आवश्यकता है। इस लक्ष्मी से ही नारायण के दर्शन होते हैं और जन्म-जन्मान्तरों के सब प्रकार के कष्ट क्षीण हो जाते हैं। लक्ष्मी-नारायण की प्राप्ति ही हम सबका परमलक्ष्य है।

अंधविश्वास : 23 : लक्ष्मी का आह्वान करने से ही लक्ष्मी घर में आती है और वह घर में रहती है—पुराणों में ऐसा लिखा है।

निर्मूलन : लक्ष्मी, नारायण की पत्नी है। पौराणिक कल्पनाओं के अनुसार जैसे शंकर की पत्नी पार्वती है वैसे ही नारायण की पत्नी लक्ष्मी है। आप किसी की पत्नी को अपने घर में बुलाकर बसाना चाहते हैं—यह तो धर्म के विरुद्ध बात है! है ना? अगर लक्ष्मी को अपने घर बुलाना चाहते हैं—उसका पूजा-सत्कार करना चाहते हैं तो पहले उसके पति को आमंत्रण देना ज़रूरी है। पति-पत्नी दोनों ही साथ-साथ आएँ—यही धर्म कहता है।

नारायण को ही विष्णु कहते हैं। नारायण और विष्णु का एक ही अर्थ है—जो कण-कण में विद्यमान रहता है वह विष्णु है, जो नर-नारी के हृदय में रहता है उसे नारायण कहते हैं।

(पुराणों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश—ये सब एक ही ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार नाम रखे गए हैं। ईश्वर एक है, परन्तु उस प्रभु के अनेक नाम हैं क्योंकि वह अनन्त गुण-कर्म-स्वभाववाला है।)

यज्ञ को विष्णु भी कहा गया है। ईश्वर यज्ञस्वरूप है, अतः आप अपने घर को यज्ञमय बना दीजिये, तब यज्ञ की शक्ति अर्थात् लक्ष्मी स्वतः वहाँ निवास करेगी। जिस घर में प्रतिदिन यज्ञकर्म होता है—अग्निहोत्र होता है, उस घर में सुख-सम्पत्ति-समृद्धि और शांति का वास होता है। जहाँ प्रभु बसते हैं उस घर में किस चीज़ की कमी? परोपकार के सभी कर्म 'यज्ञ' कहलाते हैं, तभी तो यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा गया है। वेद का भी यही आदेश है कि जो स्वर्ग की कामना करते हैं उन्हें यज्ञ करना चाहिए।

यज्ञकर्ता ही स्वर्ग के अधिकारी हैं। स्वर्ग क्या है?—सुख-विशेष को स्वर्ग कहते हैं, दुःखविशेष को ही नरक कहते हैं। स्वर्ग या नरक इसी संसार में मिलता है। स्वर्ग-नरक कोई स्थानविशेष नहीं हैं जैसे साधारण लोग कल्पना करते हैं।

जो लोग चाहते हैं कि उनके पास हमेशा धन-दौलत के भण्डार भरपूर रहें—कभी धन का अभाव न हो, उन सबको चाहिए कि वे

अपने घर में अग्निहोत्र किया करें जिससे वायुमंडल तो शुद्ध होता ही है, साथ-साथ स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, कभी बीमारी नहीं आती, बुद्धि का विकास होता है, शारीरिक-मानसिक-सामाजिक उन्नति होती है, धन-दौलत की कभी कमी नहीं रहती और जीवन में सुख-सम्पदा-समृद्धि रहती है। बस यही तो स्वर्ग है जो सभी चाहते हैं।

यदि लक्ष्मी चाहते हैं तो नारायण को आमंत्रण देना ही होगा!

जब प्रभु से मित्रता करेंगे तो क्या प्रभु अपने भक्त को समृद्ध नहीं करेगा? परमपिता परमात्मा सबका बन्धु-मित्र-माता-पिता-स्वामी है। जितनी-जितनी उससे दोस्ती करेंगे, उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे, उसके कहे (वेद) को जानेंगे-मानेंगे, उतना ही अपने लक्ष्य की ओर शीघ्रातिशीघ्र आगे बढ़ते जाएँगे।

अंधविश्वास : 24 : काँच का टूटना शुभ माना जाता है और टूटे हुए काँच को घर में रखना अशुभ माना जाता है।

निर्मूलन : ग़लती से या बेख़बरी में (Accidental) काँच की बनी कोई वस्तु टूट जाए तो वह तो जुड़ नहीं सकती, अतः इसी में संतोष कर लेना कि चलो जो हो गया उसकी चिन्ता क्यों करें और अब चिन्ता करने से भी क्या लाभ? अतः इसे शुभकार्य समझकर मन की संतुष्टि कर लेने में ही समझदारी है। टूटे किनारेवाले गिलास से पानी पीते समय होंठ कट सकते हैं। काँच का टूटा हुआ बारीक टुकड़ा पानी के साथ गले में उतरकर जीवन खतरे में डाल सकता है। ऐसे अशुभ काँच को कूड़े में फैंकना ही उचित है।

शीशे में, दर्पण में दरार आ गई, सो तो ठीक होनेवाली नहीं और उसमें अपनी शक्ल देखेंगे तो भद्दा-सा लगता है। शक्ल-सूरत तो अपनी है परन्तु उसे दो भागों में देखना खलता है। ऐसे दर्पण को फैंक देना ही ठीक है। इसी कारण उसे अशुभ माना जाता है।

टूटे हुए काँच या दर्पण को कटवाकर छोटे साइज़ में उपयोगी बना लें तो कोई आपत्ति/अशुभ वाली बात नहीं होगी। टूटी हुई वस्तु कोई भी हो, न देखने में अच्छी, न उपयोग में आ पाएगी, इसीलिए अशुभ-सी लगती है।

काँच के टूटने में 'शुभ' होनेवाली कोई बात नहीं। चाव से खरीदे

गए दस-दस लाख मूल्य के काँच के फ़ानूस या झाड़ शुभ मानकर ही तो सजाए जाते हैं। उन्हें तोड़ना या उनका टूटना 'अशुभ' ही होगा, शुभ नहीं। मन से यह भ्रम निकाल दें कि काँच का टूटना शुभ होगा।

जिन दुकानों में काँच के सामान बिकते हैं या जहाँ बड़े-बड़े काँच बिकते हैं—कितना सँभालकर काम करते हैं! वहाँ अगर कोई बड़ा काँच टूट जावे तो क्या वह शुभ माना जाता है? कभी नहीं। बड़ी-बड़ी दुकानों में—ऑफिस में बड़े-बड़े Show cases काँच के होते हैं। काँच लापरवाही से टूट जाए तो वहाँ उसे क्या शुभ मानेंगे? कभी नहीं। अगर काँच का टूटना शुभ होता तो इनका इंश्योरेंस न होता। दंगों में काँच तोड़ते हैं या टूट जाते हैं तो क्या शुभ होता है? इंश्योरेंस का भुगतान देना पड़ता है!

काँच का टूटना न तो शुभ है, न ही अशुभ! ये तो मन को दिलासा देने की बातें हैं। शुभ-अशुभ बताकर हम अपने-आपको तसल्ली देते हैं। यह भ्रम मन से हटा देना चाहिए। शुभाशुभ होना मनुष्य के कर्मों पर निर्भर करता है। काँच के टूटने न टूटने से कुछ नहीं होता अर्थात् इसका शुभ-अशुभ से कोई वास्ता नहीं है।

अंधविश्वास : 25 : रात्रि में झाड़ू नहीं मारना चाहिए और कूड़ा बाहर नहीं फैंकना चाहिए— इससे बरकत (समृद्धि) चली जाती है।

निर्मूलन : हमारी कुछ प्रथाएँ बड़ी सारगर्भित हैं जो हमारे पूर्वजों ने सोच-समझकर लागू की थीं। प्रायः घरों के छोटे-छोटे ज़ेवर और कीमती कागज़ों के पुर्ज़े इधर-उधर गिर जाते हैं। दिन के उजाले में घर बुहारें तो कूड़े में अलग दिखाई दे जाते हैं, परन्तु रात को नज़र नहीं आते। इसी कारण रात को या अँधेरे में बुहारने की मनाही कर दी। यह कोई भ्रान्ति नहीं है। इस प्रथा को सोच-समझकर लोगों ने अपनाया है। यदि घर में उजाले की कमी नहीं तो घर को रात्रि में भी बुहारने की कोई हर्ज नहीं। बुहारने पर भी, बाहर फैंकने की ज़रुरत नहीं, क्योंकि अँधेरे में कूड़ा घर के आगे बिखरेगा जो अशुभ आचरण है। अँधेरे में कूड़ा किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के सिर पर गिर सकता है। कूड़े के ढेर में उलझकर कोई औंधे मुँह गिर सकता है। इसीलिए

रात्रि में झाड़ू नहीं मारना चाहिए। इसे वहम या अंधविश्वास न समझें। जब कभी कूड़ा-करकट हो उसे साफ़ करना ही चाहिए। रात्रि में जहाँ हम शयन करते हैं, वहाँ साफ-सफ़ाई करके ही सोना चाहिए। घर में गंदगी है और झाड़ू लगाना आवश्यक है तो क्या झाड़ू नहीं लगाना चाहिए? घर की सफ़ाई अच्छी आदत है। गंदगी में कोई नहीं बैठना चाहता। लोग तो सुबह-शाम दोनों बार नहाते हैं। रात को हम देर से घर में आएँ, तो भी पहले नहाते हैं बाद में भोजन करते हैं।

झाड़ू मारकर कूड़ा बाहर नहीं फैंकना चाहिए। अगर घर के बाहर कचरे के डब्बे रखे हैं तो उनमें डालना चाहिए। हाँ, गल्ली-मुहल्ले में यहाँ-वहाँ कचरा फैंकना नहीं चाहिए। स्वच्छता का ध्यान जितना अपने घर में करते हैं, उतना ही घर के बाहर भी रखना चाहिए। इससे सबको लाभ ही होता है। शुद्ध वातावरण में रहना चाहिए। कचरा बाहर डब्बे में न फैंकने (डालने) से अगर बरकत जाती है तो ऐसे लोगों से कहना चाहिए कि वे उस कचरे को सँभाले रखें। कचरे के रहने में ही अगर बरकत है तो आसपड़ोस के घरों से भी कचरा लाकर अपने घर में रखें।

रात को तो—सोने से पहले—अवश्य ही घर में झाड़ू-फटका करना चाहिए और कचरा बाहर फैंकने की व्यवस्था है तो अवश्य ही फैंकना चाहिए। साफ-सफाई से ही बरकत होती है (बरकत=समृद्धि)। लक्ष्मी का वास गंदगी में नहीं, अपितु जहाँ स्वच्छता होती है वहीं होता है।

क्या गंदे बिस्तर पर आप सोना पसंद करेंगे? क्या घर में भोजन के टुकड़े यहाँ-वहाँ बिखरे हों—मच्छर और कीड़े घूम रहे हों—वहाँ विश्राम करना चाहेंगे?

घर में काकरोच घूम रहे हों—चूहे यहाँ से वहाँ कूद रहे हों—वहाँ क्या नींद आ सकती है? बीमारी का कारण है अस्वच्छता। जिस घर में सफ़ाई रहती है वहाँ रोग कम होते हैं। जिस जगह (घर में) हम अपने जीवन का सबसे अधिक समय बिताते हैं—विश्राम करते हैं, उस जगह की सफ़ाई का ध्यान हमेशा रखना चाहिए। बड़े शहरों में तो रात्रि में ही नगर निगम के कर्मचारी सड़कों की सफाई करते

हैं। क्या इससे उन शहरों की समृद्धि चली गई है? पाश्चात्य देशों की सफाई तो देखते ही बनती है।

इस भ्रान्ति को कतई मस्तिष्क से हटा दें कि रात्रि के समय झाड़ू न मारें या सफाई न करें।

अंधविश्वास : 26 : प्रसाद को अवश्य ग्रहण करना चाहिए, नहीं तो अशुभ ही होता है—ऐसा सत्यनारायण की कथा में कहा है!

निर्मूलन : जो बाँटा जाता है उसे प्रसाद कहते हैं—कृपा को भी प्रसाद कहते हैं।

सत्यनारायण की कथा में क्या कहा है उसे ध्यानपूर्वक समझना होगा, तभी बात का निर्णय किया जा सकता है। खाने-पीने की चीज़ें, जैसे—हलवा-पूरी-मिठाई-सेवबूँदी-चाय इत्यादि—साधारण तौर पर इन्हीं को हम सभी प्रसाद कहते हैं और ग्रहण करते हैं। ये तो खाद्य पदार्थ हैं। जो प्रभु-भक्त प्रवचन सुनने मंदिर इत्यादि धर्म-स्थलों पर जाते हैं, वे प्रातः घर से निकलते हैं और वापस घर पहुँचने में दो-तीन घंटे लग ही जाया करते हैं। प्रातः बिना अन्न ग्रहण किये भूखे पेट आते हैं, अतः उनकी सुविधा हेतु कुछ प्रातराश की व्यवस्था इन धर्म-स्थानों पर संस्था के व्यवस्थापक करते हैं जिनको ग्रहण करके कुछ राहत-सी मिलती है। इसको साधारण तौर पर प्रसाद का नाम दिया गया है। लोग बड़े चाव से उसे ग्रहण करते हैं। इसे पवित्र माना जाता है और इसे लेकर लोग घर भी ले-जाया करते हैं और घर में बैठे सदस्यों को बाँटते हैं। इन खाद्य पदार्थों को धर्म से मिलाना-जोड़ना कोई मायने नहीं रखता। इस प्रातराश को ग्रहण करने ना करने से कोई हानि या अशुभ नहीं होता। किसी चिन्ता में या भूख के मारे चक्कर आए इसका तात्पर्य यह नहीं कि उस भक्त ने प्रसाद लेने से इन्कार किया था। यह भ्रान्ति है। किसी को मधुमेह रोग है, उसे मीठा खाना मना है और वह प्रसाद (प्रभु की कृपा) समझकर मीठा हलवा-पूरी खाता है तो और भी अधिक बीमार पड़ जाएगा। यहाँ तक कि हस्पताल में भर्ती होने तक की नौबत आ सकती है। अब इसे क्या कहेंगे? प्रसाद ही हानिकारक हो गया ना?

सत्यनारायण की पौराणिक कथा में इस बात को महत्त्व दिया गया है कि आधी कथा के बीच में (प्रवचन को अधूरा सुने) उठकर चले जाना अनुचित है। इससे हानि न सुननेवाले को, निजी रूप से हो सकती है क्योंकि उसने प्रवचन अधूरा सुना था—पूरा ज्ञान ग्रहण नहीं कर पाया। इससे धन-दौलत की हानि होगी या किनारे पर लगी नाव डूब जाएगी या फिर प्रसाद खाने से वही डूबी हुई नाव वापस तैर जाएगी और सब सामान सही-सलामत हो जाएगा—यह तो संभव नहीं है। पानी में डूब गया सामान तो नष्ट होगा ही—बिखर भी जाएगा। नाव सीधी होगी तो सामान वापस वैसे ही पहलेवाली स्थिति में हो जाना—यह तो नामुमकिन है। इस पर कोई बुद्धिजीवी विश्वास नहीं कर सकता। प्रसाद खाने न खाने से नाव डूबना या फिर तैर जाना—अंधविश्वास के सिवा कुछ भी नहीं।

ज़रा-सा सोचिये-विचारिये और सत्य के ग्रहण करने का साहस करिये। सत्यनारायण की कथा की पुस्तक किसने लिखी है? सत्यनारायण क्या है? कौन है? जो कथा नहीं सुनता उसकी हानि होगी, जो इस कथा (Story) को सुनता है उसका भला होगा—यह कैसी विचित्र बात है? क्या सत्यनारायण यूँ ही किसी का भला-बुरा करता है? इसके लिए 'सत्यनारायण' को समझना होगाा—व्रत क्या है इसको समझना होगा। सत्यनारायण का व्रत धारण करने का स्पष्ट अर्थ है सत्यरूप परमात्मा के नियमों को स्वीकारने का व्रत लेना। इन शंकाओं का जब तक समाधान नहीं होता, तब तक अंधश्रद्धा-अंधविश्वास के कारण केवल हानि ही होती है। इसके लिए 'शंका-समाधान' नामक पुस्तक को पढ़ें; औरों को भी पढ़ाएँ। सत्यनारायण व्रत के बारे में ठीक-ठीक जानकारी के लिए और भी अनेक शंकाओं के समाधान के लिए वैदिक प्रमाणों से सुशोभित 'शंका-समाधान' को घर में रखें और उसका स्वाध्याय करें।

अंधविश्वास : 27 : शिवलिंग की पूजा से सब-कुछ होता है अर्थात् शिवलिंग के ऊपर पानी चढ़ाने से शिवजी प्रसन्न होते हैं!

निर्मूलन : मुझे लग रहा था कि शिवलिंग के बारे में कभी न

कभी शंका अवश्य उत्पन्न होगी! और सच भी है—जहाँ शंका उत्पन्न हो उसका समाधान होना ही चाहिए और जहाँ भ्रान्ति हो उसका निवारण अवश्य होना ही चाहिए। बहुत खोज करने के पश्चात् मालूम हुआ है कि समाज के कुछ लोगों ने अपने कुकर्मों को छुपाने के लिए अपनी करतूतें भगवानों पर लाद दी हैं और साधारण लोग उसी को सच समझकर मान लेते हैं। नतीजा यह कि अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा का वातावरण छा जाता है और दिन-ब-दिन लोग अधिक दुःखी होते रहते हैं।

जो शिवलिंग की कहानी प्रचलित हो चुकी है, सभी विद्वज्जन जानते हैं कि वह काल्पनिक है, उसमें कोई सचाई नहीं है।

जब यज्ञकर्म होता है तो वहाँ पहले यजमान दीया जलाते हैं, अग्नि प्रज्वलित करते हैं और मंत्रपाठ द्वारा अग्नि को यज्ञकुंड में स्थापित करते हैं। तब आगे की प्रक्रिया जारी रहती है।

दीपक जलने में तीन वस्तुएँ मुख्य होती हैं—(1) दीपक, (2) बाती, और (3) शुद्ध घी। जब दीपक में घी होता है तब भी बाती जलती है। प्रज्वलित दीपक अंधकार को भगाता है। जब ज़ोरदार हवा चलती है तो दीपक बुझ जाता है। परन्तु जहाँ हवा का रुख धीमा होता है, ना के बराबर होता है, दीपक उसी स्थान पर लम्बे काल तक बिना विचलित (Disturb) हुए सीधी लौ में जलता रहता है। यही स्थिति योग-साधना में योगी की समाधि-अवस्था में होती है। इस स्थिति को सबसे उत्तम बताया जाता है क्योंकि बाहरी विषयों का निरोध होता है।

जलते हुए दीपक की स्थिति बहुत लुभावनी होती है, सबको अच्छी लगती है और यहीं से पूजा आरम्भ होती है। दीपक की लौ को हिलता-डुलता न देखकर मन भी बिना विचलित हुए स्थित होने लगता है। बस यही शिवलिंग की भूमिका है।

कालान्तर में इस एकाग्र स्थिति को समझाने के लिए लोगों ने पत्थर का दीपक बनाकर उसमें पत्थर की ही बनी जोत सीधी रख दी और दीये का स्वरूप बनाकर जहाँ चाहा वहाँ रखकर पूजा-पाठ करना आरम्भ कर दिया। यहीं से शिवलिंग की पूजा का प्रचलन हुआ।

आज तक यही परम्परा कहिये या लोगों की अज्ञानता कहिये, चलती आ रही है।

इस प्रचलन को वाममार्गी लोगों ने बहुत ही विकृत रूप दे दिया। वाममार्गी वे लोग हैं जो गुप्तेन्द्रियों की पूजा करते हैं। किसी की भी स्त्री या किसी का भी पति, यहाँ तक कि वे अपने ही घर के सदस्यों से भी अपनी कामवासना की पूर्ति करते हैं। वे काम-वासना (sex) को ही प्राथमिकता देते हैं इसमें कोई पाप नहीं समझते—इसी को वे धर्म कहते हैं। इस प्रकार के लोगों ने ही पवित्र दीपक के इस स्वरूप को 'शिवलिंग' के नाम से प्रसिद्ध किया और शिव-पार्वती की कहानी का निर्माण किया। अपनी सब बुरी से बुरी भावनाएँ शिव-पार्वती की पौराणिक कहानी से जोड़ दीं। लौ को शिवलिंग का रूप दिया गया और दीये को पार्वती की योनि। कितनी शर्म की बात है! कहते हैं कि शिवलिंग (शिवजी के गुप्तांग) को ठंडा करते रहने के लिए शिवलिंग के ऊपर कलश (जलहरी) से दूध की बूँदें टपकाते रहते हैं और ऐसा मानते हैं कि इससे शिवजी प्रसन्न होते हैं, सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसी कथा शिवपुराण में आती है। विस्तार में जानने के लिए स्वयं शिवपुराण पढ़ें।

अज्ञानता के कारण—स्वाध्याय की कमी के कारण, कालान्तर में शिवलिंग के मंदिर बन गए जहाँ अंधश्रद्धालु, पापी और अन्धविश्वासी लोग अपने घर से दूध-पानी ले जाते हैं और शिवलिंग पर चढ़ाते हैं। उन्हें स्वयं भी मालूम नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। देखा-देखी में भेड़-बकरियों की भाँति चले जा रहे हैं—लक्ष्य क्या है, कुछ मालूम नहीं।

वास्तव में 'शिव' ईश्वर का ही गौणिक नाम है, क्योंकि वह कल्याणकारी है। शिव का अर्थ है कल्याण करनेवाला। शंकर भी उसी परमात्मा का नाम है क्योंकि 'शम्+करोति इति शंकरः' अर्थात् सबका भला करता है। शंभु भी वही है क्योंकि ईश्वर कल्याणकारी है और अपनी संतानों (आत्माओं) का कल्याण ही चाहता है। पार्वती, शिव की शक्ति का नाम है। शक्ति=प्राकृतिक नियम।

शिव-पार्वती की पूजा अर्थात् परा और अपरा विद्या को जाने बिना जीव को मुक्ति नहीं मिल सकती। इहलोक और परलोक की जानकारी

के बिना मोक्ष नहीं होता। शिवपार्वती की सही पूजा यही है कि वेदाध्ययन करें—ज्ञान प्राप्त करें—पवित्र आचरण करें और मोक्ष को प्राप्त करें।

चेतन और जड़ के भेद को समझना और उसी प्रकार उनका प्रयोग करना शिव और शक्ति के सही स्वरूप को जानना है। भौतिक ज्ञान को अपरा विद्या कहते हैं और चेतन (ब्रह्म और जीव) के ज्ञान को परा विद्या (आध्यात्मिक ज्ञान) कहते हैं।

अंधविश्वास : 28 : जिन महात्माओं के नाम से पहले 'श्री श्री 108 श्री' लिखते हैं वे ईश्वर के अधिक निकट और पहुँचे हुए संत होते हैं!

निर्मूलन : कई लोग ऐसा मानते हैं कि इस शरीर में 107 नाड़ियाँ हृदय से जुड़ी हुई हैं (ऐसा हमारे उपनिषद् कहते हैं) जिनके द्वारा योग की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जो योगी पुरुष इनको सिद्ध करता है उसके साथ यह 108 बन जाता है—107+1=108। किन्तु यह एक भ्रान्ति ही है।

एक दूसरा भी पहलू है। 108 में तीन वस्तुएँ हैं—1+0+8, इनमें 1 ईश्वर का प्रतीक है अर्थात् ईश्वर एक है। 0 प्रकृति को दर्शाता है जो जड़ है, जिसका महत्त्व ईश्वर और जीव के साथ ही होता है; और 8 नं. जीवात्मा के लिए है क्योंकि योग के अष्टांगों के द्वारा ही वह प्रभु से मिलन करती है। जो व्यक्ति ईश्वर, प्रकृति और आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है अर्थात् इन तीनों तत्त्वों को जान लेता है, उसे सिद्ध पुरुष कहते हैं या उसके नाम के आगे 108 लिखते हैं।

यहाँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण दर्शन है—जीव (8) को परमपिता परमात्मा से मिलन के लिए प्रकृति (0) का सहारा लेना पड़ता है। ईश्वर और जीव के बीच में प्रकृति है। आत्मा जब प्रकृति को शून्य समझता है, तभी परमपिता परमेश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। अगर वह अपने-आप में ही अभिमान करता रहेगा और जड़ प्रकृति में ही उलझा रहेगा तो वह (8) नीचे की ओर गिरता रहता है। परन्तु ईश्वर के संग में वह 8+1=9 बन जाता है जो पूर्ण अंक है। 9 नं पूर्णता का प्रतीक है, बाकी सब अंक 9 के नीचे ही होते हैं। 1 और 9 के

भीतर ही सब अंक होते हैं। जो व्यक्ति इनके रहस्य को नहीं समझता/जानता, वह शून्य (0) की भाँति जड़ बुद्धिवाला हो जाता है, अत: अपने अस्तित्व का महत्त्व समझकर हमें भी पूर्णता की ओर बढ़कर, ईश्वर में रहकर, ईश्वर की भाँति आनन्दित होना है।

जिन अंकों का जोड़ 9 होता है उनमें यह खूबी है कि इनको घटाने से बाकी 9 ही रहता है, जैसे—54-45=9, 63-45=18=1+8=9 इत्यादि।

इसी भावना को जाग्रत रखने के लिए माला में भी 108 दाने होते हैं। 108 नंबर सदा सचेत करता रहता है कि यदि ईश्वर से नाता जोड़ना है—पूर्ण बनना है—आनन्दित रहना है तो जड़ पदार्थ को बीच में से हटा दो। 1 और 8 चेतन हैं और 0 जड़ है।

जो व्यक्ति अपने घमंड में रहता है उसका दर्जा कैसे कम होता है, निम्नलिखित आँकड़ों से समझ सकते हैं।

$$8\times2=16=1+6=7$$

$$8\times3=24=2+4=6$$

$$8\times4=32=3+2=5$$

इस प्रकार विद्वज्जन देख सकते हैं जैसे-जैसे मायामोह में फँसते रहेंगे—ईश्वर की नज़रों से गिरते रहेंगे। परमेश्वर ने हममें (नं० 8 को) योग्यता प्रदान कर रखी है कि हम अगर अपने-आपको पहचानने का प्रयास करें तो ईश्वर से मिल सकते हैं क्योंकि परमात्मा भी हममें बसता है। वह सर्वव्यापक है—प्रकृति में भी; परन्तु प्रकृति जड़ है, हम चेतन हैं। चेतन (परमात्मा) का दर्शन चेतन (जीवात्मा) ही कर सकता है। जैसे-जैसे योग के अंगों को जानने का प्रयास करते रहेंगे—इसका दर्शन साफ होता जाएगा। वैराग्य और अभ्यास से सब संभव हो सकता है। यही 108 नम्बर का दर्शन (Philosophy) है।

(अधिक जानकारी के लिए विद्वानों से संपर्क कर सकते हैं।)

अंधविश्वास : 29 : वास्तु-शास्त्रज्ञ कहते हैं कि घर में शुद्ध घी का दीपक केवल दिवाली या नवरात्रों में ही जलाना चाहिए, दूसरे दिनों में जलाने से गृहलक्ष्मी और धन नष्ट हो जाता है। मंदिरों में शुद्ध घी की ज्योति जलाई जा सकती है, घर में नहीं।

निर्मूलन : लगता है जिसने भी ऐसा कहा है उनके घर में कुछ अशुभ हो गया होगा। घर में आग लग गई होगी, गृहलक्ष्मी (धर्मपत्नी) और धनलक्ष्मी जल गई होंगी।

वास्तव में दीपक तो सच्चे घी (शुद्ध घी) का ही जलाना चाहिए, वरना दीपक जलाने से केवल प्रकाश का लाभ होगा। धर्मानुसार जब भी यज्ञकर्म से पहले दीपक की ज्योति प्रज्वलित करते हैं तो वह दीपक सच्चे घी का ही जलाया जाता है। गृहणियाँ संध्या के समय शुद्ध घी का ही दीपक जलाती हैं जो रोगनाशक तथा मन को स्थिर करने का प्रतीक होता है।

घासलेट आदि का दीपक नहीं जलता। लालटेन जलने पर केवल रोशनी प्रदान करती है, परन्तु दीया तो शुद्ध देसी घी का ही जलना चाहिए। इससे घर में सुख-समृद्धि बढ़ती है; घटती नहीं, जलती नहीं। व्यर्थ के भ्रम को अपने मन-मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए। आप स्वयं चिन्तन करेंगे तो भ्रान्तियों के अँधेरे स्वत: छँटने लगेंगे। अपनी बुद्धि का प्रयोग करें; केवल कहे-सुने का कभी विश्वास न करें। सत्य को जानें और जो असत्य-भ्रान्ति-संशय-शक या शंका है उसको ज्ञान-विज्ञान की कसौटी पर परखें। थोथे रिवाजों और परम्पराओं की नकल न करें। ईश्वर आपके देसी घी का भूखा नहीं है। उसके लिए सच्ची श्रद्धा और निश्छल अनुरक्ति ही देसी घी है। घी से शरीर और वातावरण में पुष्टि और सुगन्धि फैलाइये। आत्मा और परमात्मा का मन्दिर तो हमारे शरीर हैं, इन्हीं को घी से पुष्ट और सुवासित कीजिए।

देव-मंदिरों में तो सच्चे देसी घी के दीये जलते ही हैं—बहुत अच्छी बात है। यह भी सोचिये कि क्या घर मंदिर नहीं होता? क्या घर में मंदिर बनाया नहीं जा सकता? मंदिर कहते हैं जहाँ मनन किया जाए, अर्थात् हमारा मन ही मंदिर है जहाँ परमप्रिय परमात्मा का मनन-चिन्तन होता है।

घर में आपका उपासना-स्थल मंदिर ही तो है! बाहर जाने की आवश्यकता भी क्या है? जहाँ शुद्धता है वहीं मंदिर है। यह शरीर तो सबसे बड़ा मंदिर है जिसमें हर वक्त हर क्षण ज्ञानरूपी दीपक जलाया जाता है। यह ज्ञानरूपी दीपक प्रेम और श्रद्धारूपी घी से जलता

है—बाती 'ओ३म्' की होती है। इस आध्यात्मिक दीपक को जलानेवाला 'आत्मा' है। लक्ष्य 'परमपिता परमात्मा' से मिलन है।

हम वास्तु-शास्त्रज्ञों से प्रश्न करना चाहते हैं—

(1) क्या दीपक केवल नवरात्र या दिवाली के दिन ही जलाना चाहिए?

(2) भौतिक दीपक तो प्रकाश का प्रतीक है। आपने आध्यात्मिक दीपक का नाम सुना है कि नहीं—उसके बारे में क्या राय है?

(3) दीपक सच्चे देसी घी का ही जलता है। है ना? नहीं तो किस द्रव्य का जलाना चाहिए?

(4) दीपावली में आजकल दीपक नहीं, रंगीली बत्तियाँ जलती हैं तो क्या इन लोगों को दिवाली मनानी नहीं आती?

(5) कौन-से वास्तु-शास्त्र में लिखा है कि धीमी ज्योत नहीं जलानी चाहिए, वह भी केवल नवरात्र या दिवाली के उपलक्ष्य में?

प्रिय पाठको! सत्य को ग्रहण करो। गृहणियाँ अपनी सुविधानुसार घर में कौन-सी चीज कहाँ रखनी हैं, उसी को ध्यान में रखकर, अपनी वस्तुओं को व्यवस्थित रखें। वास्तुशास्त्र के अनुसार भवन-निर्माण में तर्कसंगत बातों को तो सोचा जा सकता है, किन्तु व्यर्थ की भ्रान्तियों में न पड़ें। सब सदस्यों की राय लेकर उनके पलँग-सोफा-कब्बाट इत्यादि फर्नीचर को रखें और सजाएँ। यही वास्तु-विद्या है। वास्तुशास्त्रज्ञों के हाथ लगेंगे तो वे केवल कोई सलाह देंगे परन्तु आपकी जेब ख़ाली कर देंगे। व्यर्थ के ढकोंसलों से बचें।

अंधविश्वास : 30 : दक्षिणमुखी द्वार या दक्षिण से अथवा वाम से प्रकाश आने पर घर में अनर्थ होता है, गृहलक्ष्मी और धनलक्ष्मी नष्ट होती है!

निर्मूलन : केवल वायु या प्रकाश के पड़ने से गृहलक्ष्मी या धनलक्ष्मी नष्ट हो जाना तो नासमझी की बातें हैं। वायु और प्रकाश शरीर के लिए उतने ही लाभकारी हैं जितना भोजन और जल। घर के भीतर वायु दक्षिण से आवे या पश्चिम से—उससे गृहलक्ष्मी अर्थात्

धर्मपत्नी का नष्ट होना कैसे संभव है? दक्षिण की हवाओं से पति और बच्चे बच जाएँगे और बेचारी धर्मपत्नी मर जाएगी—यह तो अचम्भेवाली बात है।

इस भ्रान्ति में सार की बात इतनी-सी है कि पूर्व की वायु शीतल होती है और मीठी फुहारें लाती है, पश्चिम की वायु रूखी और बादल उड़ा देती है, दक्षिण की वायु गर्म होती है और उत्तर की हवा बर्फीला असर करती है। चूँकि पत्नी को निरन्तर घर में रहना होता है, अतः वह रुग्ण होकर मर भी सकती है। यदि पति पित्त प्रकृति का है तो दक्षिण की गर्म हवाएँ उसके लिए जानलेवा होंगी। वह न बचा तो घर के लिए कमाएगा कौन? गृहलक्ष्मी और धनलक्ष्मी और दानलक्ष्मी के विनाश की यही संभावना है। कूलर या वातानुकूलित का प्रबंध होने पर दक्षिण की हवा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी।

शुद्ध-पवित्र-सुगंधित वायु का आवागमन किसी भी दिशा से हो—लाभकारी ही होता है। जिस दिशा से वायु घर के भीतर आती है वहीं शयनकक्ष (Bedroom) बनाना उचित है। जहाँ वायु और प्रकाश घर में आता है वहीं पर रसोईघर (Kitchen) रखना चाहिए। महानगरों में तो मकान मिलना ही कठिन है। वास्तुशास्त्र पर कौन अमल करे?

जिनको ईश्वर में भरोसा होता है—अपने-आप में विश्वास होता है तथा अपने कर्मों में अक़ीदा होता है, उनको हर हाल में खुशहाली मिलती हैं—वे हर हाल में सुख-समृद्धि को प्राप्त करते हैं। वे इन वहमों में नहीं पड़ते। ये फ़िजूल की बातें हैं—गुमराह करनेवाली बातें हैं।

सूर्य के प्रकाश से रोग नष्ट होते हैं, दूषित वातावरण शुद्ध होता है। वायु के आवागमन से घर में अनेक प्रकार के विषाणु भाग जाते हैं, फिर इन वास्तुशास्त्रज्ञों को इन वायु और प्रकाश से कैसी दुश्मनी है, ईश्वर ही जाने! हाँ, यह सम्भव है कि ऐसी उल्टी-सीधी बातें बताकर वे भोले-भाले लोगों के दिलों में भय उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं और बाद में उसका निदान बताते हैं और अपनी फीस (मज़दूरी) लेते हैं। वास्तुशास्त्र के नाम पर लोगों को ठगना भी एक

प्रकार का धंधा हो गया है। इनसे सावधान! इनके चक्कर में ही गृहलक्ष्मी और धनलक्ष्मी दोनों हाथ से फिसल सकती हैं।

अंधविश्वास : 31 : नामस्मरण से मनुष्य के सब पाप धुल जाते हैं और वह भवसागर से पार होकर मुक्त हो जाता है!

निर्मूलन : भवसागर से पार होना या मुक्ति को प्राप्त करना इतना सरल नहीं है। उसके लिए साधना करनी पड़ती है। जो-जो कर्म किये हैं उनका फल तो अवश्य भुगतना ही पड़ता है। कर्मफल भुगते बिना पाप धुल नहीं सकते। नाम-स्मरण से केवल नाम-स्मरण होता है। अगर नाम-स्मरण की विधि सही है तो प्रभु में ध्यान लगने लगता है और ध्यान से ही ज्ञान में वृद्धि होती है। जब तक मनुष्य अपने आचार-विचार को शुद्ध-पवित्र नहीं करता तब तक संसार के भवसागर से पार नहीं हो सकता!

नाम-स्मरण की सही विधि यही है कि ईश्वर के जिस नाम को जपा जा रहा है उसके अर्थ को भी ध्यान में रखा जाए। ईश्वर का नाम (गुण) 'न्यायकारी' है, किन्तु केवल न्यायकारी नाम जपने से कोई भला होनेवाला नहीं है जब तक कि स्वयं भी उस गुण को अपने जीवन में धारण नहीं कर लेते। ईश्वर का नाम 'शुक्र' है अर्थात् वह पवित्र है, इसका अर्थ यह है कि उस गुण को अपने जीवन में उतारें, स्वयं पवित्र बनें। मन-वचन-कर्म में पवित्रता लाएँ, तभी कह सकते हैं कि शुक्र का स्मरण-जाप करना सफल हुआ। इस प्रकार नाम-स्मरण से जीवन में परिवर्तन आता है। केवल नाम जपते रहें और कर्म इसके विरुद्ध करें तो यह नाम-स्मरण का ढोंग है—दिखावा है। आँखें बंद करके बैठना—नाम-स्मरण के स्थान पर और कुछ सोचना—यह तो प्रभु-स्मरण नहीं है।

भवसागर से पार होना है—मुक्त होना है तो अपने को सरल बनाते जाओ। संसार की वस्तुओं में फँसे मत रहो! जितना आवश्यक है उतने ही साधनों का उपयोग करो। त्याग-भाव से वस्तुओं का उपभोग करो। बाहर की दुनिया से मुँह मोड़ो और आन्तरिक देश में प्रवेश करने का प्रयास करते रहो। मन के द्वार खोलो! आध्यात्मिक उन्नति करते रहो—योग के अष्टांगों पर चलते रहो—यही एक सच्चा

मार्ग है जिस पर चलकर भवसागर से पार हो सकते हैं—जीवन-मरण के बन्धन से छूट सकते हैं और परमसुख की प्राप्ति कर परमानन्द में स्वेच्छा से विचर सकते हैं।

अंधविश्वास : 32 : मरते समय जो जैसी भावना रखता है वैसा ही जन्म पाता है!

निर्मूलन : क्या मरते समय अगर मरनेवाला व्यक्ति परमात्मा को याद करता है तो वह परमात्मा को प्राप्त करता है? मरते समय कृष्ण भगवान को याद करे तो वह क्या कृष्ण भगवान से मिल जाएगा? या कोई अपने गुरुजनों को याद करे तो वह गुरु की शरण में जाएगा? ये सब भ्रान्तियाँ हैं; वास्तविकता कुछ और है।

अब कुछ प्रश्न हम करते हैं—विद्वज्जन इस पर विचारें—

(1) पूरी उम्र कुकर्म किये और अन्तिम समय भगवान का नाम लिया—तो वह व्यक्ति कैसे सद्गति प्राप्त करेगा?

(2) सारी उम्र निष्काम कर्म करते रहो और अंतिम वेला में कोई अपने पुत्रों को स्मरण करता है—अब उसकी स्थिति मृत्यु के पश्चात् क्या होगी?

(3) साधारण जीवन बिताया—न किसी से वैर न किसी से लगाव—कर्म करते-करते प्रभु को प्यारा हो गया—इसका क्या होगा?

(4) जीवन-भर अपने ही शरीर की सेवा की, स्वार्थ में ही लगा रहा—अन्त में स्त्री की ओर ही ध्यान रहा—तो ऐसे व्यक्ति का क्या परिणाम होगा?

इस प्रकार के अनेक भ्रम हैं, परन्तु उनका उच्छेदन कैसे होगा?

ईश्वर सर्वज्ञ है—सर्वान्तर्यामी है—सबके साथ अंग-संग रहता है—उससे कोई बात छुपी नहीं है।

मरनेवाला व्यक्ति कौन है—कैसा है—उसके कर्म क्या हैं—उसका अतीत क्या है—यह केवल परमात्मा ही जानता है। उसी के पास कर्मों का पूरा लेखा-जोखा है। अन्त-समय में व्यक्ति कुछ भी सोचे—करे—सब कर्मों के आधीन आ जाता है। प्राण निकलने के तुरन्त पश्चात् ही परमात्मा उस दिवंगत आत्मा की स्थिति का निर्णय

करता है और अगला जन्म कहाँ–कैसे–कब देना है यह उसी सर्वेश्वर का विषय है।

हाँ, इतना अवश्य है कि मरने के समय अगर व्यक्ति प्रभुनाम-स्मरण करता है तो ईश्वर की असीम अनुकम्पा से उसके प्राण निकलने में कठिनाई कम हो जाती है। अंत–समय की घड़ियाँ अवश्य ही कुछ मायने रखती हैं यही कारण है कि घर के सदस्य उस समय भजन या सत्संग की बातें करते हैं या कोई बाणी की कैसेट बजाते हैं या गीता का पाठ करते हैं कि जाते समय दिवंगतात्मा कुछ तो अच्छाई ग्रहण करके विदा होवे। हरएक लक्षण के कर्मों का फल जीवात्मा के संस्कारों को संस्कृत करता रहता है। पलभर में महात्मा से डाकू बन सकता है तो डाकू भी महात्मा बन सकता है—यह आत्मशक्ति पर निर्भर करता है।

परमात्मा सर्वज्ञ है, उसी पर छोड़ते हैं कि वह दिवंगतात्मा को कहाँ भेजता है।

अंधविश्वास : 33 : किसी भी जीव की हत्या करना पाप है, किन्तु मच्छर–मक्खी–कीड़े इत्यादि को मारने में कोई पाप नहीं होता।

निर्मूलन : हत्या करना पाप है—बिल्कुल ठीक है, परन्तु जो दुष्कर्म करता है और जो मनुष्य–जाति के लिए हानिकारक है उसे सरकार भी फाँसी की सज़ा सुनाती है।

मच्छर–मक्खी को घर में आने से रोका जा सकता है, उसमें कोई पाप नहीं है। परन्तु जो मच्छर–जीव–जन्तु–कीड़े हानि पहुँचाते हैं उनको खत्म करना या मारना उचित है, क्योंकि मनुष्य–योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है, इसकी रक्षा करना मनुष्य का परमकर्त्तव्य है। जिससे मनुष्य को अपनी जान का ख़तरा है, उसे मार डालने में कोई आपत्ति नहीं है। मनुष्य भी अगर मनुष्य- जाति के लिए घातक है तो उसे भी मार डालने में पाप नहीं है।

महाभारत का युद्ध इसका प्रमाण है और श्रीकृष्ण भगवान ने भी अर्जुन को समझाते हुए (संसार को बताया है) कहा है कि जो भी अधर्मी हैं उनके शरीर को नष्ट करना ही धर्म है, क्योंकि शरीर से

ही धर्माधर्म के कार्य होते हैं—आत्मा कभी नहीं मरता। कौरवों को मारने में पांडवों का साथ श्रीकृष्ण ने इसी कारण दिया था कि कौरव अधर्म का कार्य करते जा रहे थे। उनको रोकने के लिए ही पांडवों को छूट दी गई थी कि युद्ध के द्वारा कौरवों को खत्म किया जाए। असुरों को मारने में कोई पाप नहीं है—यह तो पुण्यकर्म है। दुश्मन को मारने में ही पुण्य है, वरना दुश्मन के हाथों स्वयं की जान को गँवाना क़हाँ की समझदारी है?

वैसे जीव-जन्तु-कीड़े इत्यादि (साँप-बिच्छू-शेर इत्यादि जंगली जानवर) भी ईश्वर के बनाए हुए हैं और इनको हमें मारने का कोई अधिकार नहीं बनता, परन्तु जब ये जीव मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं तो इनका सफ़ाया करना ही पड़ता है, इसको आपातधर्म भी कहते हैं अर्थात् ये धर्म के विरुद्ध तो है, परन्तु इसके अलावा कोई चारा भी नहीं है।

घर में पोपट (तोते) आते हैं तो हम उनको तो बड़े प्यार से देखते हैं। उनको छूने की कोशिश भी करते हैं। उन्हें मारने का तनिक भी विचार नहीं आता, क्योंकि उनसे हमें कोई हानि नहीं होती। चिड़िया-कबूतर इत्यादि पक्षी घर में आते हैं। उनको हम मारते नहीं, भगा देते हैं कि कहीं घर में यहाँ-वहाँ नुकसान न करें—इनकी हत्या करने की भावना कभी उत्पन्न नहीं होती। अतः जिससे मनुष्य-जाति की कोई हानि नहीं, उन जीवों को मारना पाप है, जैसे—कुत्ते, घोड़े, बकरी, गाय, भैंस इत्यादि। शेर जंगलों में रहता है परन्तु अगर वह शहरों की ओर आ जावे और नरसंहार करना शुरू कर दे तो उसे मार डालने में ही भलाई है।

जो जीव हमें (मनुष्य-जाति को) नहीं सताते, हमको भी चाहिए उनको न मारें, अपितु उनसे प्रेम करें—उनकी कभी हत्या नहीं करें। पशु-पक्षी हमारी ही तो सेवा करते हैं! कीड़े-मकोड़े खा जाते हैं, गंदगी को साफ करते हैं। मछली पानी में रहकर पानी को साफ करती है, अतः किसी भी पानी के प्राणी को मारना नहीं चाहिए।

गाय सभी जानवरों का प्रतिनिधि है, अतः गाय को मारना तो भयंकर पाप है। वेद में कहा गया है (ईश्वर का आदेश है) कि 'गाय

को मत मारो', इसका यह अर्थ नहीं कि बाकी सबको मारो। गाय में सब अहिंसक पशुओं की गणना करें, क्योंकि गाय सब पालतू जानवरों की प्रतिनिधि है।

जितना हो सके मक्खी–मच्छर इत्यादि जीवों की हत्या न करके, घरों में उनके प्रवेश पर रोक लगा दें। व्यर्थ की हत्या छोड़कर इनसे बचने के उपाय करने चाहियें।

अंधविश्वास : 34 : कहते हैं कि मरे हुए लोगों के कपड़े नहीं पहनने चाहिएँ—उनको दान में दे देना चाहिए!

निर्मूलन : क्यों नहीं पहनना चाहिए? कपड़े तो कपड़े ही होते हैं; किसी को दान देंगे तो वह भी तो पहनेगा ही? पहननेवाला नहीं रहा और कपड़े साफ–सुथरे व नये हैं तो उनके पहनने से हानि भी क्या है? हाँ, अगर मरनेवाला व्यक्ति इतना बुरा था कि उसके कपड़ों से भी नफ़रत है तो अवश्य नहीं पहनने चाहिएँ, अथवा उसे कोई छूत का रोग था तो उस स्थिति में उसके कपड़े नहीं पहनने चाहियें।

जब तक कोई जीवित होता है उससे सभी प्रेम करते हैं, मरते ही उसका पार्थिव शरीर रह जाता है। शव को तो जला दिया जाता है, शेष रहे उसके कपड़े–गहने–जूते और घर का दूसरा सामान इत्यादि। दिवंगतात्मा के कपड़े तो चलो दान में दे दें तो ठीक है, परन्तु दूसरे शेष सामान को भी कभी दान में देते हैं? गहने तो सँभालकर रखे जाते हैं और बैंक–बैलेंस तो काम आता ही है। घर का सामान कोई भी उठाकर बाहर नहीं फैंकता।

ये सब भ्रम हैं, इनका तर्क से कोई तालमेल नहीं है। नये कपड़े बिना सिले तो कोई नहीं दे देता। जो कपड़े पुराने होते हैं केवल दिखावे के लिए—सबके सामने या किसी रिश्तेदार के सामने दान में किसी को दे देते हैं, परन्तु कीमती चीज़ें तो लॉकरों में बैंकों में जमा रहती हैं।

यदि कपड़े पहनने के योग्य हैं तो अवश्य ही अपने घर में दूसरे सदस्य पहन सकते हैं, इसमें कोई बुराई नहीं है—कोई आफ़त आनेवाली नहीं है। हाँ, अगर मरनेवाले की इच्छा थी कि अमुक–अमुक वस्तुएँ अमुक–अमुक व्यक्तियों को उसके मरने के पश्चात् दे दी जाएँ और

अगर वैसा नहीं किया गया अर्थात् उसकी Will (वसीयत) के अनुसार नहीं किया गया तो यह बेईमानी है। मरनेवाले के सामान को आपस में ही हड़प लेना—उसकी इच्छानुसार न करना सरासर धोखा है। ऐसा धन या वस्तुएँ फलती नहीं हैं। घर में अशान्ति ला सकती हैं। घर में ही झगड़े का कारण बन सकती हैं।

पराए धन को हड़पना या हथिया लेना पाप है—अधर्म है। इसका हिसाब देना ही पड़ेगा। कोई देखे या न देखे, जाने या न जाने, वह (ईश्वर) सब-कुछ जानता है, देख रहा है। इसका परिणाम भुगतना ही पड़ेगा।

अंधविश्वास : 35 : जिस घर में मृत्यु होती है उस घर में 12 दिनों तक पूजा-पाठ नहीं किया जाता—संध्या-हवन भी नहीं करना चाहिए—ज्योत नहीं जलानी चाहिए!

निर्मूलन : ये सब वहम हैं, भ्रान्तियाँ हैं। 12 दिनों की तो बात बहुत दूर है, उस घर में तो रोज़ाना पूजापाठ करना चाहिए, रोज़ दो समय यज्ञ होना चाहिए। जिस घर में किसी की मृत्यु होती है उस घर के वातावरण को शुद्ध करने के लिए हवन तो अवश्य ही करना चाहिए। जिस कमरे में मृत्यु होती है उस कमरे को साबुन-पानी से अच्छी तरह साफ़ करना चाहिए—कीटनाशक दवा से साफ करना चाहिए। शुद्ध घी की ज्योत जलानी चाहिए क्योंकि घी जलने से कीटाणु नष्ट होते हैं और वातावरण पवित्र होता है। धूप-अगरबत्ती जलाने से दुर्गन्ध नष्ट होती है—धुएँ से कीट-पतंग भाग जाते हैं। हवन तो सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम कर्म है, क्योंकि हवन-सामग्री जलने से दूर-दूर तक का वातावरण शुद्ध और सुगंधित होता है। 12 दिन क्या, हमेशा करना चाहिए। पूजा-पाठ तो पवित्र कर्म है, नहीं करेंगे तो अपनी ही हानि है। नियमपूर्वक संध्या करनी चाहिए। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना में किसी भी हाल में नाग़ा नहीं करना चाहिए। मृत्यु के वातावरण में तो अवश्य करना चाहिए। इससे मन को शान्ति मिलती है—धैर्य प्राप्त होता है—आत्मिक बल मिलता है, जिससे दिवंगतात्मा के बिछड़ने का दुःख कम होता है।

हाँ, इन बारह दिनों में ब्रह्मचर्य का दृढ़ता से पालन करना चाहिए,

गर्भाधान नहीं करना चाहिए। पुण्य के काम नित्य करने चाहिएँ अर्थात् दान-पुण्य अवश्य करना चाहिए जिससे घरवालों के ही सुसंस्कार बनते हैं।

याद रहे, कर्ता को ही कर्मफल मिलता है। दिवंगतात्मा के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो जलकर भस्म हो गया, उसके नाम पर पुण्यकर्म करने—दान-दक्षिणा देने से मरनेवाले को कोई लाभ नहीं होता। जो कर्त्ता है उसी को उसका फल मिलता है।

प्रमाण के रूप में

यज्ञकर्ता को सभी सुख प्राप्त होते हैं—

1. तस्येदर्वन्तो····न मर्त्यकृतं नशत्। *ऋग्वेद 8/19/6*
2. यस्य कुर्मो····ब्रह्मणस्पतिः। *यजुः 17/52*
3. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते····च वर्धय। *अथर्व० 19/63/1*
4. तस्मात् सर्वगतं····प्रतिष्ठितम्। *गीता 3/15*

अंधविश्वास : 36 : भूत-प्रेत-राक्षस-डायन-असुर—ये सब होते हैं। इनसे छुटकारा नहीं हो सकता।

निर्मूलन : ये सब डरावनी बातें हैं जिनका प्रभाव कमज़ोर व्यक्तियों पर अज्ञानता के कारण पड़ता है। संक्षेप से समझ लें—

भूत—गुज़रे हुए काल को भूत कहते हैं।

प्रेत—मृत शरीर को प्रेत कहते हैं।

राक्षस—यह काल्पनिक शब्द है। सभी पापकर्मी 'राक्षस' कहलाते हैं।

हिंसक और अधर्मी वृत्तियों को राक्षसी वृत्ति कहते हैं। राक्षस उस जाति को जानें जो सदा नीच कर्म करते हैं।

डायन—यह भी राक्षस की तरह एक काल्पनिक शब्द ही है। यह स्त्रीलिंगवाची शब्द है। राक्षस की पत्नी को भी लोग डायन कहते हैं।

बड़े बालोंवाला—भयानक शक्लवाला—बड़े दाँतोंवाला—खून पीने वाला—चार हाथोंवाला—दस सरवाला, चीरफाड़ के मनुष्य को कच्चा खा जानेवाला—अँधेरे में पीछे से पकड़नेवाला—ये सब डर के कारण पैदा हुई भ्रान्तियाँ हैं जो लोगों से सुनी-सुनाई बातों पर ध्यान देने से मन में घर कर लेती हैं। वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं होता।

इनसे छुटकारा पाने का—इस वहम का आसान इलाज है—प्रभु-नाम का स्मरण।

प्रभु के नाम में बहुत शक्ति है। नाम के अर्थ को ध्यान में रखकर उसको आचरण में लाना—यही नाम की शक्ति है। वैदिक साहित्य का स्वाध्याय, एवं धार्मिक पुस्तकें पढ़ने से ज्ञान की प्राप्ति होती है—अज्ञानता का पर्दा हट जाता है, इसी से अंधश्रद्धा और अन्धविश्वास का निवारण होता है।

अंधविश्वास : 37 : प्रेम करने से ईश्वर में ध्यान नहीं लगता।

निर्मूलन : बिल्कुल ग़लत धारणा है, क्योंकि धर्म की नींव प्रेम पर ही टिकी है। ईश्वर तक पहुँचने की सबसे पहली सीढ़ी अहिंसा है अर्थात् संसार के प्राणीमात्र से वैर की भावना भी न रखना। अर्थापत्ति से देखेंगे तो इसका तात्पर्य यही निकलता है कि संसार के सभी प्राणियों से प्रेम की भावना रखना। प्रेम और मोह (आसक्ति) में बड़ा अन्तर है। प्रेम त्याग सिखाता है और मोह में स्वार्थ छुपा होता है। प्रेम ही का दूसरा नाम आनन्द है—ईश्वर है। तभी तो धर्मग्रन्थों में कहा है—प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है (God is Love and Love is God)। जब तक प्रेम का पाठ नहीं पढ़ा तब तक ईश्वर में ध्यान लगना कठिन है।

ध्यान न लगने के और भी कई कारण हो सकते हैं। जब तक हमारा मन वश (Control) में नहीं है—ध्यान नहीं लग सकता। चित्त की वृत्तियों (व्यापार) को रोकने का नाम ही योग है। ईश्वर में ध्यान लगाना और इसी का अभ्यास करने से संसार की वस्तुओं से वैराग्य उत्पन्न होता है और ईश्वर में ध्यान लगना शुरू होता है। ध्यान लगते ही समाधि की अवस्था प्राप्त की जा सकती है जिसमें आनन्द की अनुभूति होती है। प्रेम ही ईश्वर का साक्षात्कार कराता है। धारणा-ध्यान-समाधि योग की आन्तरिक प्रक्रियाएँ हैं जिनकी सिद्धि से आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार होता है। जब तक बाहर की वस्तुओं में ध्यान लगा रहेगा, तब तक अंदर की यात्रा प्रारम्भ नहीं हो सकती।

व्यक्ति को चाहे दुनियादारी निभानी हो, चाहे प्रभु के ध्यान में रम जाना हो, प्रेम ही उसके जीवन का मूलाधार है। किन्तु प्रेम की

पराकाष्ठा में उसे किसी एक का होना पड़ेगा और शेष संसार से मोह के बन्धन तोड़ने होंगे। इस वैराग्य में भी सांसारिक लोगों के प्रति प्रेम बना रहेगा, केवल मोह के बन्धन ही टूटेंगे। प्रेम एक शाश्वत और पवित्र भावना है। कोई भी मनुष्य दुनिया से विरक्त होकर भी, दुनिया से अपने प्रेम-भाव का विसर्जन नहीं कर सकता। जिसने भी ऐसी भ्रान्ति फैलाई है कि प्रेम करने से ध्यान नहीं लगता, ग़लत है। प्रेम तो मिलना सिखाता है—आत्मा को परमात्मा से मिलना सिखाता है। प्रेम है तो ईश्वर में ध्यान लग सकता है और ईश्वर में ध्यान लगे तो समझ लेना चाहिए कि प्रेमरस का स्वाद आने लगा है।

अंधविश्वास : 38 : ईश्वर से माफ़ी माँगने पर किये हुए गुनाह (पाप) माफ़ हो जाते हैं।

निर्मूलन : संसार में तो ऐसा संभव है क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है, किसी को माफ़ कर देता है और किसी को बिना कारण दंड देता है। किन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है—सब-कुछ जानता है, अतः ईश्वर के बारे में ऐसी धारणा कि पाप-कर्मों को क्षमा कर देता है—बहुत बड़ी भ्रान्ति है। किसी के भी किये हुए कर्म बिना फल दिये समाप्त नहीं होते, अर्थात् हर कर्म का फल कर्ता को मिलता ही है—कर्मफल भोगे बिना कोई चारा नहीं। अगर किसी ने गुनाह किया है—पापकर्म किया है तो उसका फल तो अवश्य मिलना है—तो किसको मिलेगा? कर्त्ता को नहीं मिलेगा तो फिर किसको मिलेगा? माफ़ी माँगने से या प्रायश्चित्त करने से कर्मफल प्राप्त न हों—ऐसा होगा तो अन्याय होगा। ईश्वर अन्याय कभी नहीं करता—वह तो न्यायकारी है—न्यायाधीश है। जिसने भी कर्म किया है, अच्छा या बुरा, शुभ या अशुभ—ईश्वर बिना किसी की सिफ़ारिश से फल अवश्य देता ही है। इस कर्मफल से कोई नहीं बच सकता।

लोग प्रायः कहते हैं कि तौबा करने से या माफ़ी माँगने से परमपिता परमात्मा अपने बच्चों को माफ़ कर देता है! ऐसा मानना अज्ञानता है। हाँ! प्रायश्चित्त करने से ईश्वर उसे मनोबल प्रदान करता है—उसे साहस देता है जिससे वह दुबारा वैसा अशुभ कर्म न करे। परन्तु जीवात्मा स्वतंत्र है, कर्म करता है—भूल भी जाता है—फिर

प्रायश्चित्त करता है। क्या ईश्वर उसे माफ कर सकता है? कभी नहीं! कर्मफल देना ही न्याय है और इसी न्याय- व्यवस्था पर विश्वास करके लोग शुभकार्य करते हैं कि उन्हें शुभफल मिलेगा। अगर ऐसा न हो तो कोई शुभकर्म कभी न करे। हमेशा कोई ग़लत काम करे और दो आँसू बहाकर पश्चात्ताप करके माफ़ी माँग ले—क्या उसे माफ़ी मिलना संभव है?

अतः हर कर्म करने से पहले सोचना-विचारना आवश्यक है। जहाँ भी शंका-भय-लज्जा उत्पन्न हो वह कर्म कभी नहीं करना चाहिए—समझ लेना चाहिए कि वह कर्म अशुभ है; और जिस कर्म करने में स्फूर्ति-साहस-निडरता और निःशंकता हो, उस कर्म को करने में देर नहीं करनी चाहिए,क्योंकि वह शुभ कर्म है। इस प्रकार की चेतावनी ईश्वर की ओर से होती है। यह परमपिता परमात्मा की कृपा है कि वह सदा सचेत करता रहता है।

अंधविश्वास : 39 : रात्रि के समय किसी वृक्ष के नीचे बैठने और पेशाब (लघुशंका) करने से भूत-प्रेत की छाया लगती है जिससे वह व्यक्ति पागल हो जाता है और अन्त में मर भी सकता है।

निर्मूलन : सबसे पहले तो यह जानना जरूरी है ऐसा क्यों कहते हैं और रात्रि में ही मनाही क्यों?

वन-वनस्पतियाँ देवता हैं—जड़ देवता हैं। इनसे सब जीवों को खाने की तथा औषध-सामग्री प्राप्त होती है। हरे वृक्षों में जो हरियाली दीखती है उसका कारण क्लोरोफिल है जिसके फलस्वरूप कुछ पेड़-पौधे दिन में सूर्य की किरणों की सहायता से ऑक्सीजन (O^2) छोड़ते हैं और कार्बन-डाइआक्सॉइड (Co^2) को ग्रहण करते हैं। रात्रि में सूर्य की रोशनी न होने के कारण यह प्रक्रिया उलटी हो जाती है अर्थात् वृक्ष कार्बन-डाइऑक्साइड छोड़ते हैं और ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं। मनुष्य को श्वास लेने के लिए सदा ऑक्सीजन चाहिए; प्रश्वास में वे कार्बन-डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। रात्रि में जहाँ कार्बन-डाइऑक्साइड अधिक मात्रा में है और जिसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, उस जगह जाना ठीक नहीं है। रात्रि में वृक्ष के नीचे पेशाब

करने से हो सकता है वहाँ कहीं किसी बिल से साँप इत्यादि जीव बाहर निकल आए और वह डस ले जिससे जान को ख़तरा हो सकता है। रात्रि में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु वृक्षों के आसपास होते हैं। मनुष्य वहाँ जाकर विश्राम करे या सो जावे या गंदगी करे—ऐसा ठीक नहीं है। कार्बन-डाइऑक्साइड गैस ग्रहण करने के कारण स्वास्थ्य बिगड़ सकता है और अधिक मात्रा में कार्बन-डाइऑक्साइड ग्रहण करने से मृत्यु की नौबत भी आ सकती है। अतः सावधानी बरती जाए।

साधारण लोग ये वैज्ञानिक बातें समझते नहीं हैं। हो सकता है उनको सावधान करने के लिए डराया जाए कि भूत-प्रेत पीछे लग जाते हैं। शायद इसी डर से वे रात्रि में वृक्ष के नीचे लघुशंका इत्यादि न करें।

भूत-प्रेत कोई नहीं होता जो पीछे पड़ जाता है। भूत तो वह है, जो बीत गया, और जो मृत शरीर है उसे प्रेत कहते हैं। जब मृत शरीर का अंतिम संस्कार किया जाता है तो वह भूत अर्थात् 'गुज़री हुई बात' बन जाता है। भूत-वर्तमान-भविष्य ये तीन काल होते हैं। भूत का अर्थ 'तत्त्व' भी है, जैसे पाँच तत्त्वों से बना शरीर 'पंचभौतिक शरीर' कहलाता है। भूत जीते-जागते 'प्राणी' को भी कहते हैं जैसे 'सर्वभूतों' (सब प्राणधारियों) में मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है।

जिस काल्पनिक भूत-प्रेत की बात लोगों को परेशान करती है—वह वास्तव मे कुछ भी नहीं है। ये सब पोपलीलाएँ हैं। बाम्हन लोगों के कारनामे हैं—स्वार्थी लोगों की उत्पन्न की हुई भ्रान्तियाँ हैं जिनका कोई सर-पैर नहीं होता।

यह संसार पंचमहाभूतों का ही प्रपंच है। पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश—इन पाँच भूतों (जड़ वस्तुओं) से ही सब वस्तुएँ पैदा होती हैं। यह शरीर भी इन्हीं जड़ वस्तुओं (पंच महाभूतों) से बना है। इन पाँच जड़ वस्तुओं को भी भूत कहते हैं। भूत=जड़। जड़ वस्तु में चेतना-ज्ञान नहीं होता, अतः अपने-आप कोई भी जड़ वस्तु कुछ भी नहीं कर सकती। चेतन के द्वारा ही इन भूतों (जड़ वस्तुओं) का व्यवहार-प्रयोग होता है।

आप स्वयं ही विचारिये कि क्या घर में रखी कुर्सी-टेबल उठकर

आपको मार सकती है? क्या टी.वी. बिना चलाए अपने-आप चल सकता है? क्या बिना पकाए चावल-दाल पक सकती है? बिना आपके चलाए गाड़ी चल सकती है?

उत्तर होगा—जी नहीं! जब तक जड़ वस्तु को चलानेवाला चेतन (परमात्मा या जीवात्मा) तत्त्व उपस्थित नहीं होगा, ये जड़ चीज़ें कुछ नहीं कर सकतीं। एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि बिना शरीर धारण किये भी आत्मा कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर चेतन है, परन्तु वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने से बिना शरीर के ही प्रकृति से सृष्टि का निर्माण करता है, किन्तु जीव एकदेशी और अल्पज्ञ है, अतः उसे कर्म करने के लिए शरीर की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति परमात्मा करता है।

अंधविश्वास : 40 : लोगों का मानना है कि 13 नंबर अशुभ (Unlucky) होता है।

निर्मूलन : इसका तो यह मतलब हुआ कि तेरह नं० को गणित से निकाल देना चाहिए! है ना? या फिर 13 से ऊपर गिनती करना ही ग़लत है!

नं० 13 नहीं मानें तो 14-15-16 नं० कैसे हो सकते हैं? इतनी सारी बिल्डिंगें बनती हैं जो 100 मंजिली भी होती हैं। फिर 13 माला न होने पर शेष मंजिलों का आधार किस पर होगा?

संसार में 113 माले की बिल्डिंगें भी हैं। उनमें तो 13 और 113 दोबारा गिनती में आया है और वे बिल्डिंगें सही-सलामत खड़ी हैं और आबाद हैं।

जब बच्चा 13 दिन का होता है, या तेरह महीने अथवा तेरह साल का होता है तो क्या उस दिन को अशुभ माना जाता है? उस बच्चे का जन्मदिवस नहीं मनाते?

13 के ऊपर जितने भी नंबर हैं, सब 13 के ऊपर ही टिके हैं। इसे अशुभ मानना कोई समझदारी नहीं है। क्या तेरहवीं मंजिल पर कोई नहीं रहता? हर महीने 13वीं तारीख आती है, क्या वह अशुभ होती है? क्या उस दिन में बच्चे पैदा नहीं होते? या जितने बच्चे पैदा होते हैं वे सब अशुभ होते हैं? 13 तारीख को जन्मे कई व्यक्ति बहुत

धनवान हैं एवं स्वस्थ भी हैं। इससे सिद्ध होता है कि 13 तारीख अशुभ नहीं होती। क्या उस दिन में हम खाते-पीते नहीं हैं? क्या तेरह तारीख को सफ़र नहीं करते? ये सब ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर केवल हाँ में ही होता है।

हो सकता है कुछ लोगों ने 13 नं० को अशुभ बताकर अपना उल्लू सीधा कर लिया हो! या हो सकता है इन बाम्हनों का धंधा मंदा पड़ गया हो और 13 तारीख को अशुभ बताकर पूजापाठ करके उसे शुभ बनाने की तरकीब बताकर धंधे का इज़ाफ़ा किया हो! तेरहवें माले पर कोई देशद्रोही या कोई गैर-कानूनी काम होते हों, अत: उस मंजिल पर कोई न आवे—ऐसी घोषणा कर दी गई होगी कि इस माले पर जो जाता है मारा जाता है या भूतप्रेत का साया लग जाता है। सीधे-सादे किसी व्यक्ति को मारा गया होगा या उन लोगों का पर्दाफाश होने के डर से उस व्यक्ति को मार दिया गया होगा! नाम बदनाम हुआ तेरहवीं मंजिल का!

भाइयो और देवियो! कोई नंबर, कोई दिन या कोई स्थान खराब नहीं होता। वहाँ रहनेवाले लोग बुरे हो सकते हैं। 13 नंबर में कोई बुराई-खराबी नहीं है। इस प्रकार के वहम को, भ्रान्ति को मन से निकाल देना चाहिए।

मकान नं. 13, दुकान नं. 13, रोड नं. 13, बिल्डिंग नं. 13,—वार्ड नं. 13, हर क्षेत्र में नं. 13 होता ही है। विद्वज्जन निर्णय करें कि क्या 13 नं. अशुभ है? अधिक जानकारी के लिए किसी विद्वान से संपर्क करें। बाम्हनों के चक्कर में न फँसें।

शुभ-अशुभ तो मनुष्य के कार्य होते हैं। जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है। न अधिक न कम।

13 नं. अशुभ है तो 13×2 उससे भी अधिक भयानक होगा और इसी प्रकार जितना आगे बढ़ते जाओगे—अशुभ ही अशुभ होगा। क्या ऐसा संभव है? 13×13 तो सबसे ज्यादा अशुभ होगा—ऐसा कभी विश्वास न करें। 13 नं. को देश-विदेश में अशुभ माननेवालों की कमी नहीं है। धीरे-धीरे लोग समझने लगे हैं। सत्य हमेशा सत्य ही होता है।

'धनतेरस' का दिन धन-वृद्धि के लिए प्रसिद्ध है जो कि दिवाली से दो दिन पहले होता है। लोग सोने-चाँदी की वस्तुएँ खरीदते हैं कि यह दिन शुभ होता है, धन की वृद्धि होती है। यह भी 13वीं तिथि है—नं. 13 है, तब इसे शुभ क्यों मानते हैं? सब दिन ईश्वर के बनाए हैं—सभी शुभ ही होते हैं।

अंधविश्वास : 41 : भूत-प्रेत अँधेरे में रहते हैं और रात के अँधेरे में ही अपना कार्य करते हैं।

निर्मूलन : चोर-डाकू जो नीच कर्म करते हैं वे ही अँधेरे में रहते हैं और इन लोगों का कार्य अँधेरे में ही होता है क्योंकि हर बुरा कार्य पर्दे के पीछे अँधेरे में ही होता है। दुष्कर्म, नीच काम करनेवाले ही इन भूत-प्रेतों का नाम बदनाम करते हैं। जिन भूत-प्रेतों का प्रायः तसव्वुर (ध्यान) करते हैं, होते ही नहीं। ये सब खयाली चीज़ें हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं होता।

चोर चोरी करता है अँधेरे में—डाकू डाका डालता है अँधेरे में। जो कार्य अँधेरे में छुप-छुपाकर होता है, वह शुभ ही होता है। जो कार्य सबके सामने खुले-आम होता है, जिस कार्य करने में भय-लज्जा-शंका नहीं होती—वह शुभकर्म होता है।

जो ये कहते हैं कि भूत-प्रेत अँधेरे में रहते हैं, हो सकता है उनका किसी ऐसे टोले से वास्ता होगा, तभी तो उनको अधिक खबर रहती है।

अँधेरा नाम है अज्ञानता का और प्रकाश नाम है ज्ञान का! अँधेरे की बातें अज्ञानी लोग ही करते हैं, और जो प्रकाश की बातें करते हैं वे ज्ञानी होते हैं।

अंधविश्वास : 42 : किसी का भी खण्डन नहीं करना चाहिए। इसे करके आपस में दूरी हो जाती है—एकता नहीं रहती।

निर्मूलन : सत्य बात की पुष्टि करना सबका धर्म-कर्तव्य है। जो ऐसा नहीं करता—पाप करता है। सभी खंडन करते हैं, तभी तो सुधार होता है। उदाहरण के तौर पर हम कोई चीज ख़रीदने बाजार जाते हैं। अनेक वस्तुओं को देखकर हटा देते हैं और जो हमें सही लगती है वही ख़रीदते हैं। अब जो वस्तुएँ हमने नहीं ख़रीदीं तो क्या

यह खंडन नहीं है? हम कपड़ा खरीदने जाते हैं तो जो हमें अच्छा नहीं लगता हम नहीं खरीदते, भले ही दूकानदार उस कपड़े की दसियों विशेषताएँ बताए। वही ख़रीदते हैं जो हमारे अनुकूल होता है। भाजियाँ खरीदते हैं तो देखभाल कर अच्छी ही खरीदते हैं—जो सड़ी-गली होती है उसे हटा देते हैं। अब बताइये—जो अच्छी वस्तु है उसे ही ख़रीदने में समझदारी है या जो कुछ दूकानदार कहे वही लेना चाहिए?

धर्म के बारे में भी ऐसा ही है। ईश्वर ने सबको बुद्धि प्रदान की है। जो उसका प्रयोग करता है उसकी बुद्धि सूक्ष्म होती है, अर्थात् उसका विवेक जागृत हो जाता है। विवेक से ही तर्क-वितर्क करके परख सकते हैं और वेद की कसौटी पर निर्णय कर सकते हैं। सत्य-असत्य का बोध तो परखने से ही होता है। विवेक से ही पाप-पुण्य का भेद मालूम पड़ता है, क्या इसको हम खंडन-मंडन कहते हैं?

जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में प्रस्तुत करना ही धर्म है—यह खण्डन नहीं।

ईश्वर निराकार है—सभी जानते हैं, परन्तु मानते नहीं। वे मूर्ति की पूजा करते हैं—ईश्वर के स्थान पर पाषाण की पूजा कहाँ की समझदारी है? इसके बारे में अगर बताया जाए तो उसे आप खण्डन कहेंगे? जी नहीं।

झूठी बात को सही कहना खंडन नहीं, मंडन है। ग़लत बात को ग़लत प्रमाणित करके उसे ठीक कहना, इसे आप खंडन-मंडन कह सकते हैं, परन्तु जो सत्य है वह कभी छुप नहीं सकता।

पहले खंडन करना पड़ता है, फिर मंडन हो सकता है। खंडन किये बिना मंडन नहीं हो सकता। जैसे सब्ज़ियाँ छाँटते हैं, काटते हैं, फिर उसे पकाते हैं। कपड़ा काटा जाता है—नापकर बनाया जाता है, तभी उसकी फिटिंग अच्छी और बराबर आती है।

धर्म के सिद्धान्तों को परखकर, जो-जो बातें विरुद्ध हों उनको त्याग देना ही उचित है; और जो-जो बातें वेद के सिद्धान्तानुसार हों उनको ही अपनाना चाहिए। कोई अनाड़ी इसको खंडन कहे या मंडन, परन्तु जो सही है उसी को व्यवहार में लाना सच्चा धर्म है।

जो झूठ का प्रचार करके उसकी कमाई खाता है वह मानो झूठ

ही खाता है। ऐसी कमाई पचती नहीं है। ऐसे लोगों का सर्वनाश निश्चित है। झूठ की कमाई पहले तो अच्छी लगती है परन्तु उसका परिणाम बहुत ख़राब होता है। सच की कमाई भले ही पहले थोड़ी-सी होती है, परन्तु उसका परिणाम सदाबहार होता है। जो लोग धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार कर अपनी दूकानें फैलाते जा रहे हैं, उनका परिणाम केवल सर्वनाश ही है। इन लोगों का पर्दाफ़ाश करना ही धर्म है, इसमें कोई पाप लगने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। जो लोग अधर्मी लोगों को प्रोत्साहन देते हैं—ऐसे अधर्मियों का कार्यक्रम आयोजित करते हैं, वे भी पाप के भागी होते हैं। जो केवल धन के लालच में बहे जा रहे हैं, उन अधर्मियों को कुमार्ग से बचाना धर्म के जाननेवालों का कर्त्तव्य बनता है।

अतः खंडन-मंडन से ही धर्म सुरक्षित है। हाँ, बिना कारण किसी भी प्राणी को दु:खी करना सर्वथा अधर्म है।

अंधविश्वास : 43 : भय लगे तो 'हनुमान चालीसा' पढ़ना चाहिए।

निर्मूलन : आप ही सोचें—डर के समय मुसलमान क्या करेगा? ईसाई क्या करेगा? सिक्ख क्या करेगा? संसार में अनेक देश हैं, वहाँ के लोगों को डर लगेगा तो वे क्या करेंगे?

जो मान्यताएँ कुछ ही लोगों की होती हैं उनको सबके लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता। सभी को कभी न कभी किसी न किसी कारण डर लगता है, तो क्या सभी 'हनुमान चालीसा' पढ़ते हैं?

वास्तव में डर के समय अगर अपने मन को दूसरे किसी कार्य में लगाया जाए तो डर नौ दो ग्यारह हो जाता है। समझ लो जंगल में जा रहे हैं और सामने शेर आ जाए तो स्वाभाविक है डर लगेगा। वहाँ हनुमान चालीसा पढ़ेंगे तो शेर का आक्रमण तो होगा ही, साथ ही साथ उसे स्वादिष्ट भोजन भी प्राप्त हो जाएगा। समझदारी तो इसी में है कि उससे बचने का उपाय करें।

हनुमान चालीसा रटने से संकट नहीं टलता। उस पर विचारें—व्यवहार में लाने का प्रयास करें। हनुमान चालीसा में हनुमान (श्री रामचन्द्र के परमभक्त) जी की महिमा बताई गई है—गुणगान किया

गया है। हनुमान जी के गुणों को अपना सकें तो निश्चित ही लाभ होगा। ग्रन्थों को पढ़ने से शाब्दिक ज्ञान अवश्य बढ़ता है, जबकि उस पर विचार कर व्यवहार में लाने से जीवन सँवरता है।

भय के कारण का निराकरण करने से ही भय पर विजय प्राप्त की जा सकती है। भय होता है अज्ञानता के कारण या शक्ति आदि की कमी से, अतः कारण को ही ख़त्म कर दिया जाए तो भय से छुटकारा पाया जा सकता है।

अंधविश्वास : 44 : 'दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।

निर्मूलन : होटलों में खाना पकता है और अगर हर दाने पर खानेवाले का नाम लिखा है, तब तो होटल के वेटर को ऑर्डर करने से पहले ही खाना लाकर सामने रख देना चाहिए। जो लोग ऐसा मानते हैं उनसे एक प्रश्न करना चाहिए कि कौन-सी भाषा में खानेवाले का नाम लिखा होता है? इसका तात्पर्य तो यह भी निकाला जा सकता है कि किसी खूँख़ार जानवर ने किसी इन्सान को पकड़कर खा लिया, क्योंकि उस मरनेवाले इन्सान के ऊपर खानेवाले का नाम लिखा था! एक बंदर ने आपके हाथों में से रोटी का टुकड़ा छीन लिया और खा गया, फिर आप बंदर को भगाते क्यों हैं? कुत्ते ने परोसे हुए खाने को मुँह मारा—कुछ खा लिया—तो क्या बाकी खाने को आप खा लेंगे? जितना खाना कुत्ते के नाम का था उसने खा लिया, अब बाकी खाना किसके नाम का है? कुत्ते को आप मार भगाते हैं, क्यों?

प्रिय पाठकगण! किसी भी दाने पर खानेवाले का नाम या निशान नहीं होता। यह तो घर में आए अतिथि को प्रसन्न करने के लिए कहते हैं कि आपका ही नाम लिखा था। मान लो—घर में अतिथि तीन-चार आ जाते हैं और खाना एक का है तो क्या करेंगे? खाना सामने रख लो और कहो कि आप स्वयं ही देख लो कि किसका नाम लिखा है! क्या ऐसा संभव है? नहीं!

जीव कर्म करने में स्वतंत्र है—वह खाना खाए या नहीं खाए या केवल पानी पिये—इसका फैसला पहले से ही नहीं कर सकते। अगर भूख है और खाना उपलब्ध है तो व्यक्ति खाना खा ही लेता है, और

भूख है—खाना उपलब्ध नहीं है तो भूखा भी रहना पड़ता है। इन हालात में क्या ऐसा भरोसा कर सकते हैं कि हमारा नाम किसी भी दाने पर नहीं लिखा?

'दाने-दाने पर खानेवाले का नाम' केवल दिल्लगी का मुहावरा है।

अंधविश्वास : 45 : चोरी-छिपे किसी के यहाँ से 'मनी प्लांट' लाकर अपने घर में लगाने से वह बहुत जल्दी बढ़ता है और इससे घर में संपत्ति भी बढ़ती है।

निर्मूलन : चोरी तो चोरी ही होती है चाहे वह धन-दौलत की हो या छोटी चीज की। बिना पूछे किसी भी वस्तु को लेना चोरी कहाती है।

'मनी प्लांट' एक बेल होती है जो कहीं भी ठीक तरीके से लगाने पर बढ़ती है। यहाँ चोरी करने का तात्पर्य क्या है? चोरी से तो चोरी के बीज बढ़ते हैं और बड़े होकर वही इन्सान चोर बन जाता है। चोरों को हर काम में चोरी ही सूझती है—बहाना मनी प्लांट का है। जैसे मनी प्लांट बढ़ता है वैसे ही चोरी की आदत भी बढ़ती है। मनी प्लांट की वजह से घर में धन-दौलत बढ़ना नामुमकिन है। धन-दौलत तो परिश्रम से, समझदारी से ही कमाई जाती है, न कि किसी के यहाँ से मनी प्लांट चोरी करके अपने घर में लगाने से! ये सब मूर्खों की बातें हैं—निकम्मे लोगों की बातें हैं!

ईश्वर सबको सत्य ग्रहण करने तथा सत्याचार करने की शक्ति प्रदान करे!

अंधविश्वास : 46 : भाग्य विधाता का लेख है, इसे बदला नहीं जा सकता।

निर्मूलन : सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि भाग्य क्या है? वास्तव में भाग्य हमारे ही कर्मों की पकी हुई खेती है। कर्म अच्छे हैं तो भाग्य सौभाग्य में बदल जाएगा। हमारे कर्म खोटे हैं तो भाग्य दुर्भाग्य बन जाएगा। भाग्य यदि लहलाती फ़सल है तो उसकी आधार-भूमि हमारे कर्म हैं। जी हाँ, भाग्य कर्मों पर आधारित होता है। हम जैसे कर्म करते हैं, परमपिता परमात्मा उन्हीं कर्मों का फल

यथायोग्य न्यायानुसार प्रदान करता है। अच्छे का अच्छा फल और बुरे का बुरा फल—यही विधाता का विधान है। कर्मों का फल इसी वर्तमान जन्म में मिले या किसी अन्य जन्म में, यह कर्म-फल देनेवाले पर ही निर्भर करता है। मनुष्य केवल कर्म करने में स्वतन्त्र है, किन्तु फल उसके आधीन नहीं है। कर्म का फल कब, कहाँ, कैसे प्राप्त होगा—यह ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता।

पूर्व-जन्म में किये गए संचित कर्मों के फल को ही प्रारब्ध या भाग्य कहते हैं, जिसे साधारण भाषा में लोग किस्मत, नसीब और तकदीर इत्यादि नामों से भी जानते हैं। ईश्वर जाति, आयु और भोग के द्वारा कर्म-फल प्रदान कर हमारे भाग्य का निर्माण करता है। इस जीवन में प्राप्त होनेवाले सभी सुख और दुःख हमारे ही कर्मों के फल नहीं होते, किसी दूसरे के द्वारा किया गया आघात भी हमें भोगना पड़ सकता है और उसका कर्मफल दूसरा भोगेगा।

जिन कर्मों के फल इस जीवन में नहीं मिल पाते, ईश्वर उन्हें अगले जन्म में प्रदान करता है। सबको अपने किये कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है, क्योंकि हम जब तक अपने कर्मों का फल भुगत नहीं लेते वे समाप्त नहीं होते। कर्म अच्छे हैं या बुरे हैं अर्थात् उनका फल (भाग्य) अच्छा है या बुरा, यह हम प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। कोई धनवान के घर में जन्म लेता है तो कोई निर्धन के घर में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार कोई अपने माता-पिता के दर्शन जीवन-भर करता है तो कई ऐसे भी हैं जिन्हें माता-पिता के दर्शन का सौभाग्य ही प्राप्त नहीं होता। यह सब हमारे ही पूर्व-कर्मों का फल है, यही हमारा भाग्य कहलाता है।

हम अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं, अतः अपने भाग्य को पुरुषार्थ द्वारा हम जब चाहें बदल सकते हैं। जो लोग केवल भाग्य के भरोसे रहते हैं अर्थात् पुरुषार्थ नहीं करते, वे कभी भी अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। हम सबको चाहिए कि पुरुषार्थ करें और अपना भविष्य (भाग्य) उज्ज्वल बनाएँ।

पूजा-पाठ, संध्या एवं यज्ञ आदि शुभ कर्मों से हमारा भविष्य मंगलमय हो सकता है। स्मरण रहे कि हम जिस प्रकार के कर्म-बीज

बोते हैं उसी प्रकार की फसल काटते हैं। एक प्रसिद्ध दोहा है—

जैसी करनी जो करे वैसा ही फल होय।
बोये पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से होय॥

अतः जो भी कर्म करना चाहें, पहले सोचें-विचारें, फिर कर्म करें। ज्ञान-पूर्वक कर्म करने के पश्चात् ही हमारा वर्तमान और भविष्य अर्थात् इहलोक और परलोक सुधर-सँवर सकता है। हमारे अपने ही कर्म हमारे भाग्य को बनाते और बिगाड़ते हैं। कर्म करने में हम ईश्वर के समान स्वतंत्र हैं। अपने भाग्य के तो हम स्वयं ही निर्माता हैं, ईश्वर तो केवल फल-प्रदाता है।

अंधविश्वास : 47 : दान-धर्म तथा ग्रहों की शान्ति करने से भाग्य को बदला जा सकता है।

निर्मूलन : कुछ भी कर लो, अच्छे कर्म करो या बुरे कर्म करो, परन्तु जो कर्म किये जा चुके हैं अथवा पूर्व-जन्म के जिन कर्मों का फल अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है अर्थात् जो अब हमारा प्रारब्ध (भाग्य) बन चुके हैं, उन्हें कोई बदल नहीं सकता। इतना अवश्य समझ लेना चाहिए कि वर्तमान में किये कर्मों का फल हमारे वर्तमान और भविष्य को बना अथवा बिगाड़ सकता है। जिन-जिन कर्मों के फल इस जीवन में हम नहीं भोग पाते, वे आनेवाले प्रारब्ध में जुड़ जाते हैं और उन सबको मिलाकर ही हमें परमपिता परमात्मा 'जाति-आयु-भोग' के माध्यम से प्रदान करता है।

दान-पुण्य, पूजा-पाठ, यज्ञ-हवन इत्यादि सभी शुभकर्म हैं, इनसे हमारा भविष्य उज्ज्वल होता है। शुभकर्म (निष्काम कर्म) ही हमारे वर्तमान और भविष्य को सँवारते हैं—सही मार्ग दर्शाते हैं और मोक्ष की ओर ले जाते हैं। ग्रह-उपग्रह की शान्ति करना-करवाना फ़िजूल की बातें हैं, क्योंकि जिन गैसीय तत्त्वों से ग्रहों-उपग्रहों की रचना हुई है, उन्हीं के कारण वे उग्र और शीतल हैं।

आप जड़ प्रकृति का सन्तुलन धरती पर तो बिगाड़ सकते हैं, परन्तु पूजा-पाठ से उनका स्वभाव, प्रभाव, रचना और धर्मिता नहीं बदल सकते। ये सब (ग्रह…) जड़ पदार्थ हैं। इन जड़ पदार्थों में अपना कोई ज्ञान नहीं होता। आकाश में जितने भी प्रकाशित या

अप्रकाशित (सूर्य-चन्द्रमा-तारे इत्यादि) ग्रह-उपग्रह हैं, सभी परमपिता परमात्मा से ही प्रकाशित होते हैं—इनमें उष्णता या ठंडक के प्रदान करनेवाला ईश्वर ही है। ईश्वर के सिवा अन्य कोई भी (जीव) इनकी व्यवस्था को बदल नहीं सकता! मनुष्य एक सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, किन्तु न वह सूर्य को बर्फ का गोला बना सकता है, न शनि-मंगल आदि ग्रहों को उनकी दिशा से भटका सकता है। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण को तो हम बदल नहीं सकते और बातें करते हैं मंगल-शनि इत्यादि ग्रहों को शान्त करने की! कितना अज्ञान फैला है अभी भी! भाग्य तो कर्मों से बनता-बिगड़ता है। विज्ञान के युग में हम हैं कि आँखें मींचे ज्योतिषियों के पीछे-पीछे भागते हैं और अपना भविष्य पूछते रहते हैं। जिनको अपने भविष्य का ही कोई पता नहीं, वे भला किसी और के भविष्य को क्या बता सकते हैं?

अंधविश्वास : 48 : सैकड़ों वर्ष पहले से सूर्य-चन्द्र के ग्रहण की सटीक भविष्यवाणी करनेवाली ज्योतिष-विद्या ग़लत नहीं हो सकती!

निर्मूलन : कौन कहता है कि ज्योतिष विद्या ग़लत है? जहाँ तक गणित-फल का प्रश्न है, शत-प्रतिशत सही है। ज्योतिर्पिण्डों की स्थिति और गणना, कब-कहाँ-कैसे इन ग्रह-उपग्रह-नक्षत्रादि के घूमने आदि का ज्ञान विद्या से ही प्राप्त किया जा सकता है। कब सूर्यग्रहण होगा या कब चन्द्रग्रहण होगा इत्यादि की जानकारी ज्योतिषी पहले से ही बता सकते हैं, क्योंकि ये सब प्रकृति के नियमानुसार ही होता है। प्रकृति के इन नियमों को वेद में 'ऋत' कहा है कि जिनको बदला नहीं जा सकता, इसलिए ज्योतिष-विद्या का ज्ञान बिल्कुल सही और जानने के योग्य है।

अंधविश्वास : 49 : ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों से लाखों लोगों के भाग्य सँवर जाते हैं!

निर्मूलन : केवल ग्रह-उपग्रहों की स्थिति के बारे में भविष्यवाणी करना ही नक्षत्र-विद्या की देन है। ज्योतिषियों के भविष्य-कथन अर्थात् फलित विद्या माननीय नहीं है—अवैदिक है—सृष्टिनियमों के विरुद्ध है—असत्य है। किसी मनुष्य के भाग्य को पढ़ना तो दूर की बातें हैं,

आज अभी क्या होनेवाला है—कोई भी नहीं बता सकता। भविष्यवाणियाँ अनुमान पर आधारित होती हैं। स्वयं ज्योतिष को जाननेवाले पंडित स्वयं ही कहते हैं कि 'हम जो भी कहते हैं 30% सही हो सकता है (वह भी अनुमान के आधार पर ही), 100% तो कोई भी सही नहीं हो सकता।' निश्चित भाग्य के बारे में बताना असंभव है। अनुमान तो कोई भी कर सकता है। हम जो भी कर्म करते हैं उनके आधार पर इतना तो अनुमान हम स्वयं भी लगा सकते हैं कि इसका क्या फल मिलेगा!

किसी का भाग्य कोई नहीं पढ़ सकता। अपने भाग्य को बनाते हम ही हैं। जब हम ही अपना कर्म-फल स्वयं नहीं पढ़ सकते तो दूसरा कोई कैसे पढ़ सकता है? हाँ, ईश्वर सर्वज्ञ है, अतः वही पढ़ सकता है और वही सत्य है।

अंधविश्वास : 50 : ज्योतिषियों की भविष्यवाणी भले ही झूठ निकले, ज्योतिष कभी झूठ नहीं कहता!

निर्मूलन : ज्योतिषी जो कुछ भी बताते हैं, ग्रहों की स्थिति के अनुसार बताते हैं और उसी गणित के आधार पर अपनी ओर से संभावना बताते हैं कि निकट भविष्य में ग्रहों की स्थिति के अनुसार किस प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है। वे स्वयं भी मानते हैं कि उनकी समझ के अनुसार, गणित-विज्ञान के अनुसार, ग्रहों की स्थिति के अनुसार, उनके जीवनभर के तजुर्बे के अनुसार अमुक-अमुक संभावनाएँ हैं जो शत-प्रतिशत कभी सत्य नहीं हो सकतीं; केवल 50-50% ठीक हो सकती हैं।

ज्योतिष का आधार है गणित। गणित में दो और दो मिलकर चार ही होंगे, तीन या पाँच नहीं। इसी कारण ज्योतिष का गणित-फल पूरी तरह विश्वसनीय है। धुरंधर वैज्ञानिक और सुपर कम्प्यूटर भी सौ साल आगे लगनेवाले ग्रहण या ग्रह-चाल जानने में फ़ेल हो सकते हैं, किन्तु भारत का गणित-ज्योतिष सर्वथा सच्ची भविष्यवाणी करेगा। ज्योतिष-विद्या को बदनाम किया है सड़क-किनारे बैठनेवाले अधकचरे ज्योतिषियों ने। ग्रहों के जोड़-तोड़ करके वे जो झूठी भविष्यवाणियाँ करते हैं, उन पर कभी विश्वास न करें। फलित-ज्योतिष, रमल आदि

तो जेब काटने के धन्धे हैं। जो भी इनके हत्थे चढ़ेगा, उसे पूजा-पाठ के द्वारा ग्रह-शान्ति के बहाने ये रमले ज्योतिषी कंगाल करके ही दम लेंगे।

बिना मोल लिये ज्योतिषी भी बोल नहीं देता। जितनी अधिक सेवा—उतना ही जिज्ञासुओं का भाग्य उज्ज्वल बताता है, नहीं तो कम दाम देनेवालों का भविष्य भी कुछ कम ही आँकता है! प्रिय पाठको! जिन अज्ञानियों को अपने भविष्य का ज्ञान नहीं, वे दूसरों के बारे में सही भविष्यवाणी कैसे कर सकते हैं? आपका भविष्य कोई भी ग्रह नहीं सँवार सकता। अपने भविष्य के निर्माता हमीं हैं। सुकर्म करो—निष्काम कर्म करो! पूजा-पाठ-यज्ञादि शुभ कर्म करते रहो, बाकी सब-कुछ ईश्वर के हवाले कर दो। ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है, हमारे भले के लिए ही करता है। ईश्वर-प्रणिधान से ही सब दुःखों का निवारण होता है।

ज्योतिष विद्या 100% सही है। इसको सीखना भी चाहिए। तब स्वयं ही अनुभव के अनुसार इसे परख लीजिये! आपके सभी कार्य सफल हों—ऐसी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है। इत्योम्!

अंधविश्वास : 51 : नदियों और पवित्र सरोवरों के जल में पैसे (coins) डालने से मुरादें पूरी होती हैं!

निर्मूलन : कुछ परम्पराएँ जीवधारियों की दीर्घायु की कामना से शुरू की जाती हैं, किन्तु वर्षों बाद वे भेड़चाल में बदल जाती हैं। जल में सिक्के फैंकना भी ऐसी ही भेड़चाल है। जब भारत में तांबे, चाँदी और सोने की बहुलता थी तो सिक्के भी इन्हीं धातुओं के प्रचलित थे और बर्तन भी इन्हीं धातुओं के होते थे। इन धातुओं के सिक्के डालने से जल पवित्र और गुणकारी होकर लोगों को स्वस्थ बनाए रखता था। जिन नदियों, कुओं, सरोवरों और बाड़ियों का जल पीने के काम आता था, उसमें लोग तांबे, चाँदी और सोने के सिक्के फैंकते थे। तांबा हो या सोना, पानी में पड़ा रहे तो उनके गुण जल ग्रहण कर लेता था। ऐसे पानी से प्रजा स्वस्थ और दीर्घायु होती थी।

अब एल्युमीनियम के सिक्के चल पड़े हैं। एल्युमीनियम मनुष्य के लिए घातक है, तपेदिक फैलाता है। ऐसे सिक्के नदियों में डालना

नरसंहार करना है। परंपरा तो अच्छी थी, मगर विकृत होकर भेड़चाल बन गई है। इस रिवाज पर तुरंत अंकुश लग जाना चाहिए।

जल ही जीवन है, जल के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। जल का अर्थ है 'ज' जन्म से लेकर 'ल'= लय तक, हर प्राणी के काम आए। पाँच भूतों में जल भी एक भूत है। पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश—इन्हीं पंचमहाभूतों से शरीर बनता है। मनुष्य-शरीर में जल की मात्रा 80% होती है।

घातक धातुओं के सिक्के जल में (समुद्र-झील-तालाब इत्यादि में) डालने से कोई जल पवित्र या शुद्ध नहीं होता, बल्कि दूषित होता है। किसी भी वस्तु को दूषित करना महापाप है। पानी में रुपये फेंकने से कोई मुराद पूरी नहीं होती। जल देवता है। उसमें एल्युमीनियम के सिक्के डालना कहाँ की समझदारी है? देखा गया है कि लोग सड़े हुए फल-फूल, पूजा से बचे हुए पान-पत्ते, चावल, नारियल इत्यादि सब जल में डाल देते हैं। इससे नदियों का जल प्रदूषित होता है, सड़ाँध मारता है, रोग बढ़ाता है। पुण्य-कर्म के बहाने पाप न कमाएँ! ईश्वर किसी से फल-फूल नहीं माँगता। उसकी प्रेम से उपासना करें। उसके दिये हुए जल को प्रदूषित करके पाप के भागी न बनें।

यदि रुपए-पैसे के यही सिक्के किसी दीन-दुःखी, निर्धन, या जिस व्यक्ति को अत्यावश्यकता हो उसे दे देंगे तो यह महापुण्य होगा। हर वस्तु के सदुपयोग से ही मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण होती हैं। पानी को स्वच्छ रखें—प्रदूषित न करें कि जल में रहनेवाले प्राणियों तक की मृत्यु हो जावे।

ऐसे पुण्य का क्या लाभ जो पूरे शहर के पानी में विष घोल दे? इन्हीं अन्धविश्वासों और अन्धश्रद्धा के कारण ही मनुष्य दुःखी होता है। जहाँ हम अपना भला सोचते हैं वहाँ औरों का भी सोचना चाहिए, क्योंकि सब प्राणियों की खुशी में ही हम सब मनुष्यों की खुशी का राज़ छुपा है। ईश्वर सबको सद्बुद्धि प्रदान करें!

अंधविश्वास : 52 : तीर्थयात्रा से पाप धुलते हैं!

निर्मूलन : बहुत ही ज्ञानवर्धक भ्रान्ति है—बहुत ही अच्छी शंका है!

तीर्थयात्रा से आनेवाले तीर्थयात्रियों से ही पूछ लें कि क्या उनके सब पाप धुल गए? पाप किये ही क्यों थे कि उनको धोने के लिए अपना घर-बार छोड़कर, अपनी जान जोखिम में डालकर यहाँ से वहाँ घूमते-फिरते हैं? इसी तरह अगर पाप धुलते रहे तो सबके पाप तीर्थस्थानों पर ही पड़े रहेंगे और बाद में आनेवाले दूसरे तीर्थ-यात्रियों को लग जाएँगे! क्या भरोसा पाप धुलने की बजाय पाप चढ़ा लाएँ? ऐसा भी तो हो सकता है कि पाप धोने के बहाने तीर्थों पर जाएँ और वहाँ कई नए-नए पाप कर आवें? अक्सर लोग तीर्थयात्रा कम करते हैं, घूमने-फिरने अधिक जाते हैं। है ना?

प्रिय पाठको! गंगा-यमुना-सरस्वती-गोदावरी-व्यास-कृष्णा-कावेरी इत्यादि नदियों का पानी शरीर की मैल तो धो सकता है, परन्तु मन पर पड़ी मैल भौतिक वस्तुओं से नहीं धुल सकती; उसके लिए तो ज्ञानरूपी साबुन की आवश्यकता पड़ती है। धर्माचरण करनेवाले को तीर्थों तक जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥ *यजु: 16/61*

हमारे अंदर ही ज्ञान-गंगा बहती है जिसमें मन पर पड़े मैल (मल-आक्षेप-आवरण) धुल जाते हैं। ज्ञान-गंगा का पानी सत्यज्ञान के भण्डार 'वेद' से आता है जो सदा बहता रहता है। इसी में डुबकी लगाने से जीवन साफ-सुथरा-सफल हो जाता है।

(Scientific reasons for forth
Yatra in Hindu Philosophy)

भारत में तीर्थस्थान प्रायः नदियों के किनारे या पर्वतों के शिखरों पर स्थित हैं जहाँ भगवान की मूर्तियों को सजाकर मंदिर बनाकर रखा जाता है। भक्तजन यहाँ आते हैं—नदियों में, झरनों में नहाते हैं। शरीर को शीतल जल से स्वच्छ करते हैं, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर मंदिरों में भगवान के दर्शन करते हैं और अपने दुखड़े उनके सामने रखते हैं। मन-मंदिर में बैठा परमपिता परमात्मा उनकी बातें सुनता है, उनकी भावनाओं को परखता है। इस प्रकार तीर्थयात्री ब्राह्मणों को, भिखारियों को, वृद्ध अनाथों को दान-दक्षिणा देते हुए तीर्थस्थानों पर जाते हैं।

महीने-भर की यात्रा के पश्चात् घर लौटते हैं। साथ में लाते हैं पवित्र नदियों का जल, वहाँ की प्रसिद्ध मिठाइयाँ (प्रसाद के तौर पर) और अपने छोटे बच्चों के लिए कुछ खिलौने! इस प्रकार यात्रा समाप्त होती है।

आइए अब इन बातों का सूक्ष्मता से अध्ययन करें।

तीर्थस्थान नदियों के तटों पर या पर्वतों के शिखरों पर होते हैं, क्यों? हमारे पूर्वज जानते थे कि शहरों का वातावरण धीरे-धीरे बिगड़ता जा रहा है और प्रदूषण भी अब कंट्रोल में नहीं रहा तो उन्होंने मंदिरों का निर्माण ऐसे स्थानों पर किया जो शहरों से दूर हों (प्रदूषणों से मुक्त हों) और जहाँ की वायु शुद्ध हो। ऐसा स्थान नदियों के किनारे और पर्वतों पर ही ठीक लगता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर इस प्रकार के तीर्थस्थानों का नाम रखा गया कि लोग सुख-शान्ति के वातावरण में आएँ और तनावमुक्त (Tension free) रह सकें। कुछ समय के लिए ऐसे स्थानों पर जाने से स्वास्थ्य-लाभ होता ही है। साथ-साथ घूमने-फिरने से नवयुवकों में उत्साह भी बढ़ता है। पहाड़ों पर चढ़ने से और वहाँ की शुद्ध वायु से अनेक प्रकार के रोग भी भाग जाते हैं—यह वैज्ञानिक सत्य (Scientific truth) है। लोग समझते हैं कि तीर्थस्थलों पर जाने से ही हमारे दुःख-दर्द-पाप इत्यादि धुल जाते हैं। चलो इसी बहाने लोग शहरों की जिन्दगी से ऊबकर कुछ समय प्रकृति की गोद में खुले वातावरण में बिताते हैं—यह भी ठीक है!

प्राचीन काल में साधु-संत उपदेश देते थे तो श्रद्धालु भक्तजन श्रवण करते थे, उन पर मनन करते थे तथा अपने जीवन में धारण करते थे। यह सही है कि संतों की वाणी जीवन में उतारने से मनुष्य पाप-कर्मों से बचता है, इसी प्रकार वह अपने जीवन को सँवारता है—यही तीर्थ कहाता है। जिससे तर जाए वही तीर्थ है। अब वे संत तो रहे नहीं; जहाँ वे उपदेश करते थे, वही तीर्थ-स्थान बन गए हैं। काशी-मथुरा-हरिद्वार-बदरीनाथ-केदारनाथ इत्यादि जितने भी ये स्थान तीर्थ माने जाते हैं, वे असल में उन संतों के आश्रम हुआ करते थे। वहाँ जाने से लाभ यही है कि ऋषियों की कही बातों को जानें-मानें तथा

अपने जीवन में उतारें।

माता–पिता–गुरु–आप्तपुरुष तथा धर्मग्रन्थों की बताई बातों को समझकर उनको व्यवहार में लाना ही सच्चा तीर्थ है। वेदाध्ययन करना भी तीर्थाटन है जिससे इस संसाररूपी भव–सागर से तर जाएँ, मोक्ष प्राप्त करें।

अंधविश्वास : 53 : मूर्ति आदि में श्रद्धा रखने से भी हमारी सभी प्रार्थनाएँ ईश्वर सुनता है!

निर्मूलन : पिता सामने बैठे हों और पुत्र उसे पानी तक न पूछे, बल्कि पिता को तो भूखा मरने दे और उसकी फोटो के आगे फल–मिठाई अर्पित करता रहे तो ऐसे पुत्र को आप क्या कहेंगे? मूर्तिपूजक भी यही तो करते हैं! ईश्वर सर्वव्यापक है, अतः मूर्तिपूजक के भी आसपास है। भक्त जी ईश्वर से तो मुँह मोड़ लेते हैं और पत्थरों की पूजा करते रहते हैं—इसे आप क्या कहेंगे?

ईश्वर सबकी प्रार्थनाओं को अच्छी तरह सुनता है और प्रार्थनाओं के पीछे क्या भावनाएँ होती हैं वह भी जानता है, परन्तु ईश्वर को भूलकर मूर्ति आदि जड़ पदार्थ में आस्था रखने से तथा उसे ही ईश्वर मानने से, ईश्वर अवश्य ही उस प्रार्थना का फल नहीं देता। ऐसा करने से न केवल समय की ही हानि होती है, अपितु वह व्यक्ति अज्ञानरूपी अन्धकार के महासागर में गहरा डूबता जाता है।

सर्वप्रथम यह समझना होगा कि श्रद्धा क्या है, किसे कहते हैं, तभी इस भ्रान्ति का निवारण आसानी से हो सकता है। श्रद्धा=श्रत्+धा। श्रत् कहते हैं सत्य को और धा का अर्थ है 'धारण करना', अतः श्रद्धा का अर्थ हुआ सत्य में धारणा रखना। बिना सोचे–समझे किसी पर भी विश्वास कर लेना तो अन्धश्रद्धा कहाती है। सरल भाषा में कहें तो सत्य को धारण करके उसे व्यवहार में लाना श्रद्धा होती है। इसके विपरीत असत्य का सहारा लेकर, उसे सच समझकर व्यवहार करना—यह अन्धश्रद्धा कहाती है। जैसे कोई अग्नि में श्रद्धा करे जल की, तो नतीजा क्या होगा? अग्नि का धर्म है जलाना। कोई जल समझकर अग्नि से हाथ धोएगा तो परिणाम सभी जानते हैं कि हाथ जल जाएगा, जले का इलाज करना पड़ेगा। उपचार में समय के साथ–साथ खर्च

भी होगा। यह अन्धश्रद्धा का फल है।

जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना-मानना-कहना तथा व्यवहार में लाना ही वास्तविक श्रद्धा है। श्रद्धा से प्रेम उत्पन्न होता है और प्रेम से ही ईश्वर के परम आनन्द को पाया जा सकता है। ईश्वर को पाने के लिए ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जानना अत्यावश्यक है। ज्ञान न होने पर ही अन्धश्रद्धा का सामना करना पड़ता है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, अत: ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद का स्वाध्याय करना चाहिए, इससे ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जान सकते हैं। ईश्वर को जानकर ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है; वरना कोई भी मार्ग अपना लें, ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं।

वेदानुसार—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप – निराकार – सर्वशक्तिमान्-न्यायकारी-दयालु-अजन्मा-अनन्त-निर्विकार-अनादि-अनुपम-सर्वाधार-सर्वेश्वर-सर्वव्यापक-सर्वान्तर्यामी-अजर-अमर-अभय-नित्य-पवित्र और सृष्टिकर्ता है—वही वेद का दाता और सब जीवों के कर्मफल को देनेहारा है।

यजुर्वेद में ईश्वर का स्वरूप :

1. **न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।** 32/3
2. **यस्माज्जातं...सचते स षोडशी ।** 32/5
3. **स पर्यगाच्छुक्रमकायम्...समाभ्यः ।** 40/8

प्रभुभक्त समझ सकते हैं कि वह ईश्वर कैसा है जिसकी वे तलाश कर रहे हैं। ईश्वर चेतन है, निराकार है—केवल इन दो गुणों को समझ लें, बाकी सब अपने-आप समझ में आते जाएँगे।

चेतन अर्थात् जिसमें ज्ञान हो, और निराकार का अर्थ होता है जिसका आकार न हो। अब स्वयं ही निर्णय कर सकते हैं कि मूर्ति जो मिट्टी से बनी एक चित्रकार की कल्पना है—जो सीमित दायरे में है—वह तो दीखती है, उसे छू सकते हैं—उसका रंग-रूप बदल सकते हैं—क्या वह ईश्वर हो सकता है? जड़ वस्तु में चेतनता नहीं होती अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं होता। उस मूर्ति को तोड़ा या फिर जोड़ा जाए—उसे नहलाया जाए या फिर उसे धूप में सुखाया जाए, अर्थात् जैसे हम चाहें वैसा बर्ताव मूर्ति से कर सकते हैं। क्या ऐसा ईश्वर के

बारे में सोच-समझ सकते हैं ?

ईश्वर सर्वव्यापक है। मूर्ति तो एकदेशी है अर्थात् मूर्ति का सीमित दायरा है, उसको उठाकर कहीं भी रख सकते है। आप ईश्वर (मूर्ति) को उठा सकते हैं, छू सकते हैं, उसे मनचाहे स्थान पर रख सकते हैं, वहाँ अच्छा न लगे तो और कहीं रख सकते हैं। ईश्वर न हुआ, सभी के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया! पाठक स्वयं समझ लें—क्या ऐसा संभव है ?

चंद लोगों की वजह से ईश्वर (मूर्ति) को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। रंग-रूप फीका पड़ जाए तो उसे नष्ट कर दूसरे भगवान (मूर्ति) को स्थापित कर देते हैं। इसका तो यह निष्कर्ष हुआ कि भगवान इन्सान के बस में है, अर्थात् इन्सान भगवान से महान् है!

सज्जनो! ये धर्मान्ध लोगों की बातें हैं। अन्धविश्वासियों की बातें हैं। अज्ञानियों की बातें हैं। स्वार्थी लोगों की बातें हैं। अधर्मी व्यापारियों की बातें हैं। धन-दौलत के पुजारियों की बातें हैं। मूर्ख लोगों की बातें हैं।

ईश्वर तो सर्वव्यापक है—सत्+चित्त+आनन्दस्वरूप है, निराकार है; वह तो सर्वान्तर्यामी है, घट-घट में बसता है, सबके हृदय में बसता है, सबके अंग-संग रहता है; वह तो सब स्थान में विद्यमान है, हम सभी उसी परमपिता परमात्मा की गोद में रहते हैं। उससे मिलने का सरलतम उपाय यह है कि अपने ही मन में झाँको, वह परमेश्वर मिल जाएगा। चर्मचक्षुओं को बंद करें, ज्ञानचक्षुओं को खोलें, वह प्रियतम तो यहीं है! यहाँ-वहाँ क्यों ढूँढना ?

मूर्ति में भी भगवान तो व्याप्त है, परन्तु हम मूर्ति में नहीं। जहाँ हम हैं वहाँ वह है। वहीं तो दोनों का मिलन हो सकता है। केवल मूर्ति के चक्कर में रहेंगे तो भगवान भी नहीं मिलेगा। पानी कभी दूध नहीं बन सकता। जड़ वस्तु कभी चेतन नहीं बन सकती और चेतन कभी जड़ नहीं बन सकता।

अत: जीवन में सत्य को धारण करें—श्रद्धापूर्वक ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें। इसी में सबका कल्याण है। अन्धश्रद्धा को दूर करें, तभी हम ईश्वर की कृपा के पात्र बन सकते हैं।

अंधविश्वास : 54 : मंदिर में भगवान रहते हैं, तभी तो लोग मंदिरों में जाते हैं—पूजापाठ करते हैं!

निर्मूलन : भगवान सभी स्थान में रहते हैं, हर समय रहते हैं। मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे-गिरजाघर जितने भी मनुष्य ने अपनी समझ के अनुसार स्थानविशेष बनाए हैं, परमपिता परमात्मा का वास सब जगह है। ईश्वर ज़र्रे-ज़र्रे में समाया है क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है।

लोग पूजा-पाठ करने मंदिरों में जाते हैं तो कोई आपत्तिवाली बात नहीं है। पूजा-पाठ कहीं भी हो सकता है, कभी भी हो सकता है। इसके लिए किसी विशेष मंदिर या किसी विशेष स्थान पर जाने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है तो केवल श्रद्धा और प्रेम की।

बाहरी मंदिरों से कुछ सीखना चाहिए। मंदिर प्रतीक हैं हमारे अपने अंदर बसे मन-मंदिरों के। ईश्वर से मिलने का हमारा हृदय ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है जहाँ वह भी बसता है, हम स्वयं (आत्मा) भी बसते हैं। इस मनमंदिर से बढ़कर और कोई स्थान नहीं हो सकता। ईश्वर तो सब जगह विद्यमान है, परन्तु आत्मा इस शरीर में ही बसता है क्योंकि वह (आत्मा) एकदेशी अणु है। अल्पज्ञता के कारण हम ईश्वर को बाहर ढूँढने का प्रयास करते हैं जो व्यर्थ में हमारे जीवन की अनमोल घड़ियाँ गँवा देता है।

प्रभु-भक्त कहीं भी जाएँ, मंदिर जाएँ या मस्जिद में, गिरजाघर जाएँ या गुरुद्वारे, परन्तु इतना अवश्य ध्यान में रखें कि वह परमपिता परमात्मा हमारे अंदर ही रहता है। जहाँ हम हैं वहीं हमारा परमप्रिय प्रभु भी रहता है।

मंदिरों में अवश्य जाना चाहिए। वहाँ का वातावरण देखना चाहिए। वहाँ की पवित्रता को देखना चाहिए। जिन महापुरुषों की मूर्तियाँ हैं, उनके बारे में—उनके जीवन के बारे में जानकारी लेनी चाहिए। उनके चित्र को देखकर उनके चरित्र के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। इसी प्रकार जिस मंदिर में जाएँ, चाहे वह शंकर जी का मंदिर हो या मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र महाराज का, या फिर योगेश्वर कृष्ण भगवान का, इन महापुरुषों के चरित्र का ध्यान करें और वैसा ही बनने का प्रयास करें। महापुरुषों के जीवन से ही हम अपने जीवन

को वैसा ढालने का प्रयास करेंगे तो किसी हद तक अपना जीवन सुधार-सँवार सकते हैं। भगवान राम, भगवान कृष्ण दोनों ही भारतीय संस्कृति के ऐसे प्रतीक हैं जिन पर नाज़ किया जा सकता है। अत: उनके मंदिरों से हमें उच्च कोटि के महात्मा बनने की प्रेरणा मिलती है। बच्चों को भी साथ ले जाएँ ताकि उनको भी हमारे पूर्वजों के बारे में जानकारी मिले।

अपने घरों में ऐसे महापुरुषों की तस्वीरें अवश्य लगानी चाहिएँ। राम और कृष्ण तो हमारे आदर्श हैं। हम-आप भी भगवान बन सकते हैं। ऐश्वर्य, तेज, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—जिनमें ये छ: गुण विद्यमान होते हैं वे भगवान कहलाने के योग्य होते हैं।

भगवान कोई भी बन सकता है परन्तु ईश्वर एक है। न कोई उसकी बराबरी कर सकता है और न कोई उससे महान् हो सकता है। ईश्वर सर्वोपरि है।

मंदिरों से कई बातें सीखी जा सकती हैं—

(1) **पवित्रता**—तन-मन से निष्कलुष रहना मनुष्य-जीवन के लिए परम हितकारी है।

(2) **समर्पण**—समर्पण-भावना से ही हम ईश्वर की दया-कृपा के सुपात्र बन सकते हैं।

(3) **नियम**—नियमपूर्वक पूजापाठ करने से जीवन अनुशासित होता है जिससे व्यक्ति महान् बनता है—यश और कीर्ति को प्राप्त करता है।

(4) **प्रसाद**—बाँटकर खाने को ही प्रसाद कहते हैं। मूर्तियाँ जड़ हैं, खा नहीं सकतीं। अत: ईश्वर की बनाई मूर्तियों (सब जीवों) से मिल-बाँटकर ही स्वयं खाएँ। इससे आपस में मित्रता और घनिष्टता होती है—सुख और शान्ति मिलती है।

(5) **स्वच्छता**—मंदिर स्वच्छ होते हैं, इससे यह सीख मिलती है कि हमें अपना शरीर और मन स्वच्छ रखना चाहिए जिसमें प्रभुवर स्वयं बसते हैं। खानपान को शुद्ध करना चाहिये। मनुष्य के खाने योग्य वस्तुएँ ही खाएँ। मांस-मच्छी

खाकर इस प्रभुमंदिर को अशुद्ध न करें। जीव-हत्या से बढ़कर और कोई पाप नहीं होता।

(6) **ज्योत**—मंदिरों में मूर्ति के आगे ज्योत जलाते हैं कि रोशनी रहे, इसका यह अर्थ निकालना चाहिये कि हमें भी सदा अपने मनमंदिर में ज्ञान की ज्योत जलाने की आवश्यकता है ताकि उस ज्ञानरूपी ज्योत से आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार हो सके। आध्यात्मिक ज्योत प्रज्वलित होती है वेदाध्ययन से, सत्संग से, आप्तों के वचनों से, तथा स्वाध्याय से। जिनकी आत्मा सजग होती है वही परमेश्वर के आनन्द को प्राप्त करता है।

(7) **अगरबत्ती**—धूप-अगरबत्ती मंदिरों में जलाते हैं, इस कारण कि वातावरण सुगंधित हो। इससे भी सीख मिलती है कि अपने जीवन में श्रद्धा और प्रेम की अगरबत्ती से इस प्रकार का सुगंधित वातावरण उत्पन्न करें कि सभी उस सुगंध से प्रभावित हों और आपस में मैत्रीभाव बना रहे!

(8) **भजन-कीर्तन**—मंदिरों में सुबह-शाम भजन-कीर्तन-आरती होती है—भगवान के गुण गाए जाते हैं। इसी प्रकार हम भी अपने जीवन को संगीतमय बनाएँ। प्रातः-सायं नित्यप्रति ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना किया करें जिससे हम ईश्वर के समीप रहने के अधिकारी बनें तथा प्रभु-कृपा से सदा आनन्द में रहें।

(9) **नमस्ते**—मंदिरों में भक्तजन एक-दूसरे का अभिनंदन करते हैं। कोई राम-राम कहता है तो कोई राधे-राधे तो कोई कृष्ण-कृष्ण। यहाँ भी हमें सीखना चाहिए कि जब भी हम-आप आपस में मिलें तो इन महापुरुषों के नाम के स्थान पर 'नमस्ते' कहकर हाथ जोड़कर अभिनंदन करें। नमस्ते छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सभी कभी भी कर सकते हैं। नमस्ते कहना किसी संप्रदाय-मत-पंथ इत्यादि का सूचक नहीं, अतः हम सबको एक-सा मानते हैं। सभी ईश्वर की संतान हैं तो फिर भेदभाव कैसा? जहाँ भेद नहीं वहीं

मित्रता बढ़ती है। जहाँ मित्रता है वहाँ प्रेम पैदा होता है। जहाँ प्रेम है वहीं ईश्वर है। कहते हैं गॉड इज़ लव एंड लव इज़ गॉड।

(10) **मंदिर तो जड़ होते हैं**—भवन ईंट-पत्थर से बने हैं। कभी बनते हैं तो कभी टूटते भी हैं, परन्तु हमारा मन-मंदिर जहाँ आत्मा और परमात्मा दोनों बसते हैं, सदा एक-साथ रहते हैं। जड़ और चेतन का ज्ञान मिलता है। मंदिरों में बेशक ईश्वर व्याप्त है, परन्तु उन मंदिरों की तस्वीरों में हम नहीं पहुँच सकते; दूसरी ओर हम स्वयं मन में बसे हैं और ईश्वर भी हमारे अंग-संग हैं जहाँ उससे मुलाक़ात होती है। तब क्यों न हम अपने प्रियतम से अन्दर ही मिलें। मंदिर प्रतीक हैं मन-मंदिरों के।

अंधविश्वास : 55 : जादू-मंत्र से कई प्रकार के संकट टल जाते हैं!

निर्मूलन : जादू और मंत्र अलग-अलग क्रियाएँ हैं। हाथ की सफ़ाई को, जो जल्दी पकड़ में न आ सके, देखनेवाला चकित रह जाए, बुद्धि मानने से इन्कार करे, परन्तु आँखों से जो देखा है वह भी सत्य है—इस प्रकार की परिस्थिति को 'जादू' नाम दिया गया है। जादू और चमत्कार में कोई ज़्यादा अन्तर नहीं है। जादू खेल-सा होता है। जादूगर इतनी जल्दी हाथ की सफाई से कुछ ऐसा कर दिखाता है कि देखनेवाले उसे सच समझ बैठते हैं, यही जादू की करामात है। दिखने में सच लगता है परन्तु होता इसके बिल्कुल विपरीत है।

मंत्र कहते हैं वेद की ऋचाओं को, जिसमें विचार करने योग्य विषय होते हैं। मंत्रों का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है, अगर मंत्रों की कही बातों को ठीक-ठीक समझकर, विचारकर वैसा ही अपने जीवन में व्यवहार में लाएँ, जैसे—मंत्र है 'सत्यं वद' अर्थात् सत्य बोलो। जब तक सत्य को व्यवहार में नहीं लाएँगे अर्थात् हमेशा सत्य नहीं बोलेंगे, तब तक उस मंत्र का प्रभाव नहीं पड़ सकता। सत्य को अपनाने पर जीवन में क्रान्ति आती है और वर्तमान तथा भविष्य उज्ज्वल हो जाता है। सत्य से सदा लाभ ही होता है—यही मंत्र का प्रभाव है!

मंत्र ईश्वर का चमत्कार है जिसका प्रभाव तुरंत पड़ता है। मंत्र [वेद की ऋचाएँ] के जप से अपने लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। वेद के हर एक मंत्र में मंत्रणा है [विचार है]। उसको अपनाना ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है जिसको सरल भाषा में 'धर्म' कहते हैं। ईश्वर की कही बातों को जानना-मानना और व्यवहार में लाना ही धर्म है; इसके विपरीत आचरण अधर्म कहाता है।

कहे-सुने-देखे-सूँघे तथा स्पर्श का प्रभाव पड़ता है—संस्कार बन जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों से जो भी व्यवहार होता है उन सबका प्रभाव पड़ता है—संस्कार संस्कृत हो जाते हैं। कोई अपशब्द कहे तो उसका प्रभाव पड़ता है—मन विचलित हो उठता है। किसी ने प्रेमभरे शब्द कहे तो उसका असर पड़ता है—मन प्रसन्न हो जाता है। यह सब कहे-सुने शब्दों का प्रभाव है। इसी प्रकार जो कुछ व्यवहार करते हैं उसका भी प्रभाव पड़ता है।

जादू जो सत्य जैसा लगता है परन्तु है नहीं—उसका भी प्रभाव पड़ता है। जादू को सत्य मानेंगे तो दुष्प्रभाव पड़ेगा और उसे खेल समझकर भुला देंगे तो प्रभाव नहीं करेगा परन्तु स्मृति बनी रहती है। जादू से कोई मुर्दा ज़िन्दा हो जावे—यह असंभव है। जादू से रोगी ठीक हो जावे, यह भी असम्भव है। अनहोनी कभी होनी नहीं हो सकती और होनी कभी अनहोनी नहीं हो सकती। सत्य सदा सत्य ही रहता है—झूठ हमेशा झूठ ही रहता है।

अंधविश्वास : 56 : दुआ और शाप का असर अवश्य होता है!

निर्मूलन : ईश्वर से की गई प्रार्थना को उर्दू में दुआ कहते हैं और किसी के दुखते दिल से निकली आह को शाप कहते हैं। जी हाँ, दोनों का ही प्रभाव अवश्य पड़ता है। शब्द का प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार सत्संग (जहाँ सत्य बातों को सुनने वाले भक्त इकट्ठा होते हैं) का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार कोई दुःखी होकर मजबूरन किसी को (जिसने उसे दुःख पहुँचाया है) ऐसी बात कह दे जिससे कहनेवाले की दिल की भड़ास निकल जाए, परन्तु सुननेवाला भी भयभीत हो जाए और उसे सच समझ ले—उसे शाप या बद्दुआ कहते हैं।

दुआ 'प्रार्थना' और बद्दुआ 'शाप' को ही कहते हैं।

माता-पिता-गुरु-अतिथि इत्यादि आशीर्वाद देते हैं—दुआ देते हैं जिससे मन को अच्छा लगता है—कहने और सुननेवाले को—दोनों को—प्रेम की डोर में बाँध लेता है। कहते हैं ना—जहाँ दवा काम नहीं करती वहाँ दुआ काम करती है। दुआ से मन शान्त हो जाता है—मानसिक स्थिति को बल मिलता है और अनेक प्रकार के मानसिक रोग ठीक हो जाते हैं। ईश्वर से की गई प्रार्थना का प्रभाव तो अवश्य पड़ता ही है, और अगर वह प्रार्थना उचित धर्मपूर्वक और हर संभव परिश्रम करने के पश्चात् की गई हो—तो ईश्वर अवश्य उसे वरदान देते हैं! यह सत्य है।

किसी को बद्दुआ दे दो कि तू मरेगा और जल्दी ही मरेगा! क्या वह मनुष्य सचमुच में जल्दी मरेगा? यह निपट भ्रान्ति है! जिसको इस प्रकार की अत्यन्त कठोर बद्दुआ मिली है—सचमुच में उसका हृदय तो कमज़ोर पड़ ही जाएगा क्योंकि उसने वैसा कुकर्म किया होगा जो इस प्रकार का शाप उसे मिला है। उस व्यक्ति की मानसिक स्थिति असंतुलित हो सकती है—उसका पाप उसको सदा खाए रहता है—हर वक्त उसे वह शाप याद रहता है—मरने की गूँज उसे सुनाई देती है और हो सकता है इसी बेख़बरी में उसका एक्सीडेंट हो जाए और वह सचमुच मर जाए। यह श्राप का असर हुआ। परन्तु यहाँ समझनेवाली बात यह है कि क्या उसको श्राप ने मार दिया? नहीं, और हाँ भी! अगर उस व्यक्ति ने कोई ग़लत काम नहीं किया था और ग़लतफ़हमी का शिकार होकर किसी ने उसे अज्ञानतावश श्राप दिया है तो उसका प्रभाव उस सच्चे व्यक्ति को विचलित नहीं कर सकता! और अगर सचमुच उस व्यक्ति ने कुकर्म किये हैं तो उस बद्दुआ का असर उसे तड़पाता रहेगा और मानसिक बल जाता रहेगा और उसकी दुर्दशा होगी।

सच्चा इन्सान किसी से नहीं डरता। वह केवल ईश्वर से डरता है; और झूठा आदमी सबसे डरता है क्योंकि वह ईश्वर की कर्मफल की व्यवस्था में विश्वास नहीं रखता।

परमपिता परमात्मा सर्वान्तर्यामी है—सर्वज्ञ है। माँगना है तो ईश्वर

से माँगो। कुकर्मों से बचो! ईश्वर सदा सबको देख रहा है, उससे कोई काम छुप नहीं सकता! किसी का भला करने की क्षमता नहीं तो कभी किसी का बुरा भी न करो। किसी के लिए बुरा भी मत सोचो। कहीं ऐसा न हो कि जो दूसरों के लिए बुरा सोचते हैं वही अपने पर बन आए! सभी का भला चाहो—किसी को बद्दुआ मत दो—सबके लिए वाणी से भद्र ही बोलो, बाकी सब ईश्वर की न्याय-व्यवस्था पर छोड़ दो। सबके किये का फल वह परमपिता परमात्मा देता है। किसी को श्राप देकर, बद्दुआ देकर क्यों अपने अंदर गंदे संस्कारों के बीज बोते हो? इससे द्वेष बढ़ेगा—मन अपना भी तो दुःखी ही होगा!

सबकी भलाई में ही अपनी भलाई है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' इस श्लोकांश को विचारो और अपने व्यवहार में लाने का प्रयत्न करते रहो।

अंधविश्वास : 57 : कोई बुरा करे तो हम कैसे भला कर सकते हैं!

निर्मूलन : सबसे प्रीतिपूर्वक यथायोग्य वर्तना चाहिए, बाकी सब ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए—इसी में सबकी भलाई है। (जी हाँ, कहना आसान है, करना मुश्किल होता है।)

सभी अपनी-अपनी समझ के अनुसार काम करते हैं। बुरा करनेवाले बुरा करते हैं और अच्छा करनेवाले अच्छा! सब मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र हैं; परन्तु सबके कर्मों का फल तो ईश्वर को ही देना है—इस विधि के विधान को समझने का प्रयास करें और विश्वास रखें कि आपका किया आपको ही मिलनेवाला है। अच्छा करेंगे तो आपको ही अच्छा मिलेगा और जो लोग बुरा करते हैं उन्हीं को बुरा मिलेगा। ईश्वर तो न्यायकारी है—सर्वज्ञ है—सर्वान्तर्यामी है। जो जिस भावना से काम करता है ईश्वर वैसा ही फल उसे देता है। अगर ईश्वर में आपका पूर्ण विश्वास है तो इसकी बिल्कुल चिन्ता न करें कि अमुक मेरे साथ कैसा बर्ताव कर रहा है। ईश्वर देख रहा है, सुन रहा है—इसको ध्यान में रखकर आप कोई ऐसा कार्य न करें जिससे आप स्वयं उस लपेटे में आ जाएँ। ईश्वर को हाज़िर-नाज़िर जानकर जितना हो सके, यथाशक्ति शुभकर्म करते रहें—निष्काम कर्म करते रहें। बुरा कर्म

करनेवाले के साथ भी अच्छा व्यवहार करें—सब ठीक हो जाएगा।

बुरे आदमी के साथ संबंध न रखें—उससे व्यवहार न करें—उससे दूर रहें—द्वेष कभी न करें—कभी भी उसका अहित न चाहें—बुरा भी भला बन जाएगा!

अंधविश्वास : 58 : सच्चे देवी-भक्तों के शरीर में 'माता' का आना संभव है!

निर्मूलन : भौतिक शरीर को चलानेवाला अपना एक ही आत्मा होता है जिसके साथ-साथ परमात्मा भी रहते हैं। एक शरीर में एक ही आत्मा होता है। आजकल जो यह भ्रान्ति फैली हुई है कि प्राय: किसी-किसी स्त्री के शरीर में सायं या रात्रि को समय देवी माँ का आगमन होता है—शरीर काँपने लगता है—बाल बिखर जाते हैं—आँखें चढ़ जाती हैं—आवाज़ बदल जाती है—शरीर झूमने लगता है और शरीर में प्रवेश की हुई माता से जो कुछ पूछो, जवाब मिलता है। इस प्रकार की बातें अक्सर सुनने-देखने में आती हैं। प्राय: ऐसी बातों को सच मान लिया जाता है। यदि गहराई में उतरकर सोचें तो अपनी नादानी और अज्ञान पर हम स्वयं खीझ उठेंगे।

तनिक इन प्रश्नों पर विचारें—ये कौन-सी माताजी आती-जाती रहती हैं? माताजी रात में ही क्यों आती हैं? सवालों के जवाब माताजी स्वयं ही प्रकट होकर क्यों नहीं देतीं? किसी के शरीर में छुपकर ही क्यों देती हैं? जिस शरीर में आती हैं (प्रवेश करती हैं) उसे कष्ट क्योंकर देती हैं कि शरीर काँपने लगता है? उस माई के होशोहवास क्यों उड़ जाते हैं कि उसे अपनी सुधबुध भी नहीं रहती? बालों को बिखेरने का क्या मतलब है? थोड़ी ही देर के लिए 'माता' आती हैं तो जल्दी क्यों चली जाती हैं? पुरुषों के शरीर में क्यों नहीं आतीं? सबके शरीर में क्यों नहीं आतीं? माता अपने नाम स्थान-स्थान में क्यों बदलती रहती हैं? इस प्रकार के अनेक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। इसका विद्वान् स्वयं ही तर्क करके, विवेक के साथ उत्तर ढूँढ सकते हैं।

प्रिय बंधुओ! यह कौन-सी माता जी हैं हम नहीं जानते! माता तो ममता में भरकर अपने पुत्र-पुत्रियों को जन्म देती है, पालन-पोषण करती है, उन्हें होनहार बनाती है। भला वह क्योंकर किसी के भी

शरीर में घुसकर बैठ सकती है? जन्मदात्री माता तो ऐसा नहीं करती।

पृथ्वी माता—जो रोटी-कपड़ा-मकान देती है, भोजन की सब सामग्री प्रदान करती है, कभी कुछ लेने की इच्छा नहीं करती—वह तो देवी है। भला पृथ्वी माता किसी के शरीर में घुस सकती है? कभी नहीं, क्योंकि इतनी बड़ी विशाल पृथ्वी छोटे-से शरीर में कैसे समा सकती है! जड़ होने के कारण पृथ्वी कभी सवाल-जवाब नहीं कर सकती। जड़ में ज्ञान नहीं होता!

वेदमाता अर्थात् ज्ञानमाता अर्थात् परमपिता परमात्मा। सबकी जननी—वेदमाता=ईश्वर। जो सर्वव्यापक है, जिसका ज्ञान पाने से मानवमात्र का उद्धार होता है, वह भगवान 'माता' क्यों बनेगा? सर्वान्तर्यामी होने से वह तो पहले से ही हम आत्माओं के अंग-संग है। भला उस सर्वव्यापक परमपिता परमात्मा का अवतरण कैसे हो सकता है? ईश्वर दो तो हो नहीं सकते। एक तो पहले से ही, सदा से आत्मा के भीतर-बाहर विद्यमान है तो उसका दूसरा अवतरण इस शरीर में कैसे हो सकता है?

इससे यह प्रमाणित होता है कि शरीर में किसी भी माता का अवतरण या प्रवेश नहीं होता—नहीं हो सकता! ये सरासर फ़िज़ूल की बातें हैं। अब जो अभी भी इसको सच मानते हैं कि—माता शरीर में आती है—प्रश्नोत्तरी करती है—उनसे ही हम यह पूछना चाहेंगे कि यह कौन-सी माता है जो उनके शरीर में प्रवेश करती है?

प्रभु में श्रद्धा करनेवाले भक्तजनो! इस बात को गाँठ बाँधकर रखें कि एक शरीर में केवल एक ही आत्मा का वास होता है जिससे शरीर के व्यवहार होते हैं। किसी अन्य की आत्मा इस शरीर में कभी प्रवेश नहीं कर सकती। मुक्त आत्मा भी चाहे तो ईश्वर की व्यवस्था को भंग नहीं कर सकती। मुक्तात्मा ब्रह्माण्ड में स्वेच्छा से कहीं भी भ्रमण कर सकती है, परन्तु शरीर में घुसना, घुसकर बैठना, प्रश्नों के उत्तर देना कभी नहीं हो सकता।

सच तो यह है कि ऐसे पाखंड करके लोगों को 'माता के जागरण' करवाने की दूकानदारी का विस्तार किया जाता है। इस बहाने तर माल उड़ाने और लोगों को ठगने की क्रिया चालू रहती है। धर्म

के नाम पर ऐसी ठगबाज़ी की पोल खोलनी चाहिए, ताकि धूर्त लोगों से सच्चे भक्तों की आस्था न टूटे।

कुछ देर बाल खोलकर शरीर झुलाने से मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है, शरीर में कंपन होने लगता है, भक्तिन अपने-आप कुछ भी बड़बड़ाने लगती है। झूमना, बाल बिखेर देना—ये भीड़ जुटाने के ढोंग हैं। इतना तो सत्य है कि किसी माता का हमारे शरीर में प्रवेश नहीं हो सकता।

यह सरासर धूर्त लोगों की चालबाज़ियाँ हैं। यह उनका धंधा बन गया है। नई-नई बातों से साधारण लोगों को जैसे-तैसे लूटना उनका व्यवसाय हो गया है। धन-दौलत की लालसा ने इन्सान को शैतान बना दिया है। इन पाखंडों से दूर ही रहें।

अंधविश्वास : 59 : सिद्ध योगी जब चाहें रूहों को बुला सकते हैं!

निर्मूलन : यह भी पोपलीला है। इस पोपलीला को मैंने स्वयं देखा है। सब झूठ है, बकवास है, इसमें रत्ती-भर भी सचाई नहीं। ये सब धन ऐंठने के पाखण्ड हैं। ऐसा तमाशा आपने भी देखा होगा—

मेज़ पर या काँच की टेबल पर काँच का ग्लास उल्टा रखा जाता है। तीन-चार लोग ग्लास को अँगुली लगाते हैं। जो रूहों को बुलाने का कार्य करते हैं वे लगातार कुछ पढ़ते हुए किसी की आत्मा का आह्वान करते हैं या किसी विशेष आत्मा को बुलाते हैं कि इस ग्लास में आ जाओ। इधर ग्लास पर जो लोग उँगलियाँ धरे होते हैं उनके हाथों में हरकत आती है; ग्लास हिलने लगता है और किसी भी दिशा में खिसकने लगता है।

[ग्लास पर धरे हाथ या उँगलियाँ कभी स्थिर नहीं रहते—कंपन होता ही रहता है। कंपन (Vibration) हो और थोड़ा-सा भी हाथ हिले तो ग्लास तो हिलने ही लगेगा। एक बार वह ग्लास हलचल (Motion) में आया तो आगे बढ़ता जाता है।]

पहले से ही गिलास के नीचे Plain Paper (सादा कागज़) रखा जाता है जिस पर चारों ओर स्याही से कई खाने बनाकर 'हाँ-ना, कुछ-कुछ, संभव, असंभव, शीघ्र, धीमा' लिखा होता है। उसके

ऊपर ग्लास रखते हैं। जिस भी दिशा (Direction) में ग्लास चले और रुके, खाने में लिखे-अनुसार बूझा जाता है कि जो कुछ पूछा गया है उसी का उत्तर मिला है।

[जब ग्लास हाथों की हरकत से हिलता है तो जिन लोगों ने उँगली रखी है वे कुछ सँभल जाते हैं और इतनी देर में ग्लास कहीं भी रुक जाता है। जहाँ कागज़ पर 'हाँ' या 'ठीक' लिखा होता है, लोगों का ध्यान वहीं होता है और ग्लास को उसी Direction (दिशा) में हिलाया जाता है।]

बस यही कहानी है इन Median की जो इस प्रकार का काम करते हैं। दरअसल ऐसा कुछ भी नहीं है। इसमें अंधविश्वासी ही अधिक फँसते हैं। जिनके घर में कुछ ही समय पहले कोई मृत्यु हो गई है, वे भी अपनी दिवंगत आत्मा का हालचाल पूछने, ऐसे लोगों के चंगुल में फँस जाते हैं और इस प्रकार अपने धंधे के बारे में, घर की परेशानियों के बारे में अनेक प्रश्न लेकर जाते हैं और उसका उत्तर अच्छा ही सुनकर (देखकर) आते हैं। ये कमज़ोर लोगों की बातें हैं, निकम्मे लोगों की बातें हैं—अज्ञानी लोगों की बातें हैं—जिनको ईश्वर की न्यायव्यवस्था पर विश्वास नहीं है उन लोगों की बातें हैं।

मरने के पश्चात् जीव की रूह (आत्मा) ईश्वर की व्यवस्थानुसार रहती है। मृत जीव के पूर्व और वर्तमान कर्मानुसार ईश्वर उस आत्मा को नया शरीर प्रदान करता है। बिना शरीर के आत्मा कुछ भी नहीं कर सकती—यह निश्चित ज्ञान है। कोई भी आत्मा न भटकती है, न ही किसी के बुलाए आ-जा सकती है। एक्सीडेंट में मरनेवालों की आत्मा भटकती है—ऐसा सुना जाता है, परन्तु यह सरासर ग़लत है। अल्पज्ञान रखनेवालों के लिए दुर्घटना (Accident) से मरना इत्यादि बड़ी बातें लगती हैं, परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर के लिए यह सब सामान्य है। जन्म-जीवन-मृत्यु तो अनन्त यात्रा की कड़ियाँ हैं। यह यात्रा अनन्त है—मोक्ष-काल में आनन्द भोगकर फिर इसी यात्रा में जीव को आना पड़ता है।

याद रहे—रूहें भटकती नहीं हैं, न ही कब्र में दबी रहती हैं, न ही स्वेच्छा से घूम सकती हैं। जिन आत्माओं को शरीर नहीं मिला

है, वे सभी ईश्वर के आधीन सुषुप्ति अवस्था में होती हैं। केवल मुक्तात्माएँ ज्ञानपूर्वक ब्रह्माण्ड में ईश्वर के आनन्द में मग्न स्वेच्छा से कहीं भी भ्रमण कर सकती हैं। यही वैदिक दर्शन है।

अंधविश्वास : 60 : ब्राह्मण लोग श्राद्ध इसलिए करते-करवाते हैं कि दिवंगत आत्मा की सद्गति हो!

निर्मूलन : सबसे पहले यह समझना होगा कि श्राद्ध किसे कहते हैं, फिर इस भ्रान्ति का निवारण सरल हो जाएगा।

श्राद्ध कहते हैं—श्रद्धापूर्वक सेवा करने को। सेवा जीवित लोगों की ही हो सकती है, परन्तु ढोंगी-अज्ञानी ब्राह्मणों ने 'श्राद्ध' शब्द मृतकों के साथ जोड़ दिया है। इसी कारण 'पितृ पक्ष' के नाम से खीर-हलवा और दान-दक्षिणा लूटने का जुगाड़ बिठा लिया है। अब यह भ्रान्ति प्राय: लोगों में पाई जाती है कि श्राद्ध मरे हुए लोगों का होता है। आप ही बताइए, जो मर गए हैं भला उनकी सेवा किस प्रकार हो सकती है? मृतकों के नाम पर ब्राह्मण को भोजन इत्यादि कराना श्राद्ध कैसे हो सकता है? ब्राह्मण लोगों का सत्कार करना, भोजन खिलाकर वस्त्र इत्यादि दान में देना—यह तो ब्राह्मणों का श्राद्ध हुआ। पेट तो ब्राह्मणों का भरता है, वस्त्र तो वे स्वयं पहनते हैं, जूते स्वयं पहनते हैं, तो जो मर गए उनको भला कैसे पहुँच सकता है? मरकर कौन कहाँ जाता है—क्या श्राद्ध खानेवाले ब्राह्मणों को मालूम है? कोई नहीं बता सकता कि अमुक व्यक्ति ने अब अमुक स्थान पर जन्म लिया है। यदि मृतक को अनेक प्रकार के रोग थे तो क्या ब्राह्मण वे दवाइयाँ खाकर उस दिवंगत आत्मा को पहुँचा सकता है? अगर ब्राह्मण कहे कि दिवंगत आत्मा स्वर्गवासी हो गया है तो क्या स्वर्ग में रह रहे अर्थात् नया जन्म लेकर सुखी जीवन बिता रहे व्यक्ति को क्या मालूम कि उसके नाम पर किसने खा लिया? क्या उसे खाने-पीने को नहीं मिलता जो इसे यहाँ खिला रहे हैं?

ये मरे हुओं का श्राद्ध खानेवाले, जो अपने-आपको ब्राह्मण समझते हैं, वास्तव में ये लोग पेटभरू बामण होते हैं। ब्राह्मण कभी जाति से नहीं होता, कर्म से होता है। कर्म मूर्खों-जैसे और नाम पंडित रखने से कोई पंडित नहीं हो जाता। धोती-कुर्ता पहनने से कोई ब्राह्मण

नहीं हो जाता। पेटभरू बामणों को खुद मालूम नहीं कि ब्राह्मण किसे कहते हैं, मंत्र किसे कहते हैं, वेद क्या हैं, शास्त्र क्या हैं, कितने धर्मग्रन्थ हैं। जिन्होंने कभी कोई धर्मशास्त्र देखा तक नहीं, सुना नहीं, पढ़ तो सकते ही नहीं, जिन्होंने कभी स्वाध्याय किया ही नहीं, आप उन्हें ब्राह्मण कैसे मानते हैं ?

माथे पर लाल-पीला या काला-सफेद तिलक लगाने से या कुछ अधूरे मंत्र याद कर लेने से कोई पंडित या ब्राह्मण नहीं कहाता।

सत्य धारण करके प्रीतिपूर्वक अपने बुजुर्गों की सेवा करना ही सच्चा 'श्राद्ध' है। माता-पिता-गुरु-अतिथि-साधु-संत—इनकी सेवा जीते-जी होती है। श्राद्ध उन ब्राह्मणों का होना चाहिए जो सदा ब्रह्म (ईश्वर) में विचरते हैं, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, वेद तथा आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं। जिनका जीवन यज्ञमय होता है, जो परोपकार की भावना से व्यवहार करते हैं, उपदेश-प्रवचन देते हैं, अपने यजमानों की ख़बर रखते हैं, यजमानों के यहाँ यज्ञ इत्यादि शुभ कर्म कराने जाते हैं, स्वयं पढ़ते हैं तथा औरों को भी ईश्वर की अमृतमयी वाणी 'वेद' का पाठ पढ़ाते हैं, जो सत्यवादी हैं, जिनकी कभी दूसरों के माल पर बुरी नीयत रखने की प्रवृत्ति नहीं होती, धन की लालसा नहीं होती, जिनका जीवन संयमित होता है, जिनका क्रोध पर नियंत्रण होता है, जो काम-वासना से दूर रहते हैं—इस प्रकार के शुभकार्य करनेवाले को ही ब्राह्मण मानना चाहिए, जिनका आहार-विहार सात्त्विक होता है।

आत्मज्ञानं समारंभस्तितिक्षा धर्म नित्यता।
योऽर्थानपकर्षन्ति सः वै पंडित उच्यते।। —*विदुरनीति*

ऐसे ब्राह्मणों का श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। मरे हुए लोगों के नाम पर पोप पंडितों का श्राद्ध करना या करवाना घोर पाप है। इस पापकर्म से बचें और औरों को भी बचाएँ। दान-दक्षिणा देना पुण्यकर्म है, परन्तु दान भी सुपात्र को ही देना चाहिए—कुपात्र को देना महापाप है।

अंधविश्वास : 61 : देखे-सुने का विश्वास तो करना ही पड़ता है। मन की भावना सच्ची है तो इसे अन्धविश्वास नहीं कहते!

निर्मूलन : विश्वास करना न करना यह बुद्धि निर्णय करती है। मन की भावना सच्ची है या झूठी, इसका भी निर्णय बुद्धि ही कर सकती है। ज़रा सोचें—आपने सुना कुछ और देखा कुछ है तो क्या उस पर विश्वास करेंगे? मूर्ति में आपने सच्चे मन से भावना बना ली कि यही ईश्वर की मूरत है। वही मूर्ति हाथ से छूटकर टूट गई तो आपकी भावना की सचाई कहाँ गई? मूर्ति के साथ आपके भगवान जी भी टूट गए। सचाई यही है कि वह मूर्ति भगवान की नहीं थी, किसी कलाकार की रचना-मात्र थी। ऐसी भावना किसी काम नहीं आती!

सचाई वही है—सत्य वही है जब आपका मन, बुद्धि और आत्मा तीनों एकमत हों। मन कुछ कहे, बुद्धि दूसरी बात कहे और आत्मा की और कुछ जानकारी हो तो वहाँ संशय उत्पन्न होता है, और जहाँ भी संशय हो वहाँ तर्क से काम लेना आवश्यक है, धर्मग्रन्थों का सहारा लेना परम आवश्यक है। अंतिम प्रमाण ईश्वरकृत वेद हैं। वेद ही स्वत:प्रमाण हैं। वेद का निर्णय अंतिम निर्णय जानना चाहिए। जब तक संशय रहेगा तब तक निर्णय नहीं कर सकते! जो ईश्वर ने कह दिया (वेद द्वारा) वही सत्य है।

मनुष्य स्वभाव से अल्पज्ञ है, सीमित ज्ञानवाला है। हमेशा भूलें करता है। सत्य जानकर भी भूलें करे तो वह पाप हो जाता है। अनजाने में भूल करे तो वह पाप होने पर भी क्षम्य है; वह जानबूझकर भूल करनेवाले पाप से कुछ कम स्तर का होता है।

जैसा कि आपने भ्रान्ति उठाई कि 'कहे-सुने का विश्वास करना ही पड़ता है', आपका तर्क है कि 'जब सिनेमा देखते-सुनते हैं उसका तो पूर्ण विश्वास करना चाहिए!' आश्चर्य की बात है कि आपने सिनेमा को ही धर्मग्रन्थ मान लिया। सिनेमा तो मनोरंजन का एक साधन है। उसमें कुछ बातें सही सिखाई जाती हैं तो कुछ बातें अनहोनी और झूठी भी मिलाई जाती हैं। सिनेमा के पर्दे पर तो भगवानों की पत्नियाँ भी आपस में लड़ती हैं, ईर्ष्या करती हैं—जानबूझकर भक्तों को कष्ट देती हैं और उनके पतिदेव ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी कुछ नहीं कर पाते। क्या ऐसा संभव है? ये सब भगवान और उनकी स्त्रियाँ काल्पनिक

हैं। उनके वार्तालाप बनावटी होते हैं। सिनेमा की फ़िल्म तो shooting करके फिल्माई गई है। उस पर विश्वास करके अंधविश्वासी बन जाना कहाँ की समझदारी है ?

इस प्रकार के कहे-सुने-देखे का भी भरोसा नहीं करना चाहिए। आँखें-कान सब धोखा खा सकते हैं। बुद्धिपूर्वक तर्क से विचारें—प्रमाण ढूँढने का प्रयास करें। ईश्वर के बारे में तो सूक्ष्मबुद्धि (विवेक) से काम लें। गुरु से पूछें। कहीं भी समाधान न हो सके तो अंतिम प्रमाण वेद हैं—जो वेद में लिखा है वही सत्य है। अन्धविश्वास को त्यागें।

अंधविश्वास : 62 : गुरु ही सच्चा 'नाम-दान' देते हैं!

निर्मूलन : यह बिल्कुल मिथ्याज्ञान है! ईश्वर के नाम को कुछ सिक्कों में बेचना नामदान नहीं हो सकता। नामदान देने में उस गुरु का क्या अभिप्राय है, उसे अवश्य पहले से ही जान लेना चाहिए। परमपिता परमात्मा का नाम छुप-छुपाकर नहीं दिया जाता। जो कर्म चारदीवारी के अंदर छुपकर करते हैं—औरों से बचकर करते हैं—नाम के बदले दाम माँगते हैं, तो समझ लेना चाहिए कि कहीं गड़बड़ अवश्य है।

परमपिता परमात्मा का निज नाम 'ओ३म्' है—यह सभी जानते और मानते हैं। इन सब गुरुओं को भी पता है और उनके चेलों को भी पता है। फिर दुनिया से छुपाकर नामदान देने की क्या आवश्यकता पड़ गई ? अनपढ़ हो या कोई विद्वान् हो, ईश्वर का नाम सभी किसी न किसी रूप में लेते ही हैं।

नामदान आजकल फैशन-सा चल पड़ा है। गुरु-शिष्य परम्परा जो पहले हुआ करती थी वह तो लगभग खत्म हो गई है। अभी भी कुछ ऐसे गुरुकुल हैं जहाँ गुरु-शिष्य परम्परा चली आ रही है। बाकी तो गुरु-चेले का खेल चल रहा है। गुरु चार-पाँच शब्द चेले को देता है—याद कराता है और कहता है कि किसी को नहीं बताना, नहीं तो गूँगे हो जाओगे। बेचारा चेला भी क्या करे! गुरु के इस कहे को मान लेता है, नहीं तो गूँगा हो जाएगा—इसी डर में डरता रहता है। दूसरा गुरु भी तो नहीं कर सकते, नहीं तो सर्वनाश हो जाने की संभावना है—

ऐसा भी गुरु सिखा देते हैं। तीन-चार-पाँच शब्दों को दुहराना-रटना-जपना कोई नाम-स्मरण करने की विधि नहीं है।

गुरु-शिष्य परंपरा में तो जब बालक पढ़ने के लिए गुरु के पास गुरुकुल में आता है तो गुरु अपने शिष्य को गायत्री मंत्र का अर्थ बताकर जपने के लिए कहते थे। गायत्री मंत्र ही गुरुमंत्र होता है जिसमें प्रभुवर से सद्बुद्धि की याचना की गई है कि वह सन्मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए सदा प्रेरित रहे। आजकल गायत्री मंत्र तो नामदान में नहीं देते (शायद चेला बुद्धि पाकर सब-कुछ जान न ले) केवल कुछ शब्द देते हैं—ओंकार...इत्यादि!

कई गुरु तो अपने चेलों को कुछ नाम (7-8) बताते हैं और कहते हैं कि इनमें से जो भी नाम आपको अच्छा लगे—सरल लगे, उसको अपना लो, याद कर लो और जपते रहो। नाम देने की यह नई विधि चल पड़ी है।

वास्तव में नाम तो ईश्वर का ही होता है। गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर ईश्वर के अनेक और असंख्य नाम हैं। कोई किसी भी नाम से ईश्वर के नाम को स्मरण कर सकता है, परन्तु ईश्वर का सर्वप्रिय निज नाम वेद और धर्मशास्त्रों के अनुसार 'ओ३म्' है क्योंकि इसी 'ओं' नाम में ईश्वर के सभी गुण-कर्म-स्वभावों का समावेश होता है, अतः 'ओं' नाम का जाप करना सर्वश्रेष्ठ है। केवल नाम रटने से कोई लाभ नहीं होता। नाम-स्मरण के साथ-साथ ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का भी चिंतन करना चाहिए और जितना हो सके वे गुण-कर्म-स्वभाव अपने निजी जीवन में व्यवहार में लाने का प्रयास करना चाहिए। आचरण करने से ही वह नाम लेना सफल हो पाता है। यही नाम की कमाई है। नाम केवल जपने के लिए नहीं होता, अपितु उस पर चलने के लिए ही होता है।

उदाहरण के तौर पर—ईश्वर दयालु-कृपालु है, न्यायकारी है। अब हम अपने-आपको टटोलें कि क्या हम भी दया करते हैं? बेसहारे को सहारा देते हैं? दीन-दुःखियों पर दया करते हैं? क्या किसी की बात सुनकर उनके दिल का बोझ हल्का करते हैं? किसी को ग़लत रास्ते पर चलने से रोकते हैं? कोई परोपकार करते हैं? दुष्टों को

सज़ा दिलाते हैं? समाज की कुरीतियों को कम करने के लिए कोई कदम उठाते हैं? इस प्रकार अगर हम करते हैं तो हम ईश्वर के दयालु-कृपालु-न्यायकारी का अर्थ समझते हैं, और अगर नहीं तो समझना चाहिए कि हम केवल नाम रटते हैं, और कुछ नहीं करते!

गुरु द्वारा नामदान देने की प्रथा से किसी शिष्य या चेले-चेली का भला नहीं हो सकता। प्रभु का स्वरूप पहचाने बिना, उसके नाम को रटना वैसे ही है जैसे घर में पिता के होते हुए उसे बाजारों में ढूँढना। पाखंडी गुरु तो नामदान की ओट में अपने को मठाधीश बना लेते हैं और चेली-चेले घर-बार लुटाकर नाम रटते रह जाते हैं। ऐसे गुरु बनाने से बेहतर है कि चेले 'निगुरे' रहें। ईश्वर का साक्षात्कार करना है तो सत्य-पथ अपनाना होगा। सत्य-असत्य की पहचान के लिए आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय करना होगा, तभी नाम-स्मरण की महिमा का हमें बोध होगा।

अंधविश्वास : 63 : मांस खाना पाप है, तब भी अनेक लोग खाते हैं! कुरान-बाइबल में तो कहीं नहीं लिखा कि मांस खाना पाप है। संसार में 90% लोग मांसाहारी हैं तो वे सभी पापी नहीं हो सकते!

निर्मूलन : सभी मत-मज़हब-पंथ के लोग मानते हैं कि ईश्वर एक है और हम सब उस परमपिता परमात्मा की संतानें हैं। हैं ना! शरीर की रचना ईश्वर करता है। शरीर साधन है आत्मा का! मनुष्य योग और भोग के लिए जन्म लेता है और अन्य प्राणी (पशु-पक्षी इत्यादि) भोग-योनि के हैं अर्थात् भोग के लिए संसार में आते हैं।

हिंसक पशु को तो ज्ञान नहीं, इसलिए प्रकृति ने उसे दूसरे जीवों को मारकर पेट भरने की स्वतंत्रता दे दी, किन्तु मनुष्य को दाँत ही ऐसे ही दिये हैं जो मांसाहारी जीवों के नहीं हैं। उसका स्वभाव दयालु, उसका भोजन अनाज और फल तथा पालतू पशुओं का दूध बनाया है। तभी तो प्रभु ने मनुष्य को मांस-भक्षण से कठोरतापूर्वक दूर रहने के निर्देश दिये। यजुर्वेद में मांस-भक्षण के निषेधक मंत्रांशों पर विचार तो करें—

1. **यजमानस्य पशून् पाहि**—1/1
2. **इमं मा हिंसीरेकशफं पशुम्**—13/48
3. **इमं साहस्रं शतधारमुत्सं''''मा हिंसीः**—13/49
4. **गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध**—12/51

धर्म की परिभाषा है कि 'जो व्यवहार हम दूसरों से चाहते हैं वैसा हम भी करें'। हम नहीं चाहते कि कोई हमारे घर से चोरी करे, अतः धर्म तो यही है कि हम भी किसी की चोरी नहीं करें। हम नहीं चाहते कि हमारे बच्चों को कोई मारे—काटकर खा जाए। तभी तो धर्म कहता है कि हम भी किसी के बच्चों को न मारें और उनको काटकर न खाएँ! हम चाहते हैं कि हम सुख-चैन से रहें तो फिर हमें भी चाहिए कि औरों को सुख-चैन से रहने दें!

अब बात है मांस इत्यादि खाने की! क्या पशु-पक्षी ईश्वर की संतानें नहीं हैं? क्या उनके अंदर आत्मा नहीं है? क्या उनके बच्चे उनके लिए प्यारे नहीं हैं? कोई बदमाश हमारे बच्चे को हमारी आँखों के सामने मारे तो क्या हम चुप रह सकते हैं? बस यही स्थिति बेचारे मूक जानवरों की है। पशु-पक्षियों इत्यादि की योनि भोग-योनि है—यह उनके पापकर्मों का फल है जो उनको भुगतना है। अगर मनुष्य (मनुष्य कहते हैं मननशील को) इन पशुओं को मारकर खाता है तो वह एक तो ईश्वर की न्याय-व्यवस्था को भंग करता है जो सबसे बड़ा पाप-कर्म कहाता है; दूसरा, उनको उनके माँ-बाप के सामने पकड़कर मारना, चीरना, बोटी-बोटी काटना तो कसाई-कर्म है। उनके माँ-बाप के हृदय से कितनी बद्दुआ निकलती होगी? तीसरी बात, किसी की लाश को घर लाकर अपने बर्तनों में पकाना—मांस-हड्डियों को रक्त-समेत खाना—क्या ये मनुष्यता के लक्षण हैं? चौथी बात—जितना हम अपने बच्चों को प्यार करते हैं उनसे कहीं अधिक ये पशु-पक्षी अपने बच्चों से प्रेम करते हैं; किसी के प्रेम की हत्या करना घोर पाप है जो आप स्वयं अपने बच्चों के साथ करने जा रहे हैं। पाँचवीं बात—मनुष्य-शरीर मांस इत्यादि खाने के लिए नहीं बना है—हमारे शरीर की बनावट ऐसी नहीं है जो खूँखार जानवरों की होती हैं, जैसे शेर-कुत्ते-बिल्ली इत्यादि।

सभी जीवधारियों में हमारे-जैसी आत्मा है। जितनी भी योनियाँ हैं सबमें आत्मा अपने कर्मों के फलस्वरूप शरीर प्राप्त करती है। ईश्वर की कृपा से ही शरीर प्राप्त होता है। यह शरीर ईश्वर की अमानत है।

रही बात यह कि संसार में 90% लोग मांसाहारी हैं, तभी तो संसार में 90% लोग दुःखी रहते हैं क्योंकि मूक जानवरों की बद्दुआएँ लगती हैं। ईश्वर के सभी बच्चे हैं—क्या परमपिता चाहेगा कि उसकी सर्वश्रेष्ठ संतानें, अपने कमज़ोर भाई-बहनों को मारें और मरे हुए शरीर को पकाकर आपस में बाँटकर खाएँ? नतीजा—मनुष्य दोबारा मनुष्य-योनि प्राप्त नहीं कर सकता। जो किसी को प्यार नहीं कर सकता, वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं हो सकता!

अन्य मत-मजहब-पंथ में अगर मांस को भोजन कहा गया है और उसे खाने की अनुमति दी गई है तो ऐसा समझना चाहिए कि उनको 'धर्म की परिभाषा' मालूम ही नहीं है। तीन अंगुल की जुबान को तृप्त करने के लिए वे अपने धर्मग्रन्थों में कितनी मिलावट कर सकते हैं—ये स्वार्थी लोगों की मनोवृत्ति को दर्शाती है कि इन्सान कितनी हद तक गिर सकता है! इन धर्मग्रन्थों में कहीं तो लिखा है कि किसी भी जीव को मत सताओ—सबसे प्रेम करो—और कहीं इनको मारकर खाने को कहा है। एक ही पुस्तक में दो विरोधाभासी बातें लिखी हैं—निर्णय आप विद्वज्जन ही कर सकते हैं।

प्रेम अहिंसा के बिना असंभव है। हिंसा करके प्रेम जताना दोगलापन है—स्वार्थ की निशानी है—मुँह में राम और बग़ल में छुरी जैसी बात है।

मांसाहारी कभी सुख-चैन-शान्ति से नहीं बैठ सकता, यही कारण है कि आज विश्वभर में अशान्ति है, लड़ाई-झगड़े हैं। जैसा अन्न वैसा मन। मन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। अन्न भ्रष्ट है तो शरीर से कुकर्म ही होंगे। बुद्धि मलिन हो जाती है। कुबुद्धि के कारण ही संसार में सब ओर अव्यवस्था है, सभी एक-दूसरे से डरते हैं।

वैदिक धर्म ही सबको सत्य मार्ग दिखा सकता है। ईश्वर ने फल-फूल, अन्न-औषध सर्वश्रेष्ठ प्राणी 'मनुष्य' के लिए ही तो प्रदान

किये हैं कि अपने शरीर की रक्षा करो—अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करो! ईश्वर सबको सद्बुद्धि प्रदान करे! इत्योम्।

अंधविश्वास : 64 : फल-फूल-सब्ज़ियों में भी तो जान होती है! उनको खाने में पाप नहीं तो मांसाहारी भी पापी नहीं हैं!

निर्मूलन : इसमें कोई संशय नहीं कि शाक इत्यादि में भी जान होती है, किन्तु ज्ञान नहीं होता—सूखने, जलने, टूटने का दर्द नहीं होता। पत्तों की जान उनके गुण-अवगुण तक सीमित है, जैसे कपड़े में जान है अर्थात् कपड़ा मज़बूत है। यह गाड़ी जानदार है का तात्पर्य है कि गाड़ी में शक्ति है। इसी प्रकार सब्जी-भाजियों में जान होती है—मतलब साफ़ है कि सब्जी इत्यादि में पौष्टिकता विद्यमान है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि खाद्य पदार्थ जड़ होते हैं, इनमें आत्मा नहीं होती। जड़ पदार्थों में ज्ञान नहीं होता, अतः उनको काटकर खाने में कोई अधर्म नहीं है। ईश्वर ने वेदों के माध्यम से आज्ञा दी है कि फल-फूल, सब्ज़ियाँ-ओषधियाँ खानी चाहिएँ। गेहूँ-चावल-बाजरा-जुआर इत्यादि अनेक प्रकार के अन्न और दालें खाने के लिए ही परमपिता परमात्मा ने बनाए हैं।

पशु-पक्षियों में आत्मा होती है। उनको सताने से, काटने से, उन मूक प्राणियों को तकलीफ़ होती है—पीड़ा होती है, अतः किसी भी प्राणी को बिना वजह दंड देना पाप है—दुष्कर्म है। शरीर बेशक जड़ है, परन्तु शरीरी (शरीर में रहनेवाला आत्मा) तो चेतन है। शरीर आत्मा का काम करने (भोग करने) का साधन है। अतः मांसाहार करना सबसे बड़ा पाप है। ईश्वर-प्राप्ति का सबसे पहला कदम अहिंसा है अर्थात् सब प्राणीमात्र से प्रेम करना ही अहिंसा कहाती है।

अन्न-सब्ज़ियाँ इत्यादि प्राकृतिक नियमानुसार उगती हैं। बीज ज़मीन में बोते हैं। बीज बेजान होते हैं। परन्तु प्राकृतिक नियमानुसार उसे हवा-पानी इत्यादि प्राप्त होने से उसमें गुण आते हैं (जान आ पाती है) और बढ़ने लगते हैं—पकने लगते हैं, उनमें रासायनिक परिवर्तन (Chemical Reaction) आने लगता है। पृथिवी में अनेक द्रव-पदार्थ हैं जिनसे अन्न-सब्जियों आदि का निर्माण ईश्वर करता है। प्रकृति जड़ है, परन्तु ईश्वर के सान्निध्य से चेतन-सी लगती है।

वेदादेशानुसार इन सब्ज़ियों को काटकर-पकाकर खाना चाहिए जिससे मनुष्य-शरीर को तृप्ति और शक्ति मिलती है। याद रहे, अन्न-शाक-भाजियों में जान होती है (गुण-विटामिन इत्यादि) परन्तु आत्मा नहीं होती, अतः इनके खाने में कोई पाप नहीं है। अक्सर लोग दूध को पीने में आपत्ति करते हैं कि दूध गाय देती है अतः नॉनवेज होता है। यह भी बहुत बड़ी भ्रान्ति है। अक्सर पढ़े-लिखे लोग ही ऐसा कहते हैं। गाय का दूध उसके बछड़े के लिए होता है—माननीय बात है; परन्तु गाय का बछड़ा कितना दूध पी सकता है? गाय उससे हज़ार गुना अधिक दूध देती है। इतना दूध बछड़ा पी नहीं सकता और गाय का दूध उसके स्तनों से बाहर नहीं निकला तो गाय के लिए जान का ख़तरा है। अतः वेद में ईश्वर का आदेश है कि गाय का दूध पिया करें, अर्थात् गाय के दूध को निकालकर (बछड़े का पेट भरने के पश्चात्) पियें, जिससे गाय को भी दूध देने में आनन्द और आराम आवे और साथ-साथ मनुष्य-शरीर की भी पुष्टि हो सके। गाय का दूध तो मनुष्य के लिए अमृत है। यदि लोग इसको पाप समझें तो इससे बड़ी मूर्खता की बात क्या हो सकती है? भारतीय संस्कृति में इसीलिए गाय को माता का दर्जा दिया जाता है। जिस बच्चे की माँ का स्वर्गवास हो जाता है उसको गाय का दूध दिया जाता है, क्योंकि माँ के दूध के पश्चात् बच्चे का भोजन गाय का दूध ही अति सुपाच्य, पवित्र और उत्तम होता है।

वेद ईश्वरीय वाणी है और स्वतःप्रमाण है—अंतिम प्रमाण है। जो वेद में कहा है वही मनुष्यमात्र का धर्म है। वेद में जो आदेश है उसको मानना ही धर्म है।

पशुवध का निषेध है और भूमि से निकलनेवाली सब प्रकार की सब्ज़ियों को खाने का विधान है। अन्न-दूध से बनी मिठाइयाँ शक्तिवर्धक होती हैं। उनके स्थान पर केक (जिसमें अंडा होता है) इत्यादि खाना महापाप है।

अनेक लोग कहते हैं कि फल-पौधों में आत्मा होती है, तभी तो उनको छूने से वे सिकुड़ते हैं या कुम्हला जाते हैं और संगीत से पौधे इत्यादि झूमने लगते हैं। ये सब ठीक है परन्तु उनमें आत्मा मान

लेना ग़लत है। फूल-पौधों में बदलाव आना एक Chemical Reaction होता है जिसको अक्सर लोग अनुभूति (Feeling) समझने लगते हैं। आत्मा में Feeling अर्थात् अनुभव होता है—जड़ वस्तु में Feeling नहीं होता—इसको समझना चाहिए। साँस लेना और छोड़ना जो इन पेड़-पौधों में होता है, वह भी प्रकृति के नियमानुसार रसायन-क्रिया है। Co_2 और O_2 लेना-छोड़ना रसायन- क्रिया ही तो है। हरा टमाटर आप घर ले आओ, कुछ ही दिनों में पककर लाल, खाने योग्य हो जाता है—खट्टे से मीठा बन जाता है; ये सब Chemical Reaction होता है। यही तो उसकी जान है (गुण है)। इसमें आत्मा समझ लेना ग़लत है। क्लोरोफिल का गुण है कि वह Co_2 को ग्रहण करता है और O_2 को छोड़ देता है, इसको Science ने Prove किया है।

अंधविश्वास : 65 : शराब इत्यादि पीने में कोई पाप नहीं। दूसरे धर्मों में शराब पीना अच्छा समझते हैं!

निर्मूलन : मस्तिष्क को भ्रष्ट करनेवाले जितने भी पेय पदार्थ हैं या और कोई खानेवाले पदार्थ हैं, सब मनुष्य के लिए निषिद्ध हैं। ये सब थोड़ी मात्रा में औषध बनाने में काम आते हैं! शराब-चरस-गाँजा-अफ़ीम-गर्द-ब्राउन सुगर-तंबाकू इत्यादि अनेक पदार्थ हैं जिन्हें सीधा (Direct) खाने से मस्तिष्क के Cells मरने लगते हैं और जिसके कारण अनेक प्रकार के रोग पनपने लगते हैं। यही कारण है सभी मत-मतान्तरवाले इन नशीली चीज़ों से परहेज़ करने को कहते हैं।

कुछ संप्रदाय हैं जैसे Christian इत्यादि जिनमें मदिरापान को अच्छा मानते हैं क्योंकि इनके धर्माधिकारियों ने शराब पीने की छूट दी है। वे इसे पाप नहीं समझते क्योंकि Jesus Christ ने सबसे पहले जो करिश्मा दिखाया था वह था पानी को शराब में बदलने का। अतः ईसाई लोग शराब को पीना-पिलाना शुभ समझते हैं। दुनिया बदल रही है। लोग समझने लगे हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। विश्व-प्रसिद्ध डॉक्टर भी शराब पीने की सलाह नहीं देते, अपितु इससे बचने को कहते हैं। ईसाई संप्रदाय को छोड़ बाकी सब मत-मजहबवाले

ं मानते। आज के युग (Modern Generation)
ौकिया पीने लगे हैं। जिसका दुष्परिणाम सभी
शराब को पीते हैं, फिर शराब पीनेवाले को पीती
ुजड़ जाते हैं। घरों की बरबादी का कारण यही
में शराबखाने बने हैं उनसे पूछकर तो देखिए!
ाब घर में रहनेवालों की नींद हराम कर रखी
ाहीं होता, परन्तु शराब की लत है कि छूटती

को अच्छा समझते हैं उनसे हम कुछ प्रश्नों के
ाते हैं—
त शिशु को दूध के स्थान पर शराब क्यों नहीं
?
ाच्चों से छुपाकर क्यों पीते हैं?
स्त्री-माँ-बाप को क्यों नहीं पिलाते?
मस्जिदों में शराब को क्यों नहीं पीते?
ुरु-आचार्यों के सामने क्यों नहीं पीते?
प्लेस में क्यों नहीं पीते?

जो ... ंका, भय और लज्जा उत्पन्न हो वह वस्तु
वे सभी ... ा, अर्थात् वह धर्म के विरुद्ध होती है, उसको
लोग हैं ... द्ध है। इसी को पाप कहते हैं। यही धर्म की
हुआ है। ... ए होता है। चोरी करना पाप है क्योंकि चोरी
बातों पर ... ं शंका होती है कि कोई देख तो नहीं रहा!
हैं। ... टाई होगी, अतः भय लगता है; और जब
चेत ... ाए तो उसे लज्जा आने लगती है। शंका,
निर्माण ई ... समझ लो वह पाप है—अधर्म का काम
सृष्टिक्रम

दिशा में ह ... परिभाषा है कि 'जैसा व्यवहार आप दूसरों
आते हैं, ... ं भी करो'। क्यों जी! कोई चाहता है कि
कारण होते ... ? कोई चाहता है कि बलात्कार हो? कोई
नियम भी ... में चोरी हो? कोई चाहता है कि नशे में धुत्त

कोई व्यक्ति आपके घर में प्रवेश करे?—जी नहीं! अत: इस प्रकार के काम हमें भी नहीं करने चाहिएँ!

शराब पीनेवालों की बुद्धि भ्रष्ट होने लगती है—स्मरण-शक्ति का ह्रास होता है—अनेक रोग घर कर लेते हैं—सगे-संबंधियों से रिश्ते-नाते टूट जाते हैं—अनेक बार लड़ाई-झगड़े हो जाते हैं—घर की बरबादी होती है—पीनेवाला व्यक्ति बेशर्म हो जाता है—कुकर्म कर बैठता है—बाद में पश्चात्ताप करता है—उसके संस्कार दूषित होने लगते हैं—पीने के लिए उधार लेता है—झूठ बोलता है—उल्टे-सीधे काम करने लगता है—हवालात की हवा भी खानी पड़ती है—क्रोधित जल्दी होता है—हत्या करने से नहीं डरता—अपनी ही हानि कर बैठता है। जितने कुकर्म शराब पीने के पश्चात् होते हैं सभी जानते ही हैं। समाचारपत्र में हर रोज़ हम पढ़ते ही हैं।

उपर्युक्त बातों पर ध्यान देंगे तो ऐसे कुकर्मी वहीं पाएँगे जिनके घरों में शराब को अच्छा माना जाता है। जिनके संप्रदाय में मदिरापान की छूट है उनके साथ भी इसको मिलाकर स्वयं ही परीक्षण कर लें कि क्या ये अवगुण उनमें अधिक हैं कि नहीं?

मनुष्य का चरित्र-निर्माण सात्त्विक आहार-विहार से होता है। जितना-जितना दूषित अन्न-पेय होगा, उतना-उतना मनुष्य मनुष्यता से गिरता जाएगा। खान-पान अच्छा है तो सब-कुछ अच्छा होता है। मनुष्य-देह भगवान का दिया मंदिर है, उस प्रभु की प्रदान की हुई अमानत है। इसे ईश्वर के काम लाएँ ताकि आवागमन के चक्कर (जन्म-मरण) से बच जाएँ! अपना जीवन सफल बनाएँ।

अंधविश्वास : 66 : प्राय: सभी ऐसा कहते हैं कि हम ईश्वर के हाथ की कठपुतलियाँ हैं। सब-कुछ ईश्वर ही करता-कराता है—हम कुछ नहीं कर सकते। उसकी मर्ज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता!

निर्मूलन : आत्मा अल्पज्ञ है, अत: हमारे मानने या न मानने से किसी की संतुष्टि नहीं हो सकती। जो व्यक्ति ईश्वर में पूर्ण विश्वास करता है—ईश्वर के समर्पित होता है, उसका आत्मा सत्यासत्य को जाननेवाला होता है।

(1) सर्वनियन्ता और सर्वशक्तिमान् होने से हर कोई इस मुहावरे का प्रयोग करने लगा है कि उस (प्रभु) की मर्ज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। तनिक गंभीरता से सोचें—क्या हम पत्ते को नहीं हिला सकते? हम तो पेड़ के पेड़ उखाड़कर फेंक देते हैं, फिर पत्ते हिलानेवाली बात तो झूठी हो जाती है! (निवारण आगे देंगे)

(2) जब हम अच्छा काम करते हैं तो अपनी तारीफ़ करते हैं और जब कोई कार्य ठीक नहीं होता तो ईश्वर पर दोष लगाते हैं कि जो प्रभु की इच्छा! इसका तात्पर्य यह हुआ कि हम तो अच्छा कार्य करते हैं, वह प्रभु ही हमारे कामों में बाधा डालता है और बना-बनाया कार्य बिगाड़ देता है और हम उस कार्य में असफल हो जाते हैं। (निवारण आगे देंगे)

(3) ईश्वर की हम सब कठपुतलियाँ हैं तो फिर अच्छा-बुरा वही कर रहा है। हमको कुछ भी करने की चिंता करनी ही नहीं चाहिए! हमारा व्यापार, बैंक-बैलेंस, घर का खाना-पीना सब वही करेगा। है ना? (निवारण आगे देंगे)

जो लोग इस प्रकार की भ्रान्तियों को मस्तिष्क में पाले हुए हैं, वे सभी नास्तिक लोग हैं—निकम्मे लोग हैं या फिर स्वार्थी प्रवृत्तिवाले लोग हैं जिन्होंने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए साधारण लोगों को बहकाया हुआ है। लोग आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय तो करते नहीं हैं—कही-सुनी बातों पर विश्वास कर लेते हैं और पोपों की पोपलीला में फँस जाते हैं।

चेतन सत्ताएँ दो हैं—(1) ईश्वर, और (2) जीवात्मा। सृष्टि-निर्माण ईश्वर करता है तथा प्रकृति के नियम बनाता है जिसके अनुसार सृष्टिक्रम चलता रहता है। हवा का जहाँ दबाव कम हो जाता है उसी दिशा में हवा चलती है और झाड़ के पत्ते हिलते हैं। इसी प्रकार तूफ़ान आते हैं, वायु-चक्र बनते हैं, समुद्री तूफान आते हैं। इन सभी में अनेक कारण होते हैं। ये प्राकृतिक विपदाएँ आती रहती हैं। इनमें प्रकृति के नियम भी चलते हैं और साथ-साथ मनुष्य के कर्म भी होते हैं। जो

प्राकृतिक नियमों को तोड़ते हैं तो परिणामस्वरूप, अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ता है। रही बात पत्ता हिलानेवाली, तो छोटा बच्चा भी पत्ता हिला सकता है—पत्ता तोड़ सकता है—पत्ते को कुचल सकता है। मनुष्य स्वतंत्र प्राणी है, उसे कर्म करने की छूट है, वह स्वतंत्र है। वह करे, नहीं करे या उल्टा करे, यह मनुष्य की बुद्धि पर निर्भर है। पत्ता ईश्वर की मर्ज़ी से हिलता है—नहीं हिलता—फ़िज़ूल की बातें हैं। जो अन्धश्रद्धालु और अन्धविश्वासी लोग इसको बहुत बड़ा मुद्दा समझते हैं, उनकी बुद्धि पर तरस आता है।

यदि करने-करानेवाला ईश्वर है तो कर्मफल भी उसी को भोगना चाहिए। जो कर्म करता है, फल उसी को मिलता है—यही विधि का विधान है। कर्म करे ईश्वर और उसका फल मनुष्य को भुगतना पड़े—यह तो अन्याय हुआ। जब कोई काम अच्छा होता है और जिसका अच्छा फल प्राप्त होता है तो हम ऐसा कहते हैं कि यह काम मैंने किया है। यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु जब कोई काम बिगड़ जाता है, परिणाम उल्टा मिलता है तो हम अपने को दोष नहीं देते, अपनी ग़लतियों को स्वीकार नहीं करते—अपितु कहते हैं कि जो प्रभु की इच्छा वही हुआ! सब दोष प्रभु के माथे थोप देते हैं और अपनी बदनामी होने से बचने का प्रयास करते हैं। मनुष्य कितना स्वार्थी है! ईश्वर को भी नहीं छोड़ता। परमपिता परमात्मा हमेशा सत्कर्म-निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देता रहता है। वह कभी किसी को ग़लत मार्ग नहीं दिखाता। हर बार सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा वेदों द्वारा मार्गदर्शन करता आया है। इतना अवश्य है कि मनुष्य जितना जैसा कर्म करता है, परमपिता परमात्मा उतना और वैसा ही फल प्रदान करता है। वह किसी से भी पक्षपात नहीं करता, इसीलिए तो उसको न्यायकारी कहते हैं। अपने दोष प्रभु पर मढ़ देना पाप है—दोष है—जिसकी सज़ा अवश्य मिलेगी।

अगर हम सभी प्राणी ईश्वर की कठपुतलियाँ हैं तो ईश्वर हमें इस प्रकार का आदेश क्यों देता है—**उत्तिष्ठत, जाग्रत** उठो, जागो! परमात्मा हमें कर्म करने की प्रेरणा देता है। अच्छे कर्म करने की प्रेरणा देता है। अगर वही करता-करवाता है तो हमें कभी भी कुछ नहीं

करना चाहिए। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने से क्या लाभ? धन-दौलत इकट्ठा करने का क्या लाभ? कोई कुछ भी करे हमें उनको शिक्षा नहीं देनी चाहिए। चोर चोरी करे तो उसे पकड़ना नहीं चाहिए। कोई हत्या करे तो कुछ नहीं करना चाहिए। कोई हमारे बच्चों को मारे-पीटे, बेइज्जत करे, कुछ नहीं करना चाहिए, क्योंकि सब-कुछ ईश्वर ही करता-करवाता रहा है। हम उसके कार्य में बाधा क्यों डालें? ईश्वर जो करता है ठीक ही करता है! क्यों ठीक है ना?

ऐसी विचारधारा अवैदिक है। सत्य यही है कि कर्म करने में मनुष्य पूरी तरह स्वतंत्र है। उसके फल के लिए वह पूरी तरह पराधीन है। हम कठपुतलियाँ केवल इन अर्थों में हैं कि हम क्षणभंगुर हैं, अल्पजीवी हैं, किन्तु अपने छोटे-से जीवन में हम इतने महान् कर्म कर सकते हैं कि ईश्वर के अमृतपुत्र कहला सकते हैं। हमें अपनी सोच बदलनी चाहिए, ताकि हम कठपुतलियाँ बनकर अपने अनमोल जीवन नष्ट न करें।

अंधविश्वास : 67 : घर-दूकान-कार्यालय इत्यादि के द्वार पर नींबू-मिर्च या घोड़े की पुरानी नाल, पुरानी टूटी-फूटी चप्पल टाँगनी चाहिए, ताकि किसी की नजर न लगे!

निर्मूलन : इस बात में इतना ही सत्य है कि नज़रें मैली भी हुआ करती हैं, नज़रें घायल भी कर देती हैं, नज़रें डाँटती भी हैं और प्यार भी करती हैं, किन्तु उन्हें निष्प्रभाव करने के लिए मकान-दुकान या वाहन पर टूटे जूते लटकाने की आवश्यकता नहीं है। नज़रें केवल व्यक्ति के मन का बिम्ब प्रकट करती हैं। बुरी नज़रों से लुकने-छिपने की जरुरत नहीं है, क्योंकि बुराई तो मन में है जो नज़रों में झलकती है। किसी की नज़रों से आप सावधान हो सकते हैं कि कौन व्यक्ति आपसे जलता है। नींबू-मिर्च मकान के बाहर लटकाने से आप किसी के मन की बुराई नहीं निकाल सकते। यदि टूटा-पुराना चप्पल लगाने से किसी की बुरी नज़र नहीं लगती तो नया जूता लगाना और भी अच्छा है, उससे तो कभी नज़र नहीं लगेगी! करके तो देखिये, दूसरे ही दिन जूता ग़ायब हो जाएगा। पुराना ज़ूता कौन लेगा? किसी काम नहीं आता।

बुरी नज़रों का तो धन्यवाद करना चाहिए कि उनके सहारे आपने ईर्ष्यालु और दुश्मन के मन की बात भाँप ली। ऐसी नज़रों का स्वागत कीजिए जो आपको भले-बुरे को पहचानने का अवसर देती हैं। आपको किसी की बुरी नज़र नहीं लग सकती, क्योंकि आपका किया आपके साथ है। जैसा कर्म किया है वैसा फल तो मिलना ही है। किसी के नज़र लगने या न लगने का कोई महत्त्व नहीं।

नींबू-मिर्ची खाने की वस्तुएँ हैं, इनसे आप मुँह का ज़ायका बदल सकते हैं, भोजन को स्वादिष्ट बना सकते हैं। द्वार पर या वाहनों पर लगाने से कोई लाभ नहीं। क्या गाड़ी बिना ईंधन के चल सकती है? मशीन बिगड़ी है तो ये बेचारे नींबू-मिर्ची या फटे-पुराने चप्पल क्या करेंगे? गाड़ी की दुर्घटना के लिए वाहन-चालक ही जिम्मेदार होता है। मशीन में ख़राबी है तो उसे मैकेनिक ही ठीक कर सकता है। भला द्वार पर ठोंकी गई घोड़े की नाल संकट से कैसे बचा सकती है? अच्छी गाड़ी देखकर तो देखनेवाले प्रशंसा ही करते हैं—उनकी नज़र कैसे लगेगी?

नींबू-मिर्ची लगाने से व्यापार में बढ़ावा होता है या बरकत होती है—यह शत-प्रतिशत ग़लत है, अन्धविश्वास है, अन्धश्रद्धा है! ऐसा कुछ नहीं होता। व्यापार बढ़ाने के लिए अनेक उपाय किये जा सकते हैं। बिना कर्म के फल नहीं मिल सकता। जितना परिश्रम करेंगे उतना ही परिणाम अच्छा प्राप्त होता है। परिश्रम के साथ ज्ञान भी जोड़ें तो व्यापार में चार चाँद लग जाते हैं। नींबू-मिर्ची-जूता टाँगने से कोई लाभ नहीं होगा। किसी भी आर्षग्रन्थ में ऐसा कहीं नहीं लिखा कि नींबू-मिर्च लटकाने, या पुराना जूता अथवा घोड़े की नाल ठोंकने से व्यापार में इज़ाफा होता है! देखा-देखी में सब एक-दूसरे की नकल करते हैं और यह फैशन भी बन चुका है कि हर शनिवार को नींबू-मिर्ची घर के बाहर, दूकान के बाहर, कार्यालय के द्वार पर बाँधना ही है।

नज़र लगती है आँखों से तो बेहतर यही है कि आँखों में ही नींबू-मिर्ची डाल देनी चाहिए, कभी नज़र नहीं लगेगी और न ही किसी को नज़र लगा सकेंगे।

भोले मनुष्यो! आपका मन साफ है तो हर कोई आपको भली

नज़रों से देखेगा। आप दूसरों का भला सोचेंगे तो कोई बुरी नज़र नहीं लगाएगा। ईश्वर के इन शाश्वत नियमों में पूर्ण विश्वास रखो—श्रद्धा रखो—सबसे प्रेम करो—फिर काहे की नज़र ?

अंधविश्वास : 68 : बच्चों को काला टीका इसलिए लगाते हैं कि दूसरों की बुरी नज़र न लगे!

निर्मूलन : 'नज़र लगना' तो एक मुहावरा है। माता जब शिशु को नहला-धुलाकर 'डिठौना' (काला टीका) लगाती हैं तो उसमें ममता छलकती है कि किसी की बुरी नज़र न लगे। यह मीठा-सा भ्रम है, इसे अंधविश्वास न बनाएँ। यह पूरी तरह मिथ्या है कि काला टीका बच्चे को बुरी नज़र से बचाता है। इसके बावजूद कि यह कोरा अंधविश्वास है, माँ-बहनों के इस आचरण की खिल्ली नहीं उड़ानी चाहिए। कई लोग कहते हैं कि काला टीका गाल या माथे पर, अथवा कान के पीछे लगाने से अगर उस बच्चे को नज़र नहीं लगती तो उसका पूरा मुँह काला कर देना चाहिए—कभी नज़र लग ही नहीं सकती! हमारे विचार में यह निर्मम और निष्ठुर विचार है। बच्चे के लिए माँ की ममता के इस प्रदर्शन पर तो बलिहारी जाइये, परन्तु इसे वहम मत बनाइये। जो बच्चे जन्म से ही काले पैदा होते हैं उनकी माताएँ भी उसी प्रकार से काला टीका लगाती हैं। उन्हें रोकने-टोकने की जरूरत नहीं है। माँ अपने बच्चे पर कोई आँच नहीं आने देती—यह तो बड़ी पवित्र भावना है। उसे प्यार से समझाया जा सकता है कि काला टीका उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता।

बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं—भला भगवान को भी कोई नज़र लगा सकता है? कभी नहीं! किसी के देखने से अगर बच्चे की तबीयत बिगड़ सकती तो आज तक कोई बच्चा जिन्दा न बच पाता। सुंदर-सुडौल बच्चे को देखकर तो लोग प्रसन्न होते हैं। बच्चों को गोद में उठाते हैं—प्यार करते हैं—आशीर्वाद देते हैं—भला नन्हें-मुन्नों को नज़र क्योंकर लग सकती है ?

प्रायः हम बच्चों को निर्बोध और मासूम समझकर भ्रम में पड़ जाते हैं कि उन्हें किसी की बुरी नज़र न लग जाए। यह हमारी नादानी है। जिन नज़रों में ईर्ष्या-द्वेष या घृणा होती है, बच्चे उन्हें तुरन्त भाँप

लेते हैं और उन लोगों की गोद में जाने से कतराते हैं। केवल नजरों में बुरी भावना से बच्चों को कोई हानि नहीं पहुँचती। 'नज़र लगना' एक मीठा और व्यंग-भरा मुहावरा है कि 'मेरे बच्चे को नज़र न लगा देना!' बच्चे के साथ कोई दुर्घटना होने पर भी यही मुहावरा काम आता है कि 'न जाने किसकी नज़र खा गई!' यह सुख-दुःख प्रकट करने का मुहावरा है, इसे कभी अंधविश्वास बनाने की भूल न करें।

एक बात को ध्यान में रखें कि जिन अर्थों में हम ग्रहण करते हैं, वैसी कोई बुरी नज़र कभी किसी को नहीं लगती। दूसरों के लिए गढ़ा खोदनेवाले स्वयं ही उस गढ़े में धँस जाया करते हैं। दूसरों का बुरा चाहनेवाले दूसरों का तो बुरा कर नहीं पाते, अपना ही बुरा करते हैं। यही विधि का विधान है। जो जैसा करता है वैसा ही पाता है। जितना देते हो उतना ही तो पाओगे!

अत: बुरी नज़र या अच्छी नज़र—ये सब बेकार की बातें हैं, इनमें उलझना नहीं चाहिए।

जो ईश्वर में विश्वास करते हैं वे इन बेतुकी बातों में कभी विश्वास नहीं करते। इन बातों में जितना उलझेंगे, और भी उलझते जाएँगे क्योंकि वहम की कोई दवा नहीं होती। जो वहम करते हैं—शंका करते हैं—कभी सुखी नहीं रह सकते।

अंधविश्वास : 69 : गले में, बाजू पर तावीज़-डोरा-धागा बाँधने से किसी की नज़र नहीं लगती तथा भय नहीं होता।

निर्मूलन : यह कोरा वहम है और वहम की कोई दवा नहीं होती। जिन पीरों-फकीरों के गण्डे-तावीज़ बाँधे जाते हैं, जब वही काल की बुरी नज़र से नहीं बच पाए तो हम कैसे बचेंगे? यह हमारी नासमझी है कि हमें जिसमें विश्वास करना चाहिये उसमें विश्वास नहीं करते और अनहोनी बातों पर विश्वास कर लेते हैं। भाई, अगर डोरा-धागा-तावीज़ बाँधने से डर भाग जाए तो पौष्टिक खाना-पीना तथा व्यायाम बेकार है। जब तक ठीक-ठीक ज्ञान नहीं, डर सदा बना रहेगा।

अंधविश्वास : 70 : बाल विवाह होना चाहिए, इससे बड़े होकर बच्चे बिगड़ते नहीं हैं।

निर्मूलन : विवाह गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं है अपितु दो

दिलों का प्रेम-बन्धन है। अग्नि के फेरे लगाना—फूलों की मालाओं का आदान-प्रदान करना—मंत्रों का उच्चारण करना—यह विवाह नहीं कहाता। छः साल या आठ साल के बच्चों का विवाह कर देना अत्याचार है। नादान आयु में बच्चों का विवाह कर देने के रीतिरिवाज वर्तमान समाज में शोभा नहीं देते और अज्ञानता को दर्शाते हैं। ये अनपढ़-गँवार लोगों के रिवाज हैं।

विवाह हो गया और कुछ ही सालों में किशोर मर-मरा गया तो आठ-दस साल की बच्ची क्या बालविधवा नहीं बन जाएगी? सब यही ताने देंगे कि 'हमारे बच्चे को खा गई, खुद क्यों नहीं मर गई? हमारे बच्चे को डसने के लिए क्यों आ गई?' इस प्रकार से बच्चे पर किस प्रकार के प्रभाव पड़ सकते हैं—पाठक सोच सकते हैं।

बचपन में विवाह हो गया—दोनों को कुछ पता नहीं कि शादी होती क्या है; किसकी शादी किसके साथ हुई—यह भी मालूम नहीं। लड़की अपने माता-पिता के घर में पल रही है और लड़का अपने घर। दोनों बड़े हुए। लड़के ने किसी और से आँखें लड़ा रखी हैं और लड़की ने और किसी को मन ही मन में बसा रखा है। गौने के समय जब लड़की बड़ी हो जाती है और लड़का भी कमाने योग्य होता है—लड़की 14-15 साल की और लड़का 16-17 का—उस समय लड़की को लड़केवाले के यहाँ भेज दिया जाता है। लड़की अपने कैशोर्य में पति के घर जाकर रहती है। कुछ ही दिनों में Immaturity (अपरिक्वता) के कारण तू-तू मैं मैं आरम्भ हो जाता है। अनेक कारणों की वजह से लड़की जल मरती है। कहानी समाप्त! चन्द रुपयों के कारण दहेज के कारण आज भी भारतवर्ष में साल में 50,000 लड़कियाँ दहेज का शिकार होती हैं। इन हत्याओं का कारण बाल-विवाह ही तो है!

शादी-विवाह का ठीक समय है जब लड़की और लड़का समझदार हो जाएँ—शिक्षा प्राप्त कर लें—लड़की उम्र में कम से कम 18 साल की हो और लड़का लड़की से 4-5 साल उम्र में बड़ा हो। एक-दूसरे के गुण-कर्म-स्वभाव दोनों को परख लेने चाहिएँ—रिश्ता दूर का होना चाहिये—लड़के-लड़की की सहमति होनी चाहिए—माँ-बाप के

कहने पर ही फैसला नहीं होना चाहिए। शादी में लड़के और लड़की दोनों की रज़ामंदी बहुत आवश्यक है दहेज बीच में होगा तो रिश्ते बिगड़ने की अधिक संभावनाएँ होंगी।

दहेज निश्चित किया है और उस पर किसी कारण अनबन हो जाय तो रिश्ते टूट जाया करते हैं। वर-वधू को विवाह से पहले आपस में निर्णय कर लेना चाहिए कि हम न दहेज लेंगे, न देंगे। विवाह बच्चों का खेल नहीं है। बालविवाह तो वैसे भी कानूनन जुर्म है। बालिग होने से पहले के विवाह कानून की दृष्टि में अवैध और इस अपराध के लिए दोनों पक्षों के माता-पिता को जेल में ठूँसा जा सकता है।

अफसोस की बात है, अभी भी भारत देश में—हमारे महान् देश में—कहीं-कहीं बाल-विवाह होते हैं और क़ानून कुछ नहीं करता। सरकार को इस दिशा में जागरूक रहने की अत्यन्तावश्यकता है। समाज में जो कुरीतियाँ, अंधपरम्पराएँ, अंधविश्वास पनप रहे हैं उनमें परिवर्तन होना ही चाहिए।

अंधविश्वास : 71 : मन साफ़ हो तो कोई भी ईश्वर के दर्शन कर सकता है!

निर्मूलन : मन साफ़ हो तो ईश्वर के मार्ग पर चलने का अधिकारी हर कोई बन सकता है, सुख प्राप्त कर सकता है, परन्तु यह भ्रान्ति है कि वह ईश्वर के दर्शन का पात्र बन सकता है। योगी बने बिना अर्थात् अष्टांग योग को व्यवहार में लाने के बगैर वह कभी समाधि की अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता। ईश्वर का साक्षात्कार मन में नहीं, आत्मा में सम्भव है। समाध्यावस्था में ही प्रभु के साक्षात्कार होते हैं, अन्यथा नहीं। अष्टांग योग में स्वाध्याय की महिमा प्रधान है, अर्थात् वेदादि आर्षग्रन्थों का अध्ययन अत्यावश्यक है जिससे ईश्वर-जीव-प्रकृति के पृथक् स्वरूपों को जानकर ही वह सच्चा योगी बन सकता है और सच्चा योगी ही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। उसे वैदिक मार्ग पर चलना ही पड़ेगा। अष्टांग योग को समझे बिना कोई भी मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति नहीं कर सकता।

मन की शुद्धि यम-नियम से होती है तथा उसके आगे और भी योग के अंग हैं जिनको साकार करना पड़ता है। केवल भजन-कीर्तन

गाने से या संध्या-हवन करने से ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। जब तक समाध्यावस्था प्राप्त नहीं हो जाती, ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते।

अंधविश्वास : 72 : माता-पिता या घर के किसी बड़े सदस्य की मृत्यु होने पर घर के बाकी सदस्यों को (लड़कियों-स्त्रियों को छोड़कर) सर के बाल मुँडवाने चाहिएँ!

निर्मूलन : ऐसी प्रथा पौराणिक परिवारों में आज भी प्रचलित है, परन्तु इसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। ऐसा किसी भी आर्षग्रन्थ में या रामायण-महाभारत जैसे इतिहास में भी कहीं नहीं लिखा और बाल कटाने का कोई वैज्ञानिक कारण भी नहीं है, अतः इस प्रकार की भ्रान्ति न पालें।

सिर-दाढ़ी-मूँछ के बाल कटवाने का प्रयोजन इतना-सा है कि अपरिचित भी उसके शोक-संताप को समझ लें और हँसी-ठट्ठे से बचें। वैसे तो अस्थि-विसर्जन के बाद अंतिम संस्कार सम्पन्न हो जाता है, किन्तु विदेशों से रिश्तेदारों के आने में समय तो लगता ही है। इसी कारण पगड़ी की रस्म होने तक शोक और समवेदना का वातावरण बना ही रहता है। बाल कटवाने का दिवंगत व्यक्ति के संस्कार से कोई सम्बन्ध नहीं है। कई लोग पूरी श्रद्धा और शोक में डूबकर मृतक का संस्कार तो कर देते हैं, परन्तु बाल नहीं कटवाते। इसका मतलब यह नहीं कि मरनेवाले की मौत का उसे दुःख नहीं होता। इस भ्रान्ति में नहीं रहना चाहिए कि बालों की हजामत करवा देने से दिवंगतात्मा को शान्ति मिलेगी। यह कतई ग़लत धारणा है।

जो प्रथाओं के गुलाम हैं, वे तो मंदिरों में जाकर वहाँ भी बालों को सफाचट करवाके आते हैं। वे वहाँ किसकी मृत्यु के शोक में बाल उतारते हैं—मालूम नहीं। ऐसे मंदिरों में कहते हैं कि बाल देने से मनो-कामनाएँ पूर्ण होती हैं। स्त्रियाँ भी बाल कटाती हैं। कितना अंधविश्वास है!

बालों की हजामत से कामनाएँ तो पूर्ण नहीं होतीं—मंदिरवालों की आमदनी अवश्य बढ़ जाती है। कटे हुए बाल बेचे जाते हैं—निर्यात होते हैं—विदेशी मुद्रा कमाई जाती है—यह भी दूकानदारी का नया तरीक़ा है।

स्वाध्याय की कमी के कारण, स्वार्थी लोगों ने पाखंड पर पाखंड शुरू कर रखा है—कोई कहने-सुननेवाला नहीं है। अंधविश्वास में लोग बहके जा रहे हैं।

वैदिकधर्म को जानने-माननेवाला कभी ऐसे पाखंडों में नहीं फँसता और न ही ऐसे पाखंडों को बढ़ावा देता है।

अंधविश्वास : 73 : शनिवार को नाख़ून या बाल नहीं काटने चाहियें! यात्रा नहीं करनी चाहिये! नए कपड़े नहीं पहनने चाहियें! नए जूते नहीं पहनने चाहियें।

निर्मूलन : मूल कारण इतना-सा है कि अंग्रेज़ों के शासन में इतवार को सब छुट्टी पर होते थे। लोगों का मिलना-मिलाना, समारोह, गोष्ठियाँ और महफ़िलें इतवार को ही होती थीं। इसी कारण शनिवार को लोग बाल आदि कटवाने से कतराते थे, ताकि चेहरा-मोहरा बदला-बदला-सा न लगे। तब से शनि को बाल और नाखून न काटने की प्रथा-सी चल पड़ी। यह तो आप भी मानेंगे कि बाल काटने से थोड़े दिन शक्ल-सूरत में बदलाव-सा आ जाता है। मान लो, शनि को बाल कटवा लिये और रविवार को किसी विवाह में जाना है या अन्य किसी कार्यक्रम में जाना है। सभी पूछेंगे—क्यों भाई, आप बदले-बदले-से क्यों लगते हैं? इसीलिए लोगों को जवाब देते-देते उकताहट होती थी, अतः शनिवार को बाल न कटाने की प्रथा चल पड़ी।

इसमें वहम की कोई बात नहीं—शुभाशुभ का प्रश्न ही नहीं।

रविवार की छुट्टी का दिन घर-परिवार के साथ बिताने की प्रथा का भी यही कारण है। सोमवार से शनिवार तक दफ्तर-दूकान में काम करते हैं और बच्चे इसी इन्तज़ार में होते हैं कि रविवार के दिन घूमने जाएँगे। आप ही शनिवार को यात्रा करते हैं तो घर में सबको जवाब देना होगा; धर्मपत्नी की तथा बच्चों की नाराज़गी का सामना करना पड़ेगा। अतः शनिवार को यात्रा न करें—ऐसा बड़े बुजुर्गों ने कहा होगा। अगर बीवी-बच्चे साथ में जा रहे हैं तो कोई आपत्तिवाली बात नहीं है, कभी भी सफ़र कर सकते हैं। स्कूल की छुट्टियाँ हैं—ऑफ़िस में काम नहीं है या अवकाश के दिन हैं तो शनिवार हो या रविवार, कभी भी यात्रा कर सकते हैं।

जिनका विवाह नहीं हुआ, कुँवारे हैं, वे घर की परिस्थिति को देखते हुए निर्णय कर सकते हैं। शनिवार को यात्रा करना वैसे ठीक ही है, क्योंकि यात्रा में रविवार की छुट्टी का दिन भी कट जाता है। अधिकतर लोग शनिवार को ही यात्रा करना पसंद करते हैं।

नये कपड़ों या जूतों का शनिवार से कोई संबंध नहीं, कभी भी पहन सकते हैं। निश्चिंत रहिये कोई अशुभ नहीं होगा। शुभाशुभ अपने कर्मों से होता है—जूते-कपड़ों या यात्रा से नहीं होता। अन्धविश्वास को त्यागें और जो सत्य है उसे अपनाएँ!

अंधविश्वास : 74 : रात्रि में घर में नाखून नहीं काटना चाहिए और दूकान में कतई नहीं।

निर्मूलन : ऐसा क्यों कहते हैं इसको समझें। रात्रि में नाखून काटने से हो सकता है कि नाखून के टुकड़े यहाँ-वहाँ गिर जाएँ और पैर में चुभने का अंदेशा बना रहे। यह भी तो हो सकता है कि नाखून काटते-काटते अँगुली भी कट जावे और रात्रि में उसके इलाज का साधन घर में न हो सके। अगर सावधानी बरतें तो नाखून रात्रि में काटने से कोई हानि नहीं है, किन्तु ऐसी जगह बैठकर नाखून काटें जहाँ भरपूर उजाला हो और नाखून के कटे हुए अंश नाली द्वारा घर से बाहर बह जाएँ।

दूकान में ग्राहक आते-जाते रहते हैं। वहाँ नाखून काटना नज़रों को अच्छा नहीं लगता। दूकान में कैंची या ब्लेड का मिलना भी कठिन होता है। दाढ़ी-मूँछ-नाखून और बाल (केश) कटाने के लिए 'बार्बर' (नाई) की दूकानें होती हैं, वहीं जाकर आराम से बैठकर इन अनावश्यक चीज़ों का सफ़ाया करवाया जा सकता है। ब्यूटी पॉर्लर इसीलिए तो खुले हैं।

शरीर की सफाई करना अशुभ नहीं, अपितु शुभ होता है। रात्रि में या दिन में, घर में या दफ्तरों में—कहीं भी शरीर की शुद्धि की जा सकती है। लोग तो तीर्थ-स्थलों पर भी नाखून-बाल उतारते हैं—नदियों में नहाते हैं—क्या इसको अशुभ कहेंगे?

अंधविश्वास : 75 : ईश्वर हमारे पापों को हरता और क्षमा करता है!

निर्मूलन : परमपिता परमात्मा न तो चोर है, न ही पापों को क्षमा करता है। हरण करनेवाले को तो चोर कहते हैं। आप ही निर्णय करें कि क्या ईश्वर बिना पूछे हमारे कुकर्मों का हरण कर सकता है? कर्म करने के पश्चात् उसका फल तो मिलना ही चाहिए, इसी भरोसे पर सभी प्राणी कर्म करते हैं, यदि हम कर्म करें और ईश्वर उसका फल न दे तो ऐसा अन्याय वह परमपिता परमात्मा कभी कर सकता है? कभी नहीं!

ईश्वर के न्याय में लेशमात्र शंका करना मूर्खता है—नास्तिकता है—नामसमझी है—अज्ञानता है।

अंधविश्वास : 76 : गले में धागा और भुजा में डोरा-तावीज़ पहनने से भूत-प्रेत इत्यादि का प्रभाव नहीं पड़ता—डर समाप्त हो जाता है।

निर्मूलन : यह अंधविश्वास है और इसके शिकंजे में कमज़ोर लोग ही आते हैं। ये सब तांत्रिक लोगों की शरारतें हैं जिनका काम ही पराया माल हड़पना है। स्वार्थपूर्ति के लिए वे नासमझों को, गरीब लोगों को, वहमी लोगों को लूटते रहते हैं। फूँक मारकर—कुछ पढ़कर—आँखों को टेढ़ी-मेढ़ी करके—काले धागे को गाँठ मारकर—कागज़ में कुछ लिखकर तावीज़ में देते हैं कि तुम्हारे सब दुःख दूर हो जाएँगे। दुःख-दर्द के मारे लोग क्या करें! इन पर विश्वास कर बैठते हैं। धागे-तावीज़ के बदले रुपया-पैसा भेंट करते हैं।

आजकल गले में काला धागा बाँधना फैशन-सा बन गया है। देवी-देवताओं के नाम पर इस प्रकार से अन्धश्रद्धा को बढ़ावा मिलता है और देखा-देखी में यह रोग अच्छे-भले समृद्ध लोगों में भी बढ़ता जाता है। मंदिर-मस्जिदों के बाहर दूकानें खुल गई हैं जहाँ इस प्रकार के काले-पीले धागे, तावीज़ और देवी इत्यादि के लॉकिट बिकते रहते हैं। खरीदारों की कमी नहीं।

सबसे ज्यादा गणपति के नाम पर यह धंधा चलता है। हर क्षेत्र में जहाँ किसी भी देवी-देवता की पूजा के स्थल (मंदिर) बने हैं, इस प्रकार का ढोंग पनपता जा रहा है।

प्रायः शनि-मंगल के प्रभाव से बचने के लिए काला धागा पहना

जाता है जो बिल्कुल ग़लत है—पाप है। रही बात डर की—सो जो ऐसा काम करता है या करवाता है उसे डर तो लगा ही रहेगा। डर अज्ञानता के कारण होता है। जब कोई बुरा काम करता है तो उसका फल अवश्य बुरा ही मिलेगा—यह सोच-सोचकर डर लगता है। स्वाभाविक है जैसा कर्म किया है तो फल वैसा ही मिलेगा। अच्छे कर्म करनेवाले को किसका डर?

अपने कर्मों पर ध्यान दो और प्रभु के गुण गाओ—सब-कुछ ठीक होवेगा।

अगर काला धागा गले में बाँधने से डर दूर होता है तो मेरी अपनी सलाह है कि ऊपर से नीचे तक काले कपड़े पहनो। काले कपड़े देखकर स्वयं भूत-प्रेत ही सदा के लिए मर जाएँगे। विद्वज्जनो! भूत-प्रेत कुछ नहीं, वह तो मन का वहम है।

(भूत-प्रेत का भ्रान्ति-निवारण दोबारा पढ़े-समझें-विचारें)

धागा-डोरा इत्यादि सब यज्ञोपवीत के ही बिगड़े हुए रूप हैं।

यज्ञोपवीत (जनेऊ=उपनयन) मनुष्य-मात्र को पहनना चाहिए जो सफेद सूती धागे का बना होता है। आठ साल का बच्चा जब गुरुकुल में जाता है तब उसे गुरुजी पहनाते हैं। यह एक वैदिक संस्कार है। यज्ञोपवीत पहननेवाले को ही श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ करने का अधिकार होता है। और भी अनेक कारण हैं जिसको ध्यान में रखकर उपनयन संस्कार होता है। अधिक जानकारी के लिए 'शंका-समाधान' या Quest = The Vedic Answer पढ़ें—उसमें हमने विस्तार से यज्ञोपवीत के बारे में लिखा है।

भावना कैसी भी हो, परन्तु जो सत्य है उस पर ही आचरण करना चाहिए। यज्ञोपवीत को धारण करें परन्तु उसके स्थान पर उसका बिगड़ा रूप धागा-डोरा-तावीज़ इत्यादि पहनेंगे तो यह पाप है, क्योंकि सत्य धारण करना ही पुण्य है और असत्य को धारण करना पाप है!

अंधविश्वास : 77 : विधवा (जिसका पति मर गया है) को दूसरी शादी नहीं करनी चाहिये। उसे अलग कमरे में रखना चाहिए तथा उसे केवल सफेद कपड़े ही पहनने चाहियें और सोने इत्यादि के आभूषण तो कभी भी नहीं पहनने चाहियें।

निर्मूलन : यह हमारे देश (भारत) का दुर्भाग्य है कि आज भी ऐसे लोग जिन्दा हैं जो इस प्रकार की भ्रान्तियों में फँसे हुए हैं कि विधवा का पुनर्विवाह नहीं होना चाहिए।

पति का देहान्त होने में बेचारी पत्नी का क्या दोष? कोई एक्सीडेंट में मारा गया तो इसमें पत्नी क्या कर सकती है? पति रोगी था—उसने बहुत कष्ट सहे, इलाज किया, परन्तु मृत्यु से लड़ न सका और मर गया—इसमें पत्नी अपना पूरा जीवन अकेली घुट-घुटकर ताने सहते हुए बिताए—यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है?

जो इस संसार में आया है वो जाएगा अवश्य। जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। कोई पहले जाता है कोई बाद में, परन्तु मृत्यु निश्चित है—होनी ही है। लड़की की शादी हुई परन्तु कुछ ही महीनों या सालों के पश्चात् उसके पति का निधन हो गया। यहाँ सोचनेवाली बात है कि वह लड़की दोबारा शादी करे या अपनी ससुराल में नौकरानी की भाँति सबके ताने सुनती अपना जीवन बर्बाद करे? अतीत में ऐसा होता होगा, परन्तु वर्तमान में तो बुद्धिजीवी लोग अपनी बहू-बेटी के जीवन में नई बहार ला सकते हैं। किसी की बर्बादी को देखकर कुछ लोग खुश होते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। जब (ईश्वर ना करे) ऐसी स्थिति अपने घर में आन पड़े, फिर क्या प्रसन्नता होगी?

लड़की जवान है और दुर्भाग्य से वह विधवा हो गई है तो उसका दोबारा विवाह अवश्य करना चाहिए (अगर इसके लिए वह स्वयं भी तैयार हो—राज़ी हो)। यही धर्म भी कहता है। अधर्म तो तभी होता है जब वह विधवा स्त्री कोई कुकर्म कर बैठे। सास-ससुर अपनी विधवा बहू का पुनर्विवाह राजी-खुशी अपनी बेटी समझकर कराते हैं तो यह पुण्यकर्म है—इससे अच्छा शुभकार्य उनके लिए और कोई नहीं है।

उस लड़की का (विधवा युवती का) घर पुनः बस जाएगा तो इसमें समाज को क्या आपत्ति है?

ऋषियों ने भी इस 'विधवा-विवाह' की अनुमति दी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है—

अगर वह विधवा पुनर्विवाह करना नहीं चाहती या उसे अपने

बच्चों की खातिर पुनर्विवाह करने की इच्छा नहीं है तो उसे अपना समय अपने बच्चों में सुसंस्कार डालने में—उनकी पढ़ाई-लिखाई में और समाज-सेवा में लगाना चाहिए। इसके लिए वह सफेद कपड़े क्यों पहने ? रंगीन कपड़े अपनी इच्छानुसार पहने—इसमें कोई अधर्म नहीं है। आभूषण पहने न पहने। इसमें दूसरों को हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है, आदेश देने की जरूरत नहीं है। किसी का अधिकार नहीं कि उसे आभूषण पहनने से मना करे। विधवा है तो क्या हुआ ? उसे पूरी-पूरी स्वतंत्रता के साथ जीने का अधिकार है। किसी की स्वतंत्रता में बाधा डालना कोई क़ायदा नहीं है।

अंधविश्वास : 78 : गंगा आदि पवित्र नदियों का पानी उबालने-छानने की कोई ज़रूरत नहीं!

निर्मूलन : घर में जो नल से पानी आता है वह तो अवश्य ही उबालकर-छानकर प्रयोग में लाना चाहिए—यह सच बात है। आजकल ऐसे-ऐसे यंत्र बाज़ार में मिलते हैं जिनमें से पानी बिल्कुल साफ होकर—शुद्ध होकर मिलता है। विज्ञान ने तरक्की की है तो इन उपकरणों का इस्तेमाल करने में अपनी ही भलाई है।

आजकल बोतलों का पानी बिकता है जो 100% शुद्ध होता है। यह जीवाणु-रहित (Bacteria Free) होता है। सफर में इन्हीं बोतलों का जल प्रयोग में लाना उचित है, या फिर घर से ही अपना साफ पानी साथ में ले- जाना चाहिए।

तालाब-नदियों का जल भी स्वच्छ करके ही पीना चाहिए। उसमें गंदगी होती है। इससे परहेज़ करें तो अच्छा ही है। धर्म के नाम पर लोग नदियों का पानी घर में लाते हैं—कभी-कभी प्रयोग में लाते हैं या घर में छिड़कते हैं—यह भावना आज के युग में कोई महत्त्व नहीं रखती। बहती नदियों का पानी भी गंदे नालों का पानी मिलने से बुरी तरह प्रदूषित हो चुका है। घरों का पानी भी अब उबाल-छानकर या यंत्र-शुद्धि के बाद पियें।

अंधविश्वास : 79 : सिद्ध पुरुष का आत्मा चाहे तो किसी के भी शरीर में प्रवेश कर सकता है, किसी के भी मन के विचारों को जान सकता है। वह वापस अपने शरीर में भी आ सकता है!

निर्मूलन : स्वार्थ और अज्ञानतावश प्रायः लोग अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ फैलाते हैं जिनमें से यह भी एक है। योगाभ्यास करके अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं यह सच है, परन्तु अनहोनी बातों को सिद्ध करना असम्भव है। आत्मा के निकलते ही शरीर ठंडा हो जाता है अर्थात् वह मर जाता है और वह आत्मा दूसरे के शरीर में तो क्या, अपने ही छोड़े हुए शरीर में भी प्रवेश नहीं पा सकता। शरीर को त्यागते ही वह आत्मा ईश्वराधीन हो जाता है। स्वेच्छा से उसका कहीं भी जाना, किसी के भी शरीर में प्रवेश करना, ये सब अज्ञानता की बातें हैं।

हाँ, यह सच है कि कोई ज्ञानी-ध्यानी पुरुष अपने ज्ञान तथा अभ्यास द्वारा सामने बैठे व्यक्ति के भावों को जान सकता है, परन्तु शत-प्रतिशत वह भी नहीं जान सकता। मनोवैज्ञानिक यही तो काम करते हैं। मरीज़ से बातें करते हुए वे उसकी भावनाओं को समझ जाते हैं। यद्यपि दूसरों के मन की बात सरलता से भाँप लेता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह कुछ भी कर सकता है। न तो अपनी आत्मा को निकालकर दूसरे के शरीर में घुस सकता है, न वापस अपने शरीर में आ सकता है। अल्पज्ञान होने के कारण लोगों में अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। निवारण न होने के कारण वे सच समझ बैठते हैं। एक बार जीवात्मा शरीर से निकल गया तो समझो—सदा के लिए निकल गया!

ईश्वर की व्यवस्था में कभी परिवर्तन नहीं आ सकता। स्वयं ईश्वर भी अपने ही नियमों में बदलाव नहीं लाता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। मुक्त आत्मा को उसके कर्मानुसार कब-कहाँ-कैसे भेजना है—यह केवल ईश्वर ही भली-भाँति जानता है।

अंधविश्वास : 80 : देवी देवताओं के मन्दिरों में घुटनों के बल अथवा रेंगते हुए जाने से भगवान प्रसन्न होते हैं और मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं!

निर्मूलन : किसी भी मन्दिर या पूजा-स्थल पर किसी भी प्रकार जाने से मनोकामनाएँ अथवा मुरादें पूरी होना सरासर झूठ है, भ्रान्ति है, भ्रम है। परम पिता परमात्मा ने हमको हाथ-पाँव इत्यादि सब

इन्द्रियाँ सही-सलामत दी हैं, फिर घुटनों के बल चलना या रेंगते हुए मन्दिर इत्यादि में जाना कहाँ की समझदारी है? यदि किसी व्यक्ति के पैरों में चलने की शक्ति न हो या किसी रोग के कारण उसके पैर निकम्मे हो चुके हों या शरीर के कुछ अंग काम न करते हों—ऐसी हालत में वह व्यक्ति मंदिर तक मजबूरन घुटनों के बल या रेंगते हुए ही जा सकता है। उसको देखकर स्वस्थ व्यक्ति भी अपनी मनोकामनाएँ पूरी करने के लिए घुटनों के बल या रेंगता हुआ मन्दिर जावे तो क्या यह ईश्वर या देवी-देवता को धोखा देना नहीं?

रही बात भगवान या देवी-देवताओं के प्रसन्न होने तथा मनोकामनाएँ पूर्ण होने की—तो जड़ मूर्तियाँ भी देवताओं की काल्पनिक मूर्तियाँ ही होती हैं। उनमें स्वयं भगवान या देवी-देवता नहीं होते तो उनके प्रसन्न होने या अप्रसन्न होने की बात स्वयं ही अप्रमाणित होती है। प्रसन्न और अप्रसन्न जीवित व्यक्ति ही हुआ करते हैं, मूर्तियाँ या पत्थर के काल्पनिक भगवान जड़ होने के कारण प्रसन्न अथवा अप्रसन्न नहीं होते।

मन्दिर इत्यादि स्थानों में जाने से मनोकामनाएँ या मुरादें पूरी होती हैं—यह भी भ्रान्ति ही है। मन्दिरों में या इसी प्रकार के पवित्र स्थानों में जाने से मनुष्य की भावनाओं में परिवर्तन आ सकता है, परन्तु मुरादें पूरी होना गलत है।

अंधविश्वास : 81 : मृतकों का पिण्डदान करना चाहिए, इससे उन्हें शान्ति मिलती है!

निर्मूलन : पिण्ड कहते हैं जड़ शरीर को और मृत्यु के पश्चात् आटे का गोल पिण्ड बनाकर बामण को दान देना, पिण्डदान कहलाता है। व्यक्ति के देहावसान के पश्चात् उसका शरीर अग्नि को अर्पण किया जाता है, जो पंचमहाभूतों में विलीन हो जाता है। पिण्ड रहा नहीं तो फिर पिण्डदान किसका?

प्रायः लोग (हिन्दुओं में यह प्रचलित प्रथा है) अपने परिवार के किसी सदस्य के दिवंगत हो जाने के पश्चात् बामणों को (तथाकथित ब्राह्मणों को) पिण्डदान करते हैं, इसलिए कि मरनेवाले की आत्मा यहाँ-वहाँ भटकती न रहे और वह शान्ति प्राप्त करे। गेहूँ के आटे का

पिण्ड बनाकर, ब्राह्मणों से पूजा-पाठ करवाकर नदी या समुद्र के तट पर डाल आते हैं। ब्राह्मण लोग मृत के नाम पर खाना खाते हैं और अपने परिवार के लिए भी बर्तनों में भर-भरकर ले जाते हैं तथा मृतक के परिवार से अच्छी-खासी रकम बटोरकर ले जाते हैं। यही सब पिण्डदान है। इससे वास्तव में दिवंगत आत्मा को कुछ लेना-देना नहीं होता, क्योंकि मरनेवाले व्यक्ति की आत्मा इस जड़ शरीर को छोड़ने के पश्चात् तुरन्त ही यमाधीन (ईश्वराधीन) हो जाती है तथा ईश्वरीय व्यवस्था एवं अपने कर्मानुसार नया शरीर प्राप्त करती है। पाठकगण स्वयं ही विचार करें कि किसी के मरने के पश्चात् पिण्डदान इत्यादि से क्या होनेवाला है? दान का पुण्य दान करनेवाले को ही मिलता है। किसी के भी निमित्त किये गए दान इत्यादि का फल भी देनेवाले को ही मिलता है, न कि जिसके निमित्त किया गया हो। भोजन करने से भोजन करनेवाले का ही पेट भरता है, किसी अन्य का नहीं। उसी प्रकार जो कुछ भी कर्म होता है उसका फल कर्त्ता को मिलता है, अन्य को नहीं।

रीति-रिवाज, परम्पराएँ ग़लत भी हो सकती हैं। ये मान्यताएँ हैं परन्तु मिथ्या हैं। ईश्वर ने मनुष्य को मननशील बनाया है, बुद्धि प्रदान की है कि वह उसका प्रयोग करे, ज्ञान प्राप्त करे जिससे कि वह सत्यासत्य का निर्णय कर सके। परन्तु इतना होने पर भी यदि वह बुद्धि का प्रयोग नहीं करता तो इसमें किसकी ग़लती है? सत्य क्या है और असत्य क्या है—इसका ज्ञान हमें धर्म द्वारा प्राप्त होता है। जो व्यक्ति धर्माचरण करता है, वह इन अंधविश्वासों में नहीं फँसता।

वैसे भी अन्त्येष्टि के पश्चात् दिवंगतात्मा के लिए हम कुछ भी नहीं कर सकते। और यदि कुछ दान इत्यादि करते हैं तो उससे दान करनेवाले को ही आत्मिक संन्तुष्टि प्राप्त होती है। मरे हुए व्यक्ति के नाम पर खानेवाले ब्राह्मण तो नहीं हो सकते, उन्हें तो बामण ही कहना चाहिए। पिण्डदान और श्राद्ध इत्यादि करने या करानेवाले बामण आस्तिक नहीं हो सकते, अपितु नास्तिक होते हैं। इन लोगों का ईश्वर की न्याय-व्यवस्था में विश्वास नहीं होता। दूसरों का माल कैसे हड़पा जाए, इनसे अधिक कौन जान सकता है? ऐसे स्वार्थी छल-कपट

करनेवाले दम्भी बामणों से सावधान रहने की आवश्यकता है। पवित्र नदियों के किनारे ऐसे ही अपवित्र बामण बसते हैं जिनका काम-धन्धा ही मरे हुओं का माल खाना है। मन्त्रों का कुछ ज्ञान नहीं परन्तु मंत्रोच्चाण का ढोंग करते हैं। ऐसे बामणों (पंडों एवं नकली ब्राह्मणों) से सावधान!

ठीक ही कहा है कि पंडों का पेट कभी नहीं भरता। सदा माँगते ही रहते हैं। इन लोगों की नज़रें सदा यजमानों की जेब पर ही रहती हैं। इन लोगों को कितनी भी दान-दक्षिणा दो, इनकी सन्तुष्टि नहीं होती, माँगते ही रहते हैं। जो लोग इन्हें सीधे हाथ नहीं देते उन्हें ये मृतक के अनिष्ट का भय दिखा उनसे दान-दक्षिणा वसूल करते हैं।

मृतक के चौथे पर तथा बारहवें दिन इन पंडों की माँगें और भी बढ़ जाती हैं। मानसिक रूप से डरा-धमकाकर ये अधिक से अधिक धन बटोरने का प्रयास करते हैं। दिवंगत आत्मा को तो किसी छतरी या चप्पल की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु उनके नाम पर से लोग (पंडे अथवा बामण) छाते और चप्पल इत्यादि वस्तुओं की भी माँग करते हैं, यहाँ तक कि पूरे सालभर का राशन-पानी भी वसूल कर लेते हैं। हजारों रुपये, कपड़े, फल, बरतन इत्यादि माँग-माँगकर भी इनका मन नहीं भरता। बेचारे मृतक के परिवारवाले असहाय होते हुए भी अन्धविश्वास तथा अन्धश्रद्धा के कारण इनकी माँगों को पूरा करने का प्रयास करते हैं। खुशी के अवसर की बात और है, परन्तु जब दुःख का अवसर हो, तो भी ऐसे घर को नहीं बख्शते। लगता है ये लोग तो जिन्दा भूत बनकर लोगों को दुःख ही पहुँचाते रहते हैं।

जहाँ अन्धश्रद्धा और अन्धविश्वास का डेरा है वहाँ तो ऐसा होना निश्चित ही है। पंडों-पंडितों, बामणों का तो धन्धा ही यही है। ग़लती तो हमारी ही है कि हम अज्ञानता के क़ारण इनके चक्करों में फँस जाते हैं और इनके शिकार बन जाते हैं। इसलिए हमें जागरूक होने की आवश्यकता है।

अंधविश्वास : 82 : अनेक गुरुजनों का कहना है कि 'यह दुनिया भ्रम है, एक स्वप्न है। एक ईश्वर ही सत्य है, बाकी सब मिथ्या है।'

निर्मूलन : यदि यह दुनिया भ्रम है, स्वप्न है तो फिर आप कौन हैं ? जब सब-कुछ भ्रम है तो फिर गुरु भी तो भ्रम ही है और जो पाठ पढ़ा रहे हैं वह भी भ्रम ही प्रमाणित होता है। ऐसे गुरु के अनुसार प्रश्न भी भ्रम और उसका उत्तर भी भ्रम, तो गुरु स्वयं ही इसे गोरखधन्धे में क्यों लिप्त है ?

ईश्वर ने सब मनुष्यों को बुद्धि प्रदान की है। उसका उपयोग करें तो बात समझ में आ जाएगी कि हम सब मनुष्य अर्थात् मननशील हैं और यदि किसी बात का मनन-चिन्तन नहीं करते, बिना सोचे-समझे उस पर विश्वास करते हैं तो मनुष्य और पशु में क्या अन्तर रह जाता है ? सत्यासत्य के भेद को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी बुद्धि का प्रयोग और स्वाध्याय करें। किसी की बात को परीक्षण किये बिना मान लेना समझदारी नहीं है। वेदाध्ययन करने से ही सत्यासत्य का निर्णय हो सकता है, अन्यथा नहीं।

यह दुनिया न तो भ्रम है और न ही ब्रह्म। ब्रह्म अर्थात् ईश्वर एक अलग सत्ता है और आत्मा एक अलग सत्ता है। प्रकृति इन दोनों से भिन्न सत्ता है। ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों ही अनादि अर्थात् सदैव से हैं। ईश्वर प्रकृति से इस सृष्टि (जगत्) का निर्माण करता है। यह दुनिया इस सृष्टि का एक छोटा-सा भाग है। जो वस्तु बनती है वह नष्ट अवश्य होती है। यह दुनिया बनती-बिगड़ती रहती है। यह सत्य है, भ्रम नहीं। ब्रह्म, जीव और प्रकृति ये सब सत्य है। जो भ्रम होता है वह सत्य नहीं होता। स्वप्न स्वप्न ही होते हैं, उनका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह जगत स्वप्न के समान भ्रम नहीं, अपितु इसका अस्तित्व है, अतः यह जगत भ्रम नहीं है। इस भ्रम को मस्तिष्क से निकाल दें।

अंधविश्वास : 83 : पूजा-पाठ करना तो ठीक है परन्तु यज्ञ में घी, सामग्री एवं अन्य खाद्यपदार्थों को अग्नि में स्वाहा करने से तो अच्छा है कि वही धन निर्धनों के निर्वाह के लिए दिया जाए।

निर्मूलन : इस प्रकार की भ्रान्ति प्रायः यज्ञ न करनेवाले लोगों में होती है जो निराधार और गलत है। विज्ञान का कहना है कि कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती केवल अपना रूप बदलती है तथा स्थूल से

सूक्ष्म हो जाती है। यदि वस्तु खत्म या नष्ट हो जाए तो आज तक सब–कुछ समाप्त हो चुका होता। किन्तु हम देखते हैं कि सृष्टि में सब–कुछ सही–सलामत है।

यह ठीक है कि पूजा–पाठ में कोई पैसा नहीं लगता, परन्तु यज्ञ–कर्म करने में धन अवश्य खर्च होता है। वेदों में कहा गया है कि यज्ञ करना सभी के लिए परम आवश्यक है क्योंकि यह श्रेष्ठतम कर्म है। जिससे सब जड़–चेतन देवताओं को लाभ पहुँचे, सब जीवों को लाभ पहुँचे, उसी को सर्वश्रेष्ठ कर्म अर्थात् यज्ञ कहते हैं।

घी–सामग्री इत्यादि वस्तुएँ अग्नि में जलकर सूक्ष्म हो जाती हैं और वायु द्वारा दूर–दूर तक जाकर वातावरण को सुगन्धित करती हैं, सभी को लाभ पहुँचाती हैं। हम सभी जानते हैं कि एक सूखी लाल मिर्च को यदि अग्नि में डाल दिया जाए तो उससे आसपास के सभी लोगों को खाँसी आने लगती है और उससे बहुत परेशानी होती है। इसी प्रकार अग्नि में घी एवं अन्य सुगन्धित पदार्थ डालने से वे सूक्ष्म होकर सभी प्राणियों को लाभ एवं सुख पहुँचाते हैं। इससे वायुमंडल भी शुद्ध होता है जो कि सभी प्राणियों के लिए आवश्यक है। हम सभी जानते हैं कि दूषित वायु सभी प्राणियों के लिए हानिकारक है; इससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। घी और हवन–सामग्री में अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करने के गुण विद्यमान हैं। थोड़े–से घी से हम बहुत व्यक्तियों को लाभ नहीं पहुँचा सकते, किन्तु यज्ञ द्वारा उतना–सा घी सूक्ष्म होकर हज़ारों–लाखों गुणा अधिक प्रभावशाली होकर अनेक लोगों का स्वास्थ्यवर्धन करता है। ऐसी अनेक बीमारियाँ हैं जिनका इलाज दवाइयों द्वारा भी नहीं हो पाता, किन्तु यज्ञ के द्वारा हम उन बीमारियों का भी इलाज कर सकते हैं। आज के वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं।

यज्ञ न करनेवालों का दूसरा आक्षेप यह रहता है कि घी एवं अन्य पौष्टिक पदार्थों को अग्नि में न डालकर गरीबों में बाँटा जाए। वेदों में कहा गया है—**'शत हस्त समाहर सहस्त्र हस्त संकिर'** अर्थात् सौ हाथों से कमाओ और हज़ार हाथों से बाँट दो। यह एक उत्तम विचार है। गरीब लोग भी हमारे ही समाज के अंग हैं। उनका उत्थान करना

भी हम सभी का कर्त्तव्य है, धर्म है। यह आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक भी है। सुपात्र को दान अवश्य देना चाहिए—इसमें दो राय नहीं हो सकतीं। यज्ञ के अपने लाभ हैं और दान के अपने। मनुष्यों के लिए ये दोनों ही कार्य आवश्यक हैं। थोड़ा ध्यान से विचारा जाए तो परोपकार और त्याग का ही दूसरा नाम यज्ञ है। यज्ञ के प्रति घृणाभाव रखना और इसे हेय दृष्टि से देखना उचित नहीं है। यज्ञ से तो सभी प्राणियों का उपकार होता है, यह तो हमें नित्यप्रति करना चाहिए। वेदों में इसे सर्वश्रेष्ठ कार्य की संज्ञा दी गई है और इसे करना आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक कहा गया है।

अंधविश्वास : 84 : जन्म के समय ब्राह्मण लोग जन्मपत्री, कुण्डली, मुहूर्त, चौघड़ियाँ इत्यादि बनाते हैं जिससे भविष्य का एवं जीवन में उतार-चढ़ाव का पता चलता है।

निर्मूलन : पंडित-ब्राह्मण की बनाई जन्म-कुण्डली या जन्मपत्री केवल जन्म के समय की दशा बताती है कि बच्चे का जन्म कब, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुआ है अर्थात् उस समय ग्रहों-उपग्रहों की स्थिति कैसी थी। यह केवल यादगार के लिए ही होता है। इससे भविष्य जाना जा सकता है—इसमें ब्राह्मणों तथा ज्योतिषियों का स्वार्थ निहित होता है।

जीवन में उतार-चढ़ाव का होना अनेक बातों पर निर्भर करता है। सबसे अधिक प्रभाव अपने किये कर्मों का ही पड़ता है। मनुष्य के जीवन पर देश, काल और परिस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है, परन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि तथा कर्मों से उन पर विजय पा सकता है।

नक्षत्रों, तारों, ग्रहों-उपग्रहों का हमारे जीवन में भौतिक रूप से तो प्रभाव पड़ता है, किन्तु उनका हमारे जीवन के उतार-चढ़ाव एवं भविष्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ग्रहों की स्थिति में परिवर्तन होने से सभी जीवों पर समान रूप से प्रभाव पड़ता है, किन्तु ग्रह किसी एक व्यक्ति के लिए शुभ एवं दूसरे व्यक्ति के लिए अशुभ होकर मनुष्य के जीवन को प्रभावित करे—यह सम्भव नहीं है। पंडितों तथा ज्योतिषियों द्वारा ग्रहों के आधार पर मनुष्य का भविष्य बताना एक ग़लत धारणा है। इस प्रकार की फलित विद्या से ज्योतिषी लोग मनुष्यों

को मूर्ख बनाते हैं और अपना पेट भरते हैं। यह केवल पोपलीला (मूर्ख बनाने की कला) है, इसके सिवाय कुछ नहीं है।

मनुष्य के भविष्य की बातें कोई भी नहीं बता सकता, क्योंकि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है तथा अपनी स्वतन्त्रता के कारण जब चाहे, जैसा चाहे कर सकता है। मनुष्य की स्वतन्त्रता में ईश्वर भी हस्तक्षेप नहीं करता। मनुष्य जैसा करेगा, वैसा ही भरेगा। यही ईश्वरीय नियम है। ग्रहों की स्थिति पर निर्भर रहनेवाला और ज्योतिषियों की भविष्यवाणी पर विश्वास करनेवाला व्यक्ति निकम्मा और अज्ञानी होता है। मनुष्य तो अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। ग्रहों-उपग्रहों की स्थिति में परिवर्तन से किसी मनुष्य के जीवन में उतार आए और किसी के जीवन में चढ़ाव आए—यह ईश्वरीय नियम के विरुद्ध एवं अविश्वसनीय है। इसका कोई आधार नहीं है और निराधार बात को मानना ही अन्धविश्वास कहाता है। आजकल के तथाकथित ज्योतिषियों की फलित विद्या वेदानुकूल न होने और विज्ञान के विरुद्ध होने से सर्वथा अमान्य है।

अंधविश्वास : 85 : सूर्य तथा चन्द्र को ग्रहण के समय दान देने से ग्रहण के दुष्प्रभाव छूट जाते हैं और हमारे दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं।

निर्मूलन : दान-पुण्य करना बहुत अच्छी बात है, यह एक उत्तम कार्य है। इनसे हमारे जीवन में उत्थान तो होता है, परन्तु यह एक अंधविश्वास ही है कि ऐसा करने से हमारे बुरे ग्रहों के प्रभाव छूट जाते हैं। क्या ग्रहों ने हमको पकड़ रखा है जिनसे कि हम छूट जाते हैं या ग्रह हमसे छूट जाते हैं? सूर्य अथवा चन्द्र को ग्रहण तो प्राकृतिक नियमानुसार लगते रहते हैं और छूट भी जाते हैं, भला इनका दान-पुण्य से क्या सम्बन्ध?

क्या दान-पुण्य न करने से ग्रहण के बुरे प्रभाव सदा के लिए बने ही रहेंगे? क्या व्यर्थ की बातें हैं! लगता है मानव को अन्धविश्वासों को फैलाने के सिवा और कोई काम बचा ही नहीं है! सुबह से शाम तक बस इन्हीं नासमझी की बातों में उलझा रहता है। यही कारण है कि आज मनुष्य अकारण ही बहुत दुःखी है। जो लोग इन बेतुकी बातों

पर विश्वास नहीं करते, वे अधिक सुखी हैं।

प्राय: हमने देखा है कि ग्रहण के लगने या छूटने के समय भिखारी लोग ग्रहण के नाम पर भीख माँगते हैं और ग्रहण छूटने के पश्चात् भी उनका भीख माँगने का धन्धा चलता ही रहता है। लोग उन्हें भीख में रुपये-पैसे तथा कपड़े-लत्ते इत्यादि दान के रूप में देते हैं। भिखारियों को अच्छी-खासी राशि भीख में प्राप्त हो जाती है। जो भिखारी हमारी दया पर निर्भर करते हैं, क्या उनमें इतनी क्षमता है कि वे हमें इन तथाकथित ग्रहों के प्रकोप से बचा सकें और हमारे दु:खों को दूर कर सकें? इन भीख माँगनेवालों को निकम्मा बनाने के लिए प्रोत्साहित करनेवाले हम ही हैं। लोग अपने कुलपुरोहित तथा ब्राह्मणों को भी इस अवसर पर दान देते हैं और ऐसा मानते हैं कि उन्हें दान देने से ग्रहों की उनपर कृपादृष्टि रहेगी। यह भी एक मिथ्या धारणा है।

ऐसा भी देखने-सुनने में आता है कि सूर्य-चन्द्र को ग्रहण लगने के समय लोग दान-पुण्य इत्यादि इसलिए भी करते हैं कि उनके पिछले किये गए दुष्कर्म (पाप) नष्ट हो जाते हैं। ऐसे समय में सच्चे ब्राह्मणों का कर्त्तव्य है कि वे अपने यजमानों को सत्य ज्ञान प्रदान कर उनका मार्गदर्शन करें कि ग्रहण के समय भी दान-पुण्य करने से किये हुए पाप-कर्म कदापि नष्ट नहीं हो सकते, अपितु किये गए सभी कर्मों का फल अवश्य भुगतना ही पड़ता है।

जैसा कि पहले भी लिखा है कि दान-पुण्य करना बहुत अच्छी बात है, परन्तु दान इत्यादि कुपात्र एवं सुपात्र को देखकर ही देना चाहिए। कुपात्र को दी गई दान-राशि कुकर्मों में ही खर्च होगी, इससे दानदाता पाप का भागी बनता है। सुपात्र को दी गई धनराशि शुभ कर्मों में ही प्रयुक्त होकर औरों का कल्याण करती है, इससे दानदाता को पुण्य मिलता है।

नोट : यह वैज्ञानिक सत्य है कि सूर्य-ग्रहण के समय सीधे सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए, उससे आँखों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और आँखों की रोशनी भी जा सकती है। वैज्ञानिकों की सलाह के अनुसार ही काला चश्मा अथवा किसी अन्य पदार्थ की ओट से सूर्य-

ग्रहण को देखा जा सकता है।

ग्रहण के समय प्रायः लोग घर से बाहर नहीं निकलते (विशेषतः गर्भवती महिलाएँ, क्योंकि ग्रहण का प्रभाव बच्चे के स्वास्थ्य पर पड़ता है) एवं भोजन इत्यादि भी नहीं करते। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ठीक है, क्योंकि ग्रहण का वातावरण पर तो प्रभाव पड़ता ही है। किन्तु, इसका हमारे जीवन के कर्मफल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अंधविश्वास : 86 : साधु, पीर, फ़कीर के मज़ार पर मनौतियाँ माँगने से हमारी कामनाएँ पूरी होती हैं।

निर्मूलन : जिस स्थान पर साधु, सन्त, महात्मा, पीर, फ़कीर, पैग़म्बर इत्यादि के शवों को जलाते अथवा दफ़नाते हैं, वहाँ उनकी स्मृति में समाधि-स्थल या मज़ारें बनाई जाती हैं। इन्हीं स्थानों पर आकर उनके अनुयायी या शिष्य अपनी श्रद्धांजलि देने आते हैं। कोई उनके मज़ारों पर फूल चढ़ाते हैं तो कोई चादर चढ़ाते हैं। समाधि-स्थलों पर भी लोग प्रायः फूलमालाएँ चढ़ाकर उन दिवंगत आत्माओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। इनको देखकर कुछ भक्तजन अपनी अपूर्ण इच्छाएँ या मुरादें लेकर जाते हैं कि फूलमालाएँ, चादर चढ़ाने अथवा उनकी मज़ारों पर मोमबत्ती जलाने से वे दिवंगत आत्माएँ उनकी मनोकामनाएँ पूरी करेंगी। परन्तु यह न केवल उनकी भूल है अपितु बहुत बड़ा अंधविश्वास है। जिनसे आप समाधि अथवा मज़ारों पर कुछ माँगने जाते हैं, वे स्वयं तो वहाँ विद्यमान नहीं हैं। दिवंगत आत्माएँ स्वयं अपने कर्मों के फल कहीं भोग रहे होते हैं। भला वे आपकी आवाज़ को या भावनाओं को कैसे सुन सकते हैं? साधु, सन्त, पीर, फ़कीर एवं पैग़म्बर इत्यादि सभी हमारे और आपकी तरह मनुष्य ही थे जो सत्कर्म की कमाई कर इस संसार से विदा हो गए। हाँ, उनके शुभ कर्मों पर ध्यान दें और उन्हें अपने जीवन में उतारें तो अवश्य कुछ लाभ हो सकता है; परन्तु मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी—यह भूल है। इसी को तो जड़-पूजा कहते हैं। जड़-पूजा से अवनति ही होती है, उन्नति नहीं। जड़-पूजा से हमारे अन्दर जड़ता आती है और जड़ता से कभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं? कदापि नहीं!

एक बात सदा ध्यान रखने योग्य है कि केवल ईश्वर ही वंदनीय

है। ईश्वर के स्थान पर किसी अन्य की उपासना करना या जड़ वस्तुओं से किसी प्रकार की अपेक्षा रखना अनुचित है। यह नास्तिकता का प्रतीक है। जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, वे ही जड़-पूजा इत्यादि का ढोंग करते हैं। जो इस तरह का ढोंग-दिखावा करते हैं, उनकी मुरादें कभी भी पूरी नहीं हो सकतीं। ईश्वर चेतन है, उसकी उपासना से, उसकी पूजा से अर्थात् आज्ञा-पालन से हमारी मनोकामनाएँ अवश्य पूर्ण होती हैं। पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् ही ईश्वर हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार कर फलीभूत करता है। समाधि-स्थल और मज़ार इत्यादि भी आजकल कुछ लोगों के जीवन-यापन के साधन बन गए हैं। निराश लोग मन्नत माँगने जाते हैं। जिन लोगों की मन्नतें पूरी हो जाती हैं, वे वहाँ पर जाकर धन एवं अन्य वस्तुएँ भेंट चढ़ाते हैं। मज़ारें तो उन वस्तुओं का प्रयोग नहीं करतीं, अपितु वहाँ पर उन मज़ारों या मंदिरों के निर्माता अथवा उन स्थानों के संरक्षक इत्यादि ही उन वस्तुओं का उपभोग करते हैं। यह भी एक प्रकार का व्यवसाय बन गया है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? कहीं भी जाँच सकते हैं।

अंधविश्वास : 87 : देवी-देवताओं की प्रशंसा की पत्रिका छपवाकर भेजने से व्यवसाय में बरकत होती है।

निर्मूलन : देवी-देवताओं की बातों तथा उनकी प्रशंसा की चर्चा हम इससे पहले की भ्रान्तियों के निवारण में कर आए हैं, अतः यहाँ पर उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। देवी-देवताओं की तथा साधु-सन्त महात्मा इत्यादि की केवल प्रशंसा करने से तथा पर्चियाँ छपवाकर दूसरों को भेजने से क्या लाभ ? व्यवसाय में लाभ होगा—यह तो अज्ञानता की पराकाष्ठा है—नामसमझी का इज़हार करना है।

हिन्दुओं की मान्यतानुसार 33 करोड़ देवी-देवता हैं! तो क्या इन 33 करोड़ देवी-देवताओं और प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाले नये-नये देवी-देवता तथा अनेक महात्माओं के प्रशंसापत्र छपवाकर डाक द्वारा सभी को भेजे जा सकते हैं ? इन पर इतना धन व्यय हो जाएगा कि आपके व्यवसाय में लाभ होने के स्थान पर हानि ही होगी। सचाई यह है कि सन् 1935 तक भारत की जनसंख्या केवल 33 करोड़ थी। तब लोग सदाचारी थे। भारतवासी देवी-देवता के समान पावन जीवन

बिताते थे। इस तरह हिन्दुओं के 33 करोड़ देवी-देवता प्रसिद्ध हो गए।

वैदिक मान्यतानुसार देवी-देवता तैंतीस ही हैं। ये सब जड़ देवता हैं, इनकी प्रशंसा करने से इन्हें कोई अन्तर नहीं पड़ता। तो फिर आपको दुकानदारी या व्यवसाय में लाभ कैसे हो सकता है? यह भ्रान्ति है, अन्धविश्वास है। जिनकी पूजा और प्रशंसा करनी चाहिए वह सर्वशक्तिमान ईश्वर एक है और उसको माननेवालों की संख्या आज एक अरब से भी ऊपर है।

अंधविश्वास : 88 : बड़ी माता, शीतला माता, छठी का व्रत रखने से पुत्र-प्राप्ति होती है।

निर्मूलन : बड़ी माता, छोटी माता, शीतला माता और सन्तोषी माता इत्यादि अनेक काल्पनिक माताएँ हैं। सृष्टि में कभी इनका अस्तित्व नहीं रहा। खसरा और चेचक जैसे रोगों को ही छोटी-बड़ी माता का नाम देकर पंडों-पुजारियों ने मंदिरों का व्यापार चमकाया है। जानलेवा रोगों को माता कहना मातृत्व-शक्ति को गाली देने के बराबर है। कोई भी ममतामयी माता अपने बच्चों को रोग बनकर नहीं चिमटती। सन्तोषी माता को तो 1950 ईसवी तक दुनिया में कोई जानता भी नहीं था। किसी ने फिल्म 'सन्तोषी माता' क्या बना दी, अंधविश्वासी उसी की पूजा करने लगे। जहाँ तक व्रत की बात है तो व्रत का अर्थ है 'संकल्प लेना', 'प्रतिज्ञा करना', 'सौगन्ध खाना'। पौराणिक लोग कुछ समय के लिए भोजन न करने, केवल तरल पदार्थों के सेवन करने, दिन में केवल एक समय भोजन करने, अथवा भोजन के स्थान पर फलाहार करने को ही व्रत मान बैठे हैं।

सन्तानोत्पत्ति स्त्री और पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध से ही सम्भव है। उसमें भी अनेक बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। स्त्री और पुरुष के संयोग के बिना सन्तान का जन्म नहीं हो सकता—यह प्रकृति का अटल नियम है। केवल पूजा-पाठ या व्रत रखने से ही सन्तान नहीं हो सकती। पुत्र और पुत्री उत्पन्न करने के भी कुछ नियम हैं। लोग केवल पुत्र-प्राप्ति के लिए ही नाना प्रकार के व्रत रखते हैं, पुत्री के लिए लाखों में एक ही व्रती होगा।

माताओं के व्रत रखने से मनचाहा पुत्र प्राप्त हो—ऐसा मानना

ठीक नहीं है, यह एक भ्रान्ति है। व्रत रखने अर्थात् उपवास रखने या कसम खाने से बड़ी माता या छठी का व्रत रखने से देवी प्रसन्न हो जाए—यह सम्भव नहीं।

याद रहे ईश्वर की कृपा के बिना कोई भी कार्य सफल नहीं होता। प्राकृतिक नियमों के पालन से अर्थात् व्रत धारण करने से, पति-पत्नी की क्षमतानुसार संयोग से, ऋतुदान से ही सन्तानोत्पत्ति सम्भव है। देवी-देवताओं के पूजा-पाठ या केवल काल्पनिक देवी-देवताओं के नाम पर व्रत रखने या उपवास करने से सन्तान होना सम्भव नहीं है। भगवान श्री कृष्ण ने रुक्मणी के साथ चौदह वर्ष ब्रह्मचर्य-पूर्वक तपस्या करके ही हनीमून मनाया था। वीर्य परिपक्व करके ही शरीर-सम्बन्ध जोड़ने की प्रतिज्ञा तो व्रत मानी जा सकती है, किन्तु उपवासों से शरीर सुखाना तो निपट मूर्खता है।

अंधविश्वास : 89 : सत्यनारायण व्रत तथा झाड़-फूँक से दीर्घायु प्राप्त होती है।

निर्मूलन : सत्यनारायण के व्रत से आयु अवश्य बढ़ती है, परन्तु झाड़-फूँक से आयु घटती है! क्यों, आप चौंक गए न?

सत्यनारायण का व्रत रखना अर्थात् सत्यस्वरूप परम पिता परमात्मा को साक्षी मानकर सत्याचरण करने से जीवन में सरलता और सफलता मिलती है तथा मानसिक और आत्मिक बल की प्राप्ति होती है, जीवन में सुख-शान्ति प्राप्त होती है और आयु बढ़ती है।

झाड़-फूँक से कुछ नहीं होता, केवल अमूल्य समय का नाश करना है। यह अन्धविश्वास है। झाड़-फूँक करनेवाले ढोंगी और स्वार्थी तान्त्रिक अपनी आयु क्यों नहीं बढ़ाते? ये सब मूर्ख बनाने के धन्धे हैं। आयु बढ़ाने के लिए प्रकृति के नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है। ब्रह्मचर्य के पालन, ऋतुओं के अनुसार आहार-विहार, सदाचार, व्यायाम इत्यादि से आयु अवश्य बढ़ती है।

तान्त्रिक लोगों का काम है औरों की आँखों में धूल झोंकना तथा उनके धन से अपना उल्लू सीधा करना। उल्टा-सीधा कुछ भी बुदबुदाकर—भौंहें चढ़ाकर—आँखों की पुतलियों को इधर-उधर घुमाकर ये तान्त्रिक लोग अन्धविश्वास में फँसे लोगों को मूर्ख बनाते हैं और देखनेवाले

भी बेवकूफ बनते हैं, क्योंकि वे स्वयं ही इतने दुःखी होते हैं कि उन्हें सत्य सूझता ही नहीं है। झाड़-फूँक से रत्तीभर का भी लाभ नहीं होता, अपितु धन और समय की हानि ही होती है। झाड़-फूँक पर वही लोग विश्वास करते हैं जिन्हें न तो अपने-आप पर विश्वास होता है और न ईश्वर पर भरोसा।

ईश्वर में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास अर्थात् सत्यनारायण का व्रत, वेदानुकूल आचरण, प्राकृतिक नियमों के पालन, शुद्ध खान-पान और योगाभ्यास से आयु अवश्य बढ़ती है।

अंधविश्वास : ९० : हस्तरेखा तथा ललाट-रेखा को पढ़कर ज्योतिषी हमारे भाग्य की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

निर्मूलन : हस्तरेखाएँ तथा ललाट की रेखाएँ मनुष्य के अपने-अपने कर्मों के आधार पर बनती हैं। मनुष्य जैसा चिन्तन तथा कार्य करता है, उसी के अनुसार हस्तरेखाओं में परिवर्तन होता रहता है। कठोर परिश्रम करनेवाले के हाथ कठोर होते हैं तथा कलाकारों के हाथ नर्म होते हैं। जो अधिक सोच-विचार का कार्य करता है जैसे—वैज्ञानिक, डॉक्टर, दार्शनिक इत्यादि, उनके माथे की लकीरें अधिक गहरी होती हैं तथा जो व्यक्ति हँसमुख और निश्चिंत होता है उसके ललाट पर हल्की रेखाएँ बन जाती हैं। इन रेखाओं को देखकर भाग्य पढ़ा जा सके—यह असम्भव है।

पहले यह समझना होगा कि भाग्य कहते किसे हैं। हमारे संचित कर्मों के फल जब फलित होते हैं, उसे ही 'भाग्य' कहते हैं। पूर्व-जन्म में किये जिन कर्मों को हम स्वयं नहीं जानते, उन्हें कोई दूसरा कैसे जान सकता है? जब कोई हमारे कर्मों को ही नहीं जान सकता तो उनके फल को ये ज्योतिषी लोग कैसे जान सकते हैं? ईश्वर के सिवाय कोई भी हमारे पूर्व-कर्मों तथा उनके फलों (भाग्य) को नहीं जान सकता। साथ ही यह भी सत्य है कि चाहे हम अपने पूर्व-जन्म के किये कर्मों को नहीं जानते, किन्तु जब उनका फल (सुख-दुःख) भोगते हैं तो हमें भाग्य को मानना पड़ता है, क्योंकि कोई भी काम अकारण नहीं होता। जब हम देखते हैं कि सभी मनुष्यों के भाग्य अलग-अलग हैं तो इनका कोई तो कारण होगा! मनुष्य अपने भाग्य

का स्वयं निर्माता है। हाथों या माथे की लकीरों को देखकर हमारे भविष्य के बारे में कोई भी कुछ नहीं बता सकता।

इन ज्योतिषियों की भविष्यवाणियाँ केवल सम्भावनाएँ होती हैं—कभी सच निकलती हैं तो कभी बिलकुल ग़लत भी होती हैं। हर कर्म का फल या तो बुरा होता है या फिर भला। कुछ मिश्रित फल भी होते हैं, परन्तु हस्तरेखाओं तथा माथे की लकीरों को देखकर भविष्यवाणी करना सरासर मूर्ख बनाने की बात है। रेखाएँ बदलती रहती हैं, तो क्या हमारा भाग्य हर समय बदलता रहता है? भाग्य में बदलाव आएगा तो केवल हमारे अपने कर्मों से। सड़क-किनारे बैठे दो ज्योतिषियों को परख लीजिए—एक ही व्यक्ति का हाथ देखकर दोनों ज्योतिषी एक-समान बातें नहीं बताते। दोनों इस बात का दावा करते हैं कि वे ही ठीक कह रहे हैं। आप स्वयं सोच सकते हैं कि वे दोनों ही कैसे ठीक हो सकते हैं? यदि एक सम्भावनावश ठीक हो भी गया तो दूसरा तो अवश्यमेव ग़लत ही होगा। अत: इनके चक्कर में न पड़कर पुरुषार्थ करें और मनवांछित फल प्राप्त करें। भविष्यवक्ता ज्योतिषी अँधेरे में तीर चलाते हैं—लग गया तो तीर, नहीं तो तुक्का। उनको स्वयं भी मालूम नहीं रहता कि वे क्या कह रहे हैं! जो ज्योतिषी अपने ही भविष्य के बारे में कुछ नहीं जानते, वे दूसरों की भविष्यवाणी कैसे कर सकते हैं?

ज्योतिषियों की पोथियों में केवल ग्रहों-उपग्रहों, नक्षत्रों इत्यादि आकाशीय पिण्डों की स्थिति की जानकारी होती है, इसको पंचांग कहते हैं। नक्षत्र-विद्या बिलकुल सत्य विद्या है, क्योंकि यह वेद का एक अंग है। इसको पढ़े बिना सृष्टि-चक्र का ज्ञान आधा-अधूरा रह जाता है। इतना निश्चित जानें कि इन ज्योतिषियों की मनघड़ंत फलित विद्या नितान्त झूठी है। फलित विद्या ज्योतिष-विद्या नहीं है।

स्मरण रखने योग्य बात यह है कि जो हमारे भाग्य में है (पूर्व-संचित कर्मों के आधारस्वरूप प्राप्त होनेवाले फल) वह हमें अवश्यमेव प्राप्त होता है—किन्तु न समय से पहले, और न समय के बाद। जिस प्रकार एक किसान आम का वृक्ष लगाने के लिए बीज बोता है तो उसे तुरन्त ही फल प्राप्त नहीं हो जाता, उसे प्रतीक्षा करनी पड़ती है

और समय आने पर ही उसे उसका फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार हर कर्म के फलित होने में समय लगता है और उचित समय आने पर ही हमें उसका फल भाग्य के रूप में प्राप्त होता है। "**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्**" अर्थात् हमारे किये शुभाशुभ कर्मों का शुभ या अशुभ फल अवश्य ही प्राप्त होता है, इससे कोई बच नहीं सकता और उसे भोगने से हमें कोई रोक भी नहीं सकता।

इन ज्योतिषियों के भ्रमजाल में न फँसें! जी-जान से पुरुषार्थ कर स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करें। ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था पर विश्वास रखें। हाथ की लकीरों और ललाट की रेखाओं का हमारे भाग्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

अंधविश्वास : 91 : संसार में कभी-कभी चमत्कार भी होते हैं, क्योंकि कई चमत्कारिक घटनाएँ कभी-कभार ही होती हैं!

निर्मूलन : जिन्हें आप चमत्कारी घटनाएँ कह रहे हैं वे चमत्कार नहीं, अपितु प्राकृतिक नियमानुसार ही होती हैं। जिन नियमों को हमने जाना नहीं है, समझा नहीं है, हम उनको चमत्कार का नाम देते हैं।

वास्तव में जिन-जिन नियमों को मनुष्य ने जाना-परखा है, उसको विज्ञान मान लिया है। जिन नियमों को मनुष्य ने अभी तक जाना नहीं है, उनको चमत्कार समझ लिया जाता है।

महाभारत-काल में (आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व) जब संजय धृतराष्ट्र को आँखों-देखी युद्ध की घटनाएँ सुनाता है तो अधिकतर लोग उसे चमत्कार कहने लगे। परन्तु आज टी.वी. के माध्यम से हम सभी अमेरिका (पाताल-लोक) में घटनेवाली घटना तत्काल (live) देख लेते हैं। वही घटना अज्ञानता में घिरे जंगली मनुष्य के लिए आज भी चमत्कार है।

अंधविश्वास : 92 : तुलसी की पूजा एवं प्रतिवर्ष उसका विवाह पीतल के बालकृष्ण से करने, तुलसी को गन्ध, धूप-दीप, नैवेद्य, वस्त्र, कंगन इत्यादि देने से आरोग्य बढ़ता है।

निर्मूलन : जिस अर्थ में लोग 'पूजा' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह नितान्त मूर्खता है। तुलसी का लाभ मिलता है उसके सेवन से, न कि पूजन से। तुलसी उग्र और गरम तासीर की है, अतः पित्त

प्रकृतिवाले को तुलसी-सेवन से हानि की ही आशंका है। उसका हर वर्ष विवाह करना, उस पर गन्ध, धूप-दीप, नैवेद्य इत्यादि अर्पित करना और उसको कपड़े-लत्ते-कंगन आदि पहनाने से आरोग्य बढ़ने की बातें अन्धविश्वास और अज्ञानता का प्रतीक हैं। आप ही सोचकर बताएँ कि क्या जड़ वस्तुओं की शादी या उनको कपड़े-लत्ते पहनाकर आभूषणों से सजाना-सँवारना उचित है? जड़ वस्तुओं का विवाह नहीं होता। धूप-अगरबत्ती इत्यादि से पौधे को कोई लाभ नहीं होता। जड़ वस्तुओं में इन्द्रियाँ इत्यादि नहीं होतीं क्योंकि उनमें चेतनता नहीं होती। अत: उनको कपड़े या जेवर पहनाना व्यर्थ है।

तुलसी की वास्तविक पूजा है उस पौधे की देखभाल करना, उसके पत्तों का उपयोग करना। उसको हाथ जोड़ना या दीप-नैवेद्य दिखाना तो मज़ाक है, ढोंग है, दिखावा है और केवल समय का नाश करना है।

तुलसी के पौधे में अनेक गुण हैं। उसमें अनेक रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता है। इसीलिए तुलसी के पौधे को पवित्र माना जाता है। आयुर्वेद के द्वारा आप इसकी अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। तुलसी के पत्तों की चाय पीने से बुखार, सर्दी, ज़ुकाम इत्यादि रोग भाग जाते हैं।

हर घर के आँगन में तुलसी का पौधा होना बहुत लाभकारी होता है। इससे घर के भीतर रोग नहीं आते, क्योंकि तुलसी रोगों से हमारी रक्षा करती है। तुलसी एक अत्यन्त लाभकारी एवं प्रभावशाली ओषधि है। उससे नीरोगता प्राप्त होती है, अत: उसे देवी की संज्ञा देने में कोई आपत्ति नहीं है। हाँ, उससे चेतन-सा व्यवहार करना अन्धविश्वास है, भ्रान्ति है।

अंधविश्वास : 93 : गौ माता एवं गंगा माता की पूजा से बहुत पुण्य मिलता है।

निर्मूलन : पूजा का सही अर्थ पूर्वलिखित भ्रान्तियों के निवारण में लिख आए हैं, अत: उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

भारतीय संस्कृति में गऊ को माता का दर्जा दिया गया है। इसी प्रकार गंगा को भी मैया कहकर पुकारते हैं। गाय का दूध और गंगा

का पानी अमृत के समान होता है इसलिए इन दोनों को माता कहकर सम्मान प्रदान करते हैं। जिस प्रकार एक माँ अपने बच्चे का पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार गऊ का दूध मनुष्यों के लिए बहुत लाभदायक एवं स्वास्थ्यवर्धक है। उसमें अन्य पशुओं के दूध की अपेक्षा अधिक गुण होते हैं और यह सात्त्विक होता है, इसीलिए गाय के दूध को अमृत कहा जाता है।

केवल गाय ही ऐसा पशु है जिसका गोबर और मूत्र भी मनुष्य के लिए अमृत है। इतने सारे गुण किसी अन्य पशु में नहीं होते। गाय का दूध तो लाभकारी होता ही है, गोबर भी खेतों में खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है तो आजकल की अन्य खादों से दस गुणा अधिक लाभप्रद है। गो-मूत्र भी अनेक रोगों को दूर करने में सहायक होता है। इससे कई प्रकार की दवाइयाँ बनाई जाती हैं। गाय का दूध स्वर्ण (सोना) युक्त होता है, इसलिए गाय का दूध अमृत के तुल्य मानना उचित है। सदियों से महिलाएँ अपने कच्चे फ़र्श के चौके-चूल्हे गोबर से ही पोतकर पवित्र मानती आई हैं।

गंगा नदी का जल इसलिए पवित्र माना जाता है क्योंकि वह गंगोत्री (हिमालय) से निकलती है। पर्वतों से निकलती हुई मैदानों तक आते-आते अनेक जड़ी-बूटियों एवं ओषधियों के सम्पर्क में आने से उस जल में अनेक रोगनाशक गुण आ जाते हैं जिससे शरीर के अधिकांश रोग दूर हो जाते हैं। विशेषतः त्वचा के रोगों में गंगा-जल अत्यन्त लाभकारी होता है। ओषधि-गुण-युक्त होने से गंगाजल कई वर्षों तक खराब नहीं होता और इसे वर्षों तक सँभालकर रखा जाता रहा है। जिसके पीने से शरीर के आंतरिक रोग भी दूर होते हैं—ऐसे गुणों को धारण करनेवाली गंगा को यदि माता कहकर पुकारा जाए तो कोई अनुचित बात नहीं है। परन्तु ये सब प्राचीन काल की बातें हैं जब हमारा भारतवर्ष (आर्यावर्त्त) प्रदूषणमुक्त था। वर्तमान युग कल-कारखानों का युग है, वैज्ञानिक युग है जिसमें भौतिक उन्नति के साथ प्रदूषण आदि के कारण कई प्रकार की हानियाँ भी हो रही हैं। पर्वतों से आते-आते अनेक प्रदूषणयुक्त स्थानों से होती हुई गंगा की धारा भी अपने गुण खो चुकी है। सागर से मिलने तक प्रदूषण की अधिकता

के कारण आज की गंगा वैसी नहीं, जैसी कि वर्षों पहले हुआ करती थी। आज गंगा मैली हो गई है जिसका पानी भी गंदा हो गया है। पहले जहाँ गंगा के पानी से रोगों का नाश होता था, आज कई स्थानों पर गंगा का पानी पीना तो क्या, नहाने योग्य भी नहीं रहा है। फिर भी गंगा के प्रति लोगों की आस्था कम नहीं हुई है।

गंगा की पूजा का सही अर्थ है—गंगा नदी के पानी का सदुपयोग करना, उससे नहरें निकालकर दूर-दराज़ के सूखाग्रस्त गाँवों तक पहुँचाना, खेती के काम में लाना जिससे अधिक फसल उगाई जा सके। जहाँ गंगा नदी का बहाव बहुत अधिक है अथवा जहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ आ जाती है, वहाँ पर बाँध इत्यादि निर्माण कर, बिजली का निर्माण कर जन-कल्याण किया जाए। गंगा के पानी से जहाँ हम हर प्रकार से लाभ उठाएँ, वहाँ उसको दूषित होने से भी बचाएँ—यही गंगा की सही अर्थों में पूजा होगी और हम पुण्य के भागी बनेंगे।

अंधविश्वास : 94 : जब भाग्य में ही दुःख लिखे हैं, तब बड़ों के आशीर्वाद भी कुछ नहीं सँवार सकते!

निर्मूलन : आशीर्वाद किसी का भी मिले वह अच्छा ही होता है, फलता है कि नहीं फलता यह तो कर्म-सिद्धान्तों पर निर्भर करता है। फल तो किये गए कर्मों का ही मिलता है। जैसा कर्म किया है वैसा ही फल प्राप्त होता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविना।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥

(मनुस्मृति 2/121)

अर्थात् बड़े-बुजुर्गों और विद्वानों के आशीर्वाद से आयु, विद्या, यश और बल—ये चार बढ़ती हैं, और जो इनका आशीर्वाद नहीं लेते उनको ये चारों प्राप्त नहीं होतीं। इसमें भी अनेक वैज्ञानिक कारण हैं। आशीर्वाद का अर्थ है शुभ वचन, जिनका प्रभाव हमारे मन-मस्तिष्क पर पड़ता है। इससे मन में शान्ति की लहर दौड़ जाती है और यही शान्ति हमारे जीवन में प्रसन्नता लाती है जिससे हमारे कार्यों के करने में स्फूर्ति और शक्ति प्राप्त होती है। जो कार्य उत्साह, श्रद्धा और गुरुजनों के आशीर्वाद से किये जाते हैं, उनका फल अवश्यमेव अच्छा

ही मिलता है। मनु महाराज कहते हैं—

- आशीर्वाद लेते समय या चरण स्पर्श करते समय दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते कहना चाहिए। *(मनुस्मृति 2/71)*
- गुरुजनों के पाँव स्पर्श करते समय ध्यान रखें कि दाहिना हाथ उनके दाहिने पाँव पर और बायाँ हाथ उनके बाएँ पैर पर होना चाहिए। *(मनुस्मृति 2/72)*
- मनुष्यों को चाहिए कि वह वैदिक ज्ञान (भौतिक अथवा आध्यात्मिक) की प्राप्ति के लिए पहले गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त करें। *(मनुस्मृति 2/117)*

माता-पिता, गुरु तथा वैदिक विद्वानों के आशीर्वाद अवश्य लेने चाहिएँ, क्योंकि आशीर्वचन प्रायः इस प्रकार के होते हैं—"सदा सुखी रहो", "आयुष्मान् भव", "तेजस्वी भव", "ओजस्वी भव", "वर्चस्वी भव", "श्रीमान् भव", "विजयी भव", इत्यादि। स्त्रियों के लिए प्रायः इस प्रकार के आशीर्वचन होते हैं—"सौभाग्यवती भव", "पुत्रवती भव", "आयुष्मती भव", "तेजस्विनी भव", "ओजस्विनी भव", "वर्चस्विनी भव", "श्रीमती भव" इत्यादि। जब स्त्री-पुरुष दोनों एक-साथ किसी बड़े-बुजुर्ग एवं गुरुजनों का आशीर्वाद लेते हैं तो उन्हें इसी प्रकार के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं—"सदा सुखी रहो, फूलो-फलो, दूधों नहाओ पूतों फलो, दिन रात चौगुनी उन्नति करो, इत्यादि। इन आशीर्वादों को सुनकर भला किसका मन प्रफुल्लित नहीं होगा? इन आशीर्वचनों को सुनकर स्फूर्ति आती है और मानसिक बल बढ़ता है।

जैसे गाली अथवा अशुभ वचन सुनने से मन अशान्त हो जाता है, वैसे ही आशीर्वाद प्राप्त होने से मन को शान्ति प्राप्त होती है। मन को शान्ति किसे नहीं चाहिए? जो शान्ति हमें भौतिक पदार्थ नहीं प्रदान कर सकते, वह शान्ति हमें आशीर्वाद से प्राप्त होती है।

सबसे बड़ा आशीर्वाद तो परम पिता परमात्मा का लेना चाहिए। इसके लिए हमें सुपात्र बनना होगा तथा सही अर्थों में मनुष्य बनना होगा।

माता-पिता, गुरु, आचार्य, अतिथि (वैदिक विद्वान) का यथासम्भव

आशीर्वाद प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, इसमें कोई भ्रान्ति या अन्धविश्वास नहीं है।

अंधविश्वास : 95 : दायाँ हाथ शुभ और बायाँ अशुभ होता है।

निर्मूलन : अपने दाहिने हस्त अर्थात् सीधे हाथ को दायाँ और वाम हस्त अर्थात् उल्टे हाथ को बायाँ कहते हैं। अधिकांश लोग दाहिने हाथ से ही अपने प्रमुख कार्य करते हैं। हमारे दोनों ही हाथ हमारे शरीर के महत्त्वपूर्ण अंग हैं जिनसे हम सभी कार्य करने में सक्षम होते हैं। एक हाथ दायाँ अथवा बायाँ न होने पर कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है, यह उस व्यक्ति से पूछें जिसका एक हाथ नहीं है। दायाँ हो या बायाँ, दोनों ही हाथ अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हैं। इनमें कोई शुभ या अशुभ नहीं होता। हाँ, इतना अवश्य है कि जो कार्य हम दाएँ हाथ से करते हैं वह अभ्यास न होने के कारण बाएँ हाथ से करना कठिन है। इसी प्रकार जो कार्य हम बाएँ से करते हैं वह दाएँ से करें तो कठिनाई आती है।

यज्ञ-कर्म में दाहिने हाथ से आहुति दी जाती है और दाएँ हाथ से ही हम खाते हैं। इसलिए यह सम्भव है कि अनेक लोग दाएँ को शुभ मानते हों। चूँकि बाएँ हाथ से हम शौचादि की शुद्धि का कार्य करते हैं, इसलिए हो सकता है कि लोग बाएँ हाथ को अशुभ मानते हों। परन्तु दोनों ही हाथ हमारे शरीर के अंग हैं; इन्हें शुभ या अशुभ कहना अनुचित है, भ्रान्ति है, वहम है और अन्धविश्वास है।

कुछ लोग Lefty होते हैं, अर्थात् वे अपने सभी प्रमुख कार्य बाएँ हाथ से ही करते हैं। उनके लिए तो इस भ्रान्ति के अनुसार बायाँ शुभ और दायाँ अशुभ हो जाएगा। वे बाएँ हाथ से ही खाना खाते हैं और उससे ही लिखते हैं—यह उनकी बचपन से ही आदत बन जाती है, संस्कार बन जाते हैं, इसे क्या कहेंगे?

धुले-धुलाए दायाँ-बायाँ दोनों हाथ शुभ होते हैं। शुभाशुभ तो कर्म होते हैं, न कि हमारे शरीर के अंग।

अंधविश्वास : 96 : परीक्षा में जाते समय स्याही गिराकर हाथ में लगाना शुभ होता है।

निर्मूलन : हो सकता है कि जल्दबाज़ी में परीक्षा में जाते समय, किसी विद्यार्थी के हाथ में स्याही लग गई हो या असावधानी के कारण उसके ऊपर गिर गई हो और उसे हाथ धोने तक का समय न मिला हो। वही छात्र उस परीक्षा में बहुत अच्छे अंक लाया हो और सर्वप्रथम आया हो। यह देखकर अन्य विद्यार्थियों ने यह समझ लिया हो कि परीक्षा से पहले हाथों पर स्याही गिराना शुभ होता है। यह भ्रम है। अन्धविश्वास है। इस तरह स्याही लगाने से शुभ की बजाय अशुभ की संभावना अधिक है, क्योंकि हाथों में लगी स्याही से उत्तर-पत्र खराब हो सकते हैं और लिखा-लिखाया न पढ़ पाने के कारण उसे कम अंक प्राप्त हो सकते हैं।

विद्यार्थी के लिए शुभ क्या और अशुभ क्या! जो विद्यार्थी जितना अध्ययन करता है, परिश्रम करता है, उसी के अनुरूप वह अंक प्राप्त करता है। परीक्षा का परिणाण इस बात पर निर्भर करता है कि प्रश्नों के उत्तर वह किस प्रकार देता है। उत्तर सही और उचित होंगे तो उसे अंक भी यथेष्ट प्राप्त होंगे। जो विद्यार्थी पूरा वर्ष नियमपूर्वक पढ़ाई करता है, उसे हाथ में स्याही लगाकर परीक्षा में जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रकार का अन्धविश्वास करना कि हाथों पर स्याही गिरने से शुभ होगा—यह अज्ञानता है।

अंधविश्वास : 97 : घर से निकलते समय अकेला ब्राह्मण, नया घड़ा, तेल का घड़ा, तेली, संन्यासी, कुबड़ा, रजस्वला स्त्री का दिखना और बिल्ली द्वारा रास्ता काटना अशुभ होता है।

निर्मूलन : सब प्राणी ईश्वर की ही सन्तानें हैं और ईश्वर अपनी सन्तानों को शुभ या अशुभ नहीं बनाता। मनुष्य अपने कर्मों से ही शुभ-अशुभ होता है। तेली, कुम्हार, चमार, कुली अथवा लूला-लँगड़ा, कुबड़ा या विकलांग इत्यादि का दिखना शुभ या अशुभ नहीं होता। हाँ, इनको देखने से हमारे मन में इनके प्रति दया का भाव उत्पन्न होता है तो यह शुभ लक्षण है। किसी व्यक्ति द्वारा किये गए कार्यों का प्रभाव तो हमारे जीवन पर पड़ता है, किन्तु केवल किसी के दर्शनमात्र से हम पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

कोई भी व्यवसाय बुरा नहीं होता, बुरे होते हैं व्यक्ति के आचार और विचार। जूता बनाकर बेचना, भार ढोना, सामान पहुँचाना अथवा तेल का व्यापार करना इत्यादि सभी सामान्य कार्य हैं। ब्राह्मण, विद्वान, संन्यासी, ये सभी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, जिनका कार्य है समाज को जागरूक रखना और विद्या द्वारा ज्ञान प्रदान करना। भला इनके दर्शन–मात्र से किसीका अशुभ कैसे हो सकता है? ऐसे पूजनीय व्यक्तियों से इतनी उपेक्षा क्यों? उनकी बातें श्रवण करने योग्य एवं ज्ञानवर्धक होती हैं। मूर्ख अज्ञानी लोग इनसे इसलिए कतराते हैं कि कहीं ये विद्वान लोग हमारी ही सफाई न कर दें। मूर्ख लोग अज्ञानता में ही रहना चाहते हैं और उनको ज्ञान के प्रकाश से भय लगता है। यही कारण है कि सामान्य लोग इनके दर्शन–मात्र से भी डरते हैं और इन्हें अशुभ मानते हैं।

कहते हैं कि आँखों पर जैसा चश्मा पहनेंगे, दुनिया वैसी ही दिखती है। काला चश्मा पहनने से सब काला ही काला दिखता है और श्वेत चश्मे से सब सफेद ही दिखाई देता है। परन्तु वास्तविकता तो कभी नहीं बदलती। व्यक्ति स्वयं जैसा होता है, दूसरे भी उसे वैसे ही नज़र आते हैं। अच्छे मन वाले व्यक्ति को सभी अच्छे ही लगते हैं और छल–कपट करनेवाला व्यक्ति सबको दुष्ट ही समझता है। पुलिसवाला सबको शक की नज़रों से देखता है, क्योंकि हर समय उसका वास्ता ऐसे ही लोगों से पड़ता है।

घर से निकलते समय यदि हम कोई अशुभ कार्य करने जा रहे हैं और सामने कोई देख रहा हो तो हमें भय, लज्जा और शंका का अनुभव होने लगता है। उसी प्रकार यदि हम कोई शुभ कार्य करने जा रहे हैं और कोई व्यक्ति हमें देखता है तो हमें किसी प्रकार का भय और लज्जा का अनुभव नहीं होता, अपितु हमारे मन में उल्लास और निर्भयता का अहसास होता है। सामने से कोई भी दिखे, उसके लिए तो सभी प्राणी समान ही होते हैं। यह सब व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह स्वयं कैसा है! हमारे विचार और कर्म शुभ हों तो हमें किसी के द्वारा अहित किये जाने का भय नहीं होता। जब हमारे मन में किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं होती तो अन्य भी हमारे प्रति

कोई दुर्भावना नहीं रखते—ऐसा मानना चाहिए।

किसी कार्य पर जाते समय हमारे सामने कोई कुत्ता, बिल्ली अथवा किसी भी अन्य प्राणी के आने या उसके रास्ता काटने से हमारे कार्य पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता, निश्चिंत रहें। ये सब अज्ञानता की बातें हैं। ये सब वहम हैं। मानसिक रोग हैं।

अंधविश्वास : 98 : विवाह के समय मिट्टी के पात्र का टूटना अशुभ होता है।

निर्मूलन : कोई भी वस्तु जब टूटती है तो सबको बुरा ही लगता है। इसलिए नहीं कि वह अशुभ होता है, परन्तु इसलिए कि उस वस्तु का हम अधिक प्रयोग करने से वंचित रह जाते हैं।

विवाह के समय मिट्टी के पात्रों की आवश्यकता पड़ती है और विशेषतः दीये और घड़े की, जो मिट्टी के बने होते हैं। यदि वह पात्र टूट जाए और उस समय दूसरा कोई पात्र उपलब्ध न हो तो असुविधा होने से समय की भी बर्बादी होती है। परन्तु यदि उस पात्र के स्थान पर दूसरे पात्र से काम चलाया जा सकता हो तो फिर शुभ या अशुभ का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

वैसे भी मिट्टी के पात्र इतने अमूल्य नहीं होते। उनके टूटने से विवाह में कुछ अशुभ होगा—यह अन्धविश्वास ही है।

जो वस्तु बनी है वह तो टूटनी ही है, आज टूटे या कल, परन्तु टूटेगी अवश्य। जो वस्तु टूटती है उसके स्थान पर दूसरी वस्तु का उपयोग किया जा सकता है। विवाह के समय मिट्टी का बना पात्र टूटता है तो क्या कर सकते हैं? असावधानी के कारण वह पात्र टूट गया तो इससे विवाह का कार्य तो रुकता नहीं; विवाह तो होता ही है। यूँ तो सभी के जीवन में सदैव कुछ न कुछ शुभ अथवा अशुभ होता ही रहता है, किन्तु इसे किसी पात्र के टूटने के साथ जोड़ना सर्वथा अनुचित है। जिन लोगों के विवाह में कोई पात्र नहीं टूटता तो इसकी क्या गारंटी है कि उनके जीवन में कुछ भी अशुभ नहीं घटेगा? अतः शुभ और अशुभ का होना हमारे पूर्व-जन्म के संचित कर्मों अर्थात् भाग्य और वर्तमान के कर्मों पर निर्भर करता है।

अंधविश्वास : 99 : जब किसी कार्य के लिए जा रहे हों और

सामने से जल से भरा कलश दिखाई दे तो शुभ, और खाली हो तो अशुभ माना जाता है।

निर्मूलन : जिन व्यक्तियों को अपने मानसिक और आत्मिक बल पर पूर्ण विश्वास होता है, वे इन बेकार की बातों में अपने-आप को नहीं उलझाते। जलयुक्त कलश हो या खाली, इससे किसी कार्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

आशावादी मनुष्य सदा अपने कर्मों पर अधिक ध्यान देता है। इसके विपरीत निराशावादी मनुष्य केवल अशुभ बातों में ही अपना अमूल्य समय गँवाता है। मान लीजिए किसी कलश अथवा किसी पात्र में आधा जल भरा हुआ है, तो यह देखनेवाले के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह उसे कैसे देखता है! आशावादी की नज़रों में वह कलश उसे आधा भरा हुआ दिखेगा, और निराशावादी मनुष्य को वही कलश आधा खाली दिखाई देगा। यह तो अपना-अपना दृष्टिकोण है जो कि कालान्तर में स्वभाव बन जाता है।

आप अपने कार्य से कहीं जा रहे हैं और खाली कलश या पात्र दिखे तो इससे आपके कार्य में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ सकती। इन बातों में वहम करना अन्धविश्वास नहीं तो और क्या है? मान लीजिए कि पूरा भरा हुआ कलश आपके ऊपर छलक जाए तो क्या यह शुभ होगा?

कोई व्यक्ति जब किसी कार्य के लिए जा रहा हो और उसे जल से भरा कलश दिखाई दे तो इस बात की क्या गारंटी है कि वह जिस कार्य के लिए जा रहा है उसमें सफल हो ही जाएगा? व्यक्ति की सफलता और असफलता उसकी योग्यता और परिश्रम पर निर्भर करती है। जो व्यक्ति परिश्रम में विश्वास करता है, वह इस बात की चिन्ता नहीं करता कि सामने से जल से भरा कलश दिखाई देता है अथवा खाली कलश। वह व्यक्ति तो आत्मविश्वास से भरा होता है और वही आत्मविश्वास उसे सफलता दिलाता है। इसलिए भरे और खाली कलश के चक्कर में न पड़ें! मन लगाकर काम करें, आपको सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

अंधविश्वास : 100 : पक्षियों की ध्वनि शुभ और कुत्ते का

रोना या कान खुजाना अशुभ होता है।

निर्मूलन : वैसे तो सभी पशु-पक्षियों की ध्वनि अलग-अलग होती है जिनकी नकल स्वयं मनुष्य भी करता है, अतः इनको शुभ-अशुभ कहना उचित नहीं है। इसमें भ्रम या अन्धविश्वास की कोई बात नहीं है।

कोयल की आवाज़ (कूक) सबको अच्छी लगती है और गधे का हींकना किसी को भी अच्छा नहीं लगता। वैसे ही कौए की काँव-काँव कानों को नहीं भाती और चिड़ियों की चहचहाहट सबको भली लगती है। बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ प्रायः अच्छी लगती है, परन्तु बिल्ली जब रात को रोती है,चिल्लाती है, कुत्ता भौंकता है तो अच्छा नहीं लगता। कुत्ते का भौंकना क्या किसी को पसन्द आता है ? परन्तु इसे नकारा नहीं जा सकता कि ये उनकी बोलियाँ हैं। हो सकता है जैसे हमको कुछ जानवरों की आवाज़ें (बोलियाँ) अच्छी नहीं लगतीं, वैसे ही उनको भी हमारी आवाज़ अच्छी न लगती हो।

कभी-कभी इन पशु-पक्षियों की आवाजें हमारे लिए चेतावनी का काम करती हैं, क्योंकि इनकी ज्ञानेन्द्रियाँ स्वज्ञा से ही हम मनुष्यों से अधिक सूक्ष्म (Sensitive) होती हैं। ये जानवर बड़ी दूर की ध्वनि बहुत सरलता से सुन सकते हैं। भूकम्प, आँधी या वर्षा की प्राकृतिक विपदाओं का इनको बहुत जल्दी ज्ञान हो जाता है। जब कुत्ता बिना वजह के बहुत भौंकता है तो समझो कुछ ही समय में भूकम्प आनेवाला है।

अंधविश्वास : 101 : पीले वस्त्र में सात गाँठें लगाकर चौराहे पर फेंकने से सब मुसीबतें टल जाती हैं।

निर्मूलन : पीले, लाल, काले या सफेद वस्त्र में सात गाँठें लगाएँ या उससे भी अधिक, इससे मुसीबतें घटती या टलती नहीं—उल्टा और बढ़ जाने की सम्भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। क्योंकि, अगर सभी ऐसा ही करेंगे और सभी लोग चौराहों पर इस तरह से गन्दगी फैलाते रहेंगे, तो हो सकता है किसी दिन सफाई-कर्मचारियों के चंगुल में फँस जाएँ और हमें अपनी करनी का फल भोगना पड़े अथवा हवालात की सैर करनी पड़े! आप स्वयं ही खुद को मुसीबतों के रास्ते पर

डाल रहे हैं। पीले वस्त्र को गाँठें लगाकर चौराहे में फेंकने का मतलब है अपनी मुसीबतों को दूसरों पर लादना। यह तो बुरी बात है, सरासर अन्याय है। है न?

ऐसा हमने भी देखा है कि हर सोमवार को कई दुकानदार अपने दुकान के प्रवेश–द्वार पर ताज़ा नींबू–मिर्ची बाँधते हैं और पिछले सप्ताहवाली पुरानी सड़ी हुई नींबू–मिर्च चौराहों पर फेंक देते हैं कि उनकी कमाई को नजर न लगे। यह सब नादानी है, अन्धविश्वास है, पाखण्ड है।

गेरुए या पीले वस्त्र में सात गाँठें बाँधकर उसे चौराहे में फेंक देने से मुसीबतें टल जाती हैं—यह किसी भी धर्मशास्त्र में कहीं भी नहीं लिखा, तो फिर आप लोगों ने (जिनकी ऐसी मान्यता है) यह सब कहाँ से सीखा है? क्या आपके पास इसका कोई उत्तर है? हम समझते हैं कि इसका उत्तर आप नहीं दे सकते, क्योंकि यह सब पाखण्ड है जिसके सर–पैर नहीं होते। यह देखा–देखी की भेड़चाल है। अच्छे–भले मनुष्य से भेड़ बन जाना क्या उचित है?

यदि हम सफाई रखेंगे, राहों–चौराहों को स्वच्छ रखेंगे तो इससे यातायात में बाधा नहीं पड़ेगी। अन्यथा, इस दुष्कर्म के कारम हमें नाना प्रकार की मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता है।

अंधविश्वास : 102 : बुखार आने पर बच्चे के शरीर पर ऊपर से नीचे की ओर आँचल फिराने से बुखार उतर जाता है।

निर्मूलन : केवल आँचल को ऊपर से नीचे फेरने से बीमार बच्चों का ज्वर निकल जाता तो भगवान धन्वन्तरि, चरक और सुश्रुत को जड़ी–बूटियों के प्रभाव न जाँचने पड़ते। हाँ, आँचल या कोई स्वच्छ कपड़ा गीला करके बच्चे के माथे पर रखा जावे और धीरे–धीरे सिर से पाँव तक शरीर पोंछा जाए तो इससे उसका बुखार कम हो सकता है। अधिक बुखार (101 डिग्री फेरनहाइट और उससे अधिक बुखार) की स्थिति में डॉक्टर भी ऐसी ही सलाह देते हैं कि जब कभी छोटे बच्चों का बुखार बढ़ने लगे तो माताओं को चाहिए कि वे बर्फ के ठण्डे पानी में पट्टियाँ डुबाकर बच्चे के माथे पर रखें और पूरे शरीर को गीले कपड़े से पोंछती रहें। बार–बार ऐसा करने

पर बुखार कम होने लगता है। किन्तु, इससे रोग पीछा नहीं छोड़ता, क्योंकि बुखार तो विकार का लक्षण है।

बुखार का चढ़ना-उतरना अनेक कारणों पर निर्भर करता है। इलाज तो विकार दूर करने का होगा। सुनी-सुनाई बातों पर बिना प्रमाण के कभी विश्वास न करें। इससे लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है।

अंधविश्वास : 103 : श्रावण मास के श्रवण नक्षत्र में मकान के बाहर दीवार पर चित्र बनाकर उसे सेवइयाँ खिलाने से घर में खुशहाली बनी रहती है।

निर्मूलन : इस अन्धविश्वास का निर्मूलन करने से पहले जिन्होंने ऐसी भ्रान्ति फैलाई है उनसे हम कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं—

- क्या किसी ने श्रवण नक्षत्र को देखा है?
- क्या ये नक्षत्र आपके घर में सेवइयाँ खाने आते हैं या आ सकते हैं?
- क्या श्रवण नक्षत्र इतने छोटे हैं कि आपके घर की दीवार पर चिपक सकें और सेवइयाँ खा लें?
- श्रवण नक्षत्र कैसे आते और चले जाते हैं?
- उनको आने-जाने के लिए आप कौन-सा वाहन भेजते हैं?
- उनके यहाँ आने से वहाँ (जहाँ से वे आते हैं) की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता?
- जब श्रवण नक्षत्र आपके घर में सेवइयाँ खाने आते हैं तो दूसरों के यहाँ कैसे जा सकते होंगे, अर्थात् सबके यहाँ एक-साथ कैसे पहुँचते होंगे?

कितनी व्यर्थ की बातें हैं! वास्तव में ये नक्षत्र इतने बड़े होते हैं कि आप उनका अनुमान भी नहीं कर सकते।

श्रवण नक्षत्र को देखे बिना दीवार पर कोई भी काल्पनिक चित्र खींचकर आप स्वयं को ही ठग रहे हैं। स्वरचित चित्र पर सेवइयाँ चढ़ाना कहाँ की समझदारी है? हमारे देश में कितनी दरिद्रता है, क्या आप जानते हैं? जो लोग झोपड़ियों में रहते हैं, दूर-दराज के जंगलों में रहते हैं, शहरों-गाँवों से दूर रहते हैं, क्या आप उनकी स्थिति को जानते हैं? अनेक लोग अभी भी इस देश में हैं जिन्हें दो समय का

भोजन भी नसीब नहीं होता। ऐसे में सेवइयों तथा अन्य खाद्य पदार्थों को व्यर्थ में नष्ट करना क्या आपको उचित लगता है ?

हम इन निर्धनों की दशा पर तो ध्यान नहीं देते और अन्धविश्वासों में भरोसा करके जड़ वस्तुओं को भोग लगाते हैं, जो कभी इन खाद्य पदार्थों को ग्रहण नहीं कर सकते। कितना बड़ा मज़ाक होता है हमारे इस महान् देश में! इसका उत्तरदायी कौन है ? केवल वही लोग उत्तरदायी हैं जो गरीबों का निवाला छीनकर जड़ वस्तुओं में, मिट्टी में मिला देते हैं।

खाना-पीना और मिठाई-सेवइयाँ यदि किसी गरीब को खिलाएँ तो अवश्य ही उनकी दुआओं से आप लाभान्वित हो सकते हैं। उन गरीबों के मन से निकली दुआएँ अपना रंग दिखाती हैं। इस प्रकार का पुण्य करें तो घर की खुशहाली बनी रहती है और उसमें वृद्धि होती है।

दीवार को क्या मालूम कि आप क्या कर रहे हैं! उल्टा, थोड़ी ही देर में दीवार पर चूहे और चींटियाँ जमा हो जाएँगे। हाँ, अगर आप घर के आँगन में खाद्य पदार्थ डालते हैं कि चूहे-चींटियों या कुत्तों को भोजन मिले तो यह बहुत अच्छा कार्य है, क्योंकि यह 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' का ही स्वरूप है। परन्तु यदि ग्रह-नक्षत्रों के लिए सेवइयाँ दीवार पर चढ़ाते हैं कि श्रवण नक्षत्र ग्रहण करेंगे और आपके घर में खुशहाली होगी, तो यह अन्धविश्वास के सिवा कुछ नहीं।

अंधविश्वास : 104 : नई साड़ी पर थोड़ा सा पैच (पैबन्द) लगाने से उस महिला को बुरी नजर नहीं लगती।

निर्मूलन : नई साड़ी पर थोड़ा पैच (पैबन्द) लगाने से यदि नज़र नहीं लगती तो पूरी साड़ी पर अधिकाधिक पैच लगाने चाहिएँ, इससे जीवन-भर नज़र लगने की सम्भावना नहीं रहेगी। यदि महिलाओं को ऐसा लगता है कि नई साड़ी पहनकर पार्टी या विवाह के अवसर पर पहनने से उन्हें नज़र लगती है तो हमारी राय है कि वे नई साड़ी को घर लावें, उसे अनेक टुकड़ों में काटकर उन टुकड़ों को जोड़ें और वह साड़ी बिना इस्त्री किये ही पहनकर विवाह अथवा अन्य किसी पार्टी में भाग लें। इससे उन्हें कभी नज़र नहीं लगेगी।

लगता है आजकल पाखंडियों को कोई काम-धंधा नहीं रहा और व्यर्थ की बातों में ही अपना बहुमूल्य समय गँवाते हैं।

किसी महिला की नई साड़ी असावधानीवश फट गई और वह अन्य साड़ी न खरीद पाने के कारण मजबूर होकर उसी साड़ी पर पैच लगाकर चली गई। जब लोगों ने उससे पूछा कि ऐसा क्यों किया तो उसने हँसी में कह दिया कि ऐसा करने से बुरी नजर नहीं लगती। बस, फिर क्या था! एक नये अन्धविश्वास का जन्म हो गया! यह एक फैशन बन गया! तभी तो आजकल के बच्चे जान-बूझकर नई जीन्स को पैच लगाते हैं, या नई जीन्स के घुटनों के भाग को कैंची से काटते हैं और पैच लगाकर पहनते हैं।

भ्रान्तियों और अन्धविश्वासों की कोई सीमा नहीं होती, क्योंकि अज्ञानता के कारण मस्तिष्क सदैव उलझा रहता है और विचारशक्ति क्षीण होने के कारण व्यक्ति कभी भी सही दिशा में नहीं चल सकता। व्यर्थ के अन्धविश्वासों से बचें!

अंधविश्वास : 105 : पीपल अथवा वट वृक्ष के चारों ओर धागा बाँधने तथा उसके फेरे लेने से कुँआरी कन्याओं को मनचाहा वर मिलता है और विवाहित स्त्रियों के पति की आयु लम्बी होती है।

निर्मूलन : पीपल और वट वृक्षों का आयुर्वेद में महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनमें अनेक रोगों को जड़ से उखाड़ने के गुण विद्यमान हैं। पीपल एकमात्र ऐसा वृक्ष है जो कभी सूखता नहीं; सदा हरा-भरा रहता है। उसी प्रकार वट वृक्ष के भी अपने गुण हैं। जितनी ऑक्सीजन इन दोनों वृक्षों से प्राप्त होती है, अन्य किसी वृक्ष से नहीं मिलती। इन्हीं गुणों के कारण इन वृक्षों को पवित्र माना जाता है। अतः इन वृक्षों के नीचे लघुशंका या शौच आदि नहीं करना चाहिए।

इन वृक्षों के चारों ओर धागा बाँधने से या इनकी परिक्रमा करने से कुँआरियों को मनचाहा वर मिलता है और विवाहित स्त्रियों के पतिदेव की आयु लम्बी होती है—ये मान्यताएँ निःसार हैं। धागा बाँधने या वृक्षों की परिक्रमा करने से मनचाहा वर मिलने और पति की आयु लम्बी होने से कोई सम्बन्ध नहीं है।

इन वृक्षों की पूजा करना अर्थात् उनका सही उपयोग करने से अनेक शारीरिक लाभ होते हैं। कैसे होते हैं वे आयुर्वेद के विशेषज्ञों से ही जानकारी प्राप्त हो सकती है। अगरबत्ती जलाकर या वृक्ष पर धूप-दीप रखकर तथा धागे-डोरे बाँधकर वृक्षों की पूजा करने से कोई लाभ नहीं।

अंधविश्वास : 106 : लाल सुपारी तथा पान के पत्तों से ही गणपति का पूजन करने से गणपति प्रसन्न होते हैं।

निर्मूलन : गणपति का यजन-पूजन मनुष्य की पवित्र भावनाओं से होता है, परोपकारी कर्मों से होता है, सब प्राणियों की सेवा से होता है, धर्माचरण से होता है।

पान के पत्ते, लाल सुपारी या नारियल इत्यादि को पत्थर की प्रतिमा के सामने रखने, धूप-दीप जलाने और हाथ जोड़ने से कोई लाभ नहीं—केवल समय की बर्बादी है।

लोगों से अक्सर ऐसा सुनने में आता है कि—"मानो तो देव, नहीं तो पत्थर"। ठीक ही कहा है—देनेवाले को देवता कहते हैं। जो दिव्य गुणों से युक्त होता है, उसे भी देवता कहते हैं। केवल मान लेने से कोई देवता नहीं बन जाता। सत्य सत्य ही होता है, वह कभी बदलता नहीं है; केवल मान लेने से असत्य भी सत्य नहीं बन सकता। पत्थर तो पत्थर ही रहता है, देवता नहीं बन सकता। इसी प्रकार देवता भी देवता होता है, कभी पत्थर नहीं बन सकता।

गणपति ईश्वर का गौणिक नाम है, परन्तु जिसकी बात आप कर रहे हैं वह पत्थर की मूर्ति है, गणपति नहीं। पत्थर के सामने सुपारी रखी जाए अथवा सोने की अँगूठी, उसे क्या अन्तर पड़ता है? लाख धूप-बत्ती जलाएँ इससे उस पत्थर के गणपति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, उल्टा इससे तो वास्तविक गणपति अर्थात् परमपिता परमात्मा अप्रसन्न ही होते हैं। सुपारी और पत्ते गणपति पर चढ़ाने से तो बेहतर है कि उनका स्वयं उपयोग कर आनन्द लिया जाए।

अंधविश्वास : 107 : पत्थर से बनी गणपति की मूर्तियों ने दूध पीकर सारे संसार को चकित कर दिया।

निर्मूलन : 21 सितम्बर 1995 की इस घटना ने पूरे संसार को चकित कर दिया कि गणपति देवता दूध पी रहे हैं और अपने जन्म-जन्मान्तरों की प्यास बुझा रहे हैं।

मनुष्य ने जहाँ इतनी तरक्की की है कि वह अपने कदमों के निशाँ चन्द्रमा पर छोड़ आया है और तारों को छूने का प्रयास कर रहा है, अपने मकान अन्तरिक्ष में बनाने की कोशिश कर रहा है तथा अपने आत्मिक बल एवं तेजस्वी बुद्धि से प्राकृतिक नियमों को वैज्ञानिक रूप देता जा रहा है, वहाँ अन्धविश्वास-ग्रसित लोगों ने अपनी ही अज्ञानता के कारण कि 'गणपति की प्रतिमा दूध पी रही है' एक चमत्कार कहकर विश्व-भर में अपना ही मज़ाक उड़वा लिया।

संसार के इतिहास में इतनी बड़ी हास्यास्पद घटना आज तक नहीं हुई कि पत्थर की मूर्तियाँ दूध की प्यासी हो उठीं। गुरुवार के दिन, 21 सितम्बर 1995 की प्रातः से ही अफवाह फैली कि सभी मन्दिरों में गणपति की मूर्तियाँ दूध पी रही हैं और सबके हाथ से चम्मच से दूध पी रही हैं। फिर खबर फैली कि जहाँ-जहाँ गणपति विराजमान हैं, चाहे घर में हों या किसी नुक्कड़ में हों, रस्ते पर हों या किसी आँगन में, सभी मूर्तियाँ दूध ग्रहण कर रही हैं; कलाकार की काल्पनिक कला का प्रदर्शन करनेवाली प्रतिमाओं ने और चाँदी से बनी प्रतिमाओं ने एक-साथ दूध पीना प्रारम्भ कर दिया है। इस समाचार को प्रत्यक्ष देखने के लिए लोग अपना कामकाज छोड़कर इस तरह से मन्दिरों की ओर भागे कि मानो कुछ चमत्कार हो गया हो। इस दृश्य को देखने के लिए गली-कूचों में, मन्दिरों में भीड़ जमा होने लगी और सभी की ज़ुबाँ पर एक ही बात थी कि आज का यह दिन चमत्कारी है, क्योंकि गणपति महाराज दूध पी रहे हैं। लोगों ने दूध लाकर गणेश की मूर्ति की सूँड में दूध पिलाया, परन्तु केवल चम्मच से! कमाल की बात यह थी कि सब मूर्तियाँ (गणपति, शिवशंकर, पार्वती, नंदी बैल तथा शिवजी के गले में लिपटे साँपों ने भी) दूध पिया।

यहाँ तक कि दिवंगत पुण्यात्माओं की प्रतिमा भी दुग्धपान से वंचित न रहीं। गुरुजनों की मूर्तियों को भी कई लोगों ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से चम्मच से दूध पिलाया।

इस अफवाह को लोगों ने टेलीफोन से, फैक्स से तथा ई-मेल से देश-विदेश में एक-दूसरे तक पहुँचाया। दूरदर्शन पर भी यह समाचार दिखाए जाने लगे, यहाँ तक कि बी.बी.सी. ने भी समाचार दिया कि 'भारत में हिन्दुओं के भगवान गणपति की मूर्तियाँ दूध पी रही हैं!' इन ख़बरों से लोगों में और भी उत्साह एवं श्रद्धा जागी। अब तो छुट्टी-जैसा वातावरण बन गया। कारोबार में, कार्यालयों में, दुकानों में, हर स्थान पर एक ऐसा वातावरण बन गया कि चलो आज हम भी गणपति को दूध पिलाएँ। विदेशों से भी यही खबर आने लगी कि जहाँ-जहाँ भारतवासी रहते हैं, वहाँ-वहाँ के गणपति दुग्धपान कर रहे हैं।

मैंने स्वयं (मदन रहेजा) इस चमत्कार (अन्धविश्वास) को एक मन्दिर में जाकर देखा कि पत्थर की बनी गणपति की प्रतिमा केवल दूध ही पी रही हैं। मन्दिर में अनेक लोगों से बातचीत की। सबने एक ही उत्तर दिया कि गणेश जी चम्मच से ही दूध पी रहे हैं।

घर आकर मैंने भी गणपति की प्रतिमा (जो केवल शो-पीस है) पर प्रयोग किया कि वह प्रतिमा भी दूध पीती है अथवा नहीं! दूध से भरा चम्मच गणपति के दाँत पर लगाया। एक-दो बूँदें प्रतिमा से लगकर नीचे गिरीं और एक धार सी बन गई। नीचे देखा तो प्रतिमा से गिरा दूध उसी धार से नीचे जमा हो रहा है। चम्मच तो खाली हो गया, परन्तु दूध ज़मीन पर गिर चुका था। चूँकि मैं स्वयं विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ, ऐसी अनहोनी बात को बिना प्रमाण के कैसे मान सकता था? और वैदिक-धर्मी होने के नाते कैसे स्वीकार कर सकता था कि पत्थर भी कभी दूध पीते हैं, केवल दूध, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं! तीन-चार बार वही प्रक्रिया रही और बात समझ में आ गई।

क्या वास्तव में गणपति की मूर्ति ने दूध पिया?
क्या गणपति दूध पी सकते हैं?
यदि गणपति ने दूध पिया तो वह कहाँ गया?
गणपति ने केवल दूध ही क्यों पिया?
सारी दुनिया ने इसको चमत्कार माना, तो क्या वे सभी अज्ञानी

और अन्धविश्वासी होंगे?

मैंने निष्कर्ष निकाला कि न तो गणपति की मूर्ति दूध पीती है, न गणपति दूध पी सकते हैं और न ही भविष्य में भी गणपति महाराज दूध पी सकेंगे अथवा कोई अन्य खाद्य पदार्थ खा सकते हैं।

गणपति का वैदिक अर्थ है 'गणों का पति' अर्थात् जिन-जिन वस्तुओं की गणना हो सकती है अथवा जिन वस्तुओं का अस्तित्व होता है (दृस्य अथवा अदृश्य) उन सबका पति अर्थात् उनका स्वामी। वेदों में ईश्वर के अनेक अलंकारिक और गौणिक नामों का वर्णन है जिनमें 'गणपति' भी एक गौणिक नाम है। वह परमपिता परमात्मा का ही नाम है—सबका पति अर्थात् स्वामी होने से गणपति है। **'गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे'** (यजुर्वेद)

जैसा कि सभी धर्म-प्रेमी लोग जानते हैं कि वह परमात्मा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, अखण्ड, निरवयव, निर्विकार और निराकार है, वह एक ही है। गणपति की मूर्ति जो हम देखते हैं वह एक अच्छे सुलझे हुए कलाकार द्वारा निर्मित ईश्वर के गुणों का एक काल्पनिक रूप है। वास्तव में गणपति का रूप कोई भी व्यक्ति न तो बता सकता है और न ही बना सकता है, क्योंकि वह परमेश्वर आकार-रहित और अखण्ड है। परमात्मा एक चेतन तत्त्व है। उसका कोई रूप-रंग अथवा आकार नहीं है। मनुष्य मूर्ति बनाकर स्वयं ही भ्रमजाल में फँस जाता है कि वह मूर्ति ही परमात्मा का रूप है। पत्थर की पूजा करके वह अपनी अज्ञानता का ही प्रदर्शन करता है।

पानी, दूध इत्यादि जो भी तरल पदार्थ होते हैं, उनका एक लक्षण होता है कि जहाँ भी ढलान होती है वहाँ अपना रास्ता बनाकर बहने लगता है। इसी गुरुत्वाकर्षण के कारण झरने नदियों के रूप में पहाड़ों से गिरते हैं। संगमरमर की मूर्तियाँ सफेद और चिकनी होती हैं और दूध भी सफेद और चिकना होता है। जब दूध से भरा चम्मच गणपति की सूँड या दाँत पर लगाया जाता है (मूर्ति में किसी भी स्थान पर चम्मच को लगाएँ एक ही बात है) और चम्मच को थोड़ा-सा टेढ़ा करते हैं तो थोड़ा दूध मूर्ति को लगते ही नीचे गिरता है। दूध की कुछ बूँदें ही नीचे गिरने का रास्ता बना लेती हैं। चम्मच में शेष बचा

दूध अपने रास्ते से धीरे-धीरे नीचे गिरने लगता है और बह जाता है। प्रतीत ऐसा होता है कि मूर्ति ने दूध पी लिया, किन्तु वास्तव में इस प्रक्रिया को विज्ञान में सर्फेस-टेंशन (Surface Tension) कहते हैं। सफेद दूध, सफेद मूर्ति और सफेद फर्श की ढलान और उसका आखिरी छोर गटर से मिलता है। जब मूर्ति को धोते हैं तो पानी कहाँ जाता है? मोरी द्वारा गटर में बह जाता है। उसी प्रकार दूध से भरा चम्मच मूर्ति पर लगते ही हाथ के हिलने से खाली हो जाता है। चम्मच पकड़नेवाले की नज़रें चम्मच के सिरे पर जमी रहती हैं और चम्मच में दूध इतनी कम मात्रा में होता है कि बहते हुए दिखाई नहीं देता। अन्धश्रद्धा के कारण श्रद्धालु इतना अन्धा हो जाता है कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसे वास्तविकता से अवगत कराता है तो वह उसे ही नास्तिक कहने लगता है।

जड़ वस्तु होने के कारण किसी भी मूर्ति में चेतन-जैसी भूख-प्यास का अनुभव नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी देवी-देवता अथवा महापुरुष की मूर्ति जड़ होने के कारण, अचेतन होने से उसमें कभी भी भूख-प्यास जैसी अनहोनी बात नहीं घट सकती। ये सब बेकार की बातें हैं, नादानी की बातें हैं, अपने-आप को ही ठगने की बातें हैं। इसमें केवल अपनी ही मूर्खता का प्रदर्शन होता है।

भारत के जाने-माने अनेक वैज्ञानिकों ने भी अपनी राय देते हुए कहा कि मूर्तियों ने कोई दूध नहीं पिया। यह सब अन्धविश्वास और नज़रों का धोखा है कि मूर्तियों ने दूध पिया। कई स्थानों पर तो इतना दूध पिलाया गया कि वह बहता हुआ कीचड़ का रूप धारण करता गया। उसी दिन मुम्बई-स्थित गणपति के प्रमुख मन्दिर 'सिद्धिविनायक मंदिर' के बाहर नोटिस-बोर्ड लगाया गया कि हमारे गणपति दूध नहीं पी रहे हैं, सारा दूध गटर में बह रहा है, कृपया यहाँ दूध न पिलाएँ। यह समाचार टी.वी. में दूरदर्शन पर दिखाया गया एवं अनेक समाचार-पत्रों में अगले दिन मुख्य समाचार में छापा गया।

क्या आप जानते हैं कि उस दिन गणपति की मूर्तियों ने कितना दूध पिया?

सरकार को केवल दिल्ली में ही एक लाख लीटर दूध की अतिरिक्त पूर्ति करनी पड़ी। अब स्वयं कल्पना करें कि पूरे देश और विश्व-भर में कितने करोड़ लीटर दूध को व्यर्थ ही गटरों में बहा दिया गया। उस दिन कितने मासूम बच्चों ने घर में दूध नहीं पिया होगा! मज़ाक-मज़ाक में (अन्धविश्वास के कारण) करोड़ों लीटर दूध, जिसको अमृत कहते हैं, किसी के भी काम नहीं आया। यकायक दूध का भाव 18 रुपए से बढ़कर 100 रुपए प्रति लीटर तक बिका। दिल्ली का समाचार था कि वहाँ दूध की कीमत 100 रुपए प्रति लीटर हो गई। इसका लाभ किसको हुआ? इसका पाप किसको लगेगा? उत्तर दें!

अंधविश्वास : 108 : आकाश में टूटते तारे को देखना अशुभ होता है।

निर्मूलन : किसी भी चीज का टूटना अर्थात् दो या उससे अधिक हिस्सों में बँट जाना किसी को भी अच्छा नहीं लगता। इससे उस चीज़ की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। इसी बात को ध्यान रखकर लोगों में यह अन्धविश्वास फैला हुआ है कि यदि तारा टूटता है तो कुछ अशुभ होता है और उसको देखना तो बहुत ही अशुभ होता है। परन्तु यह धारणा बिल्कुल निराधार है।

जब से संसार का निर्माण हुआ है, ऐसी घटनाएँ प्रायः होती ही रहती हैं। तारे टूटते ही रहते हैं और उन टूटते तारों को लोग देखते भी रहते हैं। कई लोगों का मानना है कि तारे को टूटते हुए देखते समय तुरन्त ही अपने किसी वस्त्र (दुपट्टा अथवा रुमाल इत्यादि जो भी हाथ लगे) में गाँठ लगाने से मनोकामना सिद्ध हो जाती है। अतः एक ही घटना को कुछ लोग शुभ मानते हैं तो कुछ लोग बहुत ही अशुभ मानते हैं।

तारा टूटना या जुड़ना, अपनी परिधि में घूमते हुए जर्जर खण्डों का अलग हो जाना, घर्षण से तारा-पिण्डों के टुकड़े अंतरिक्ष से गिरना प्रकृति के अटूट नियमानुसार होता है। इससे किसी का बुरा या भला होना सम्भव नहीं है। तारे इस पृथ्वी से अरबों-खरबों कोसों की दूरी पर स्थित होते हैं जिनकी सही दूरी अभी तक मनुष्य नाप नहीं सका

है। इस प्रकार इतने बड़े ब्रह्माण्ड में तारे हर क्षण टूटते और बनते रहते हैं। यह तो एक सामान्य प्रक्रिया है। इसका कोई प्रभाव हमारे जीवन पर नहीं पड़ता। यदि तारे टूटकर इस पृथ्वी के समीप आ जाएँ तो उससे पृथ्वी पर रहनेवाले सभी प्राणियों का अशुभ अवश्य हो सकता है, परन्तु ईश्वर की व्यवस्था में ऐसा नहीं भी होता। आप निश्चिंत रहें कि जो तारे हमें टूटते दिखाई देते हैं वे हमसे इतनी अधिक दूरी पर हैं कि उनका प्रभाव हम पर शायद ही कभी पड़े।

अंधविश्वास : 109 : क्रिकेट के कई खिलाड़ी प्रातःकाल नींद से उठते समय बाईं करवट से उठने एवं पहले बाईं टाँग पर पैड बाँधना अशुभ मानते हैं।

निर्मूलन : मनुष्य के शरीर में दो ही करवट होती हैं—दाईं अथवा बाईं। मनुष्य जब भी उठेगा तो वह या तो बाईं से उठेगा या दाईं ओर से। कुछ लोग सीधे मुँह भी उठते हैं जोकि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जो यह जानते हैं कि सीधे मुँह उठना हानिकारक है, उन्हें दाईं या बाईं करवट से ही उठना पड़ेगा। वैसे भी बाईं ओर से उठना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है, क्योंकि बाईं ओर हृदय होता है और उठते समय शरीर के भार के कारण हृदय पर दबाव न पड़े, इससे हमें हानि हो सकती है, इसीलिए डॉक्टर लोग कहते हैं कि हमें दाईं ओर से ही उठना चाहिए।

जैसा कि आप जानते हैं कि क्रिकेट सम्भावनाओं का खेल है। एक पारी में यदि कोई खिलाड़ी शतक लगाता है तो दूसरी पारी में वह शून्य पर भी आउट हो सकता है। कोई विख्यात खिलाड़ी जोकि बार-बार कम रन बनाकर जल्दी ही आउट हो रहा हो और लोगों के साथ-साथ उसे भी निराशा हो रही हो तो वह इस बात पर ध्यान देना शुरू करता है कि आज सुबह मैं कौन-सी करवट उठा था? जब वह पाता है कि वह जब भी जल्दी आउट हुआ, उस दिन वह बाईं करवट उठा था तो उसे यह वहम हो जाता है कि बाईं करवट उठने से ही वह इतने कम रन बना पाया है। अगली बार मैचवाले दिन वह दाईं करवट उठता है और उस दिन सौभाग्य से वह अच्छे रन बना लेता है तो उसे विश्वास हो जाता है कि पहले बाईं करवट उठने के कारण

ही वह इतने कम रन बना पाया।

इसी प्रकार जो लोग क्रिकेट खेलते हैं, उन्हें अपनी दोनों टाँगों पर पैड बाँधकर जाना होता है तो स्वाभाविक ही है कि दोनों पैड एक-साथ तो बँध नहीं सकते। एक पैड पहले दाईं अथवा बाईं टाँग पर बाँधना पड़ेगा। जैसा कि बाईं करवट उठने से वह कम रन बना पाया था तो वह पैड पर भी ध्यान देना शुरू करता है कि पहले किस टाँग पर पैड बाँधा था जो कम रन बने। अगली बार वह दूसरी टाँग पर पहले बाँधता है। यदि दूसरी टाँग पर पैड पहले बाँधने से उसके रन अच्छे बनते हैं तो वह यह विश्वास करने लगता है कि पहले इस टाँग पर ही पैड बाँधना चाहिए जिससे रन अच्छे बनते हैं। जब प्रख्यात खिलाड़ी अपनी इन बातों को दूसरे खिलाड़ियों को बताते हैं तो वे भी उनकी इन बातों पर विश्वास करने लग जाते हैं। इस प्रकार देखा-देखी दूसरे खिलाड़ियों ने भी यही मान्यता बना ली और निश्चय कर लिया कि पहले बाईं ओर पैड बाँधना अशुभ होता है।

किन्तु यह बात तर्कसंगत नहीं है। यह कोई नियम नहीं है। हो सकता है कि कोई खिलाड़ी पहले दाईं टाँग पर पैड बाँधने से अच्छे रन बनाता हो! उसकी मान्यता इसके विपरीत हो सकती है। इन बातों से कुछ भी शुभ या अशुभ नहीं होता।

अंधविश्वास : 110 : अमावस्या को वस्तुओं का दान देना शुभ होता है।

निर्मूलन : यदि अमावस्या के दिन वस्तुओं का दान देना शुभ होता है तो अन्य दिनों में दान देना क्या अशुभ होता है? दान तो कभी भी दें, उससे शुभ ही शुभ होता है।

याद रहे, कोई भी कार्य यदि शुभ है तो वह कभी भी कहीं भी किया जाए, उसका फल सदैव शुभ ही प्राप्त होता है, कभी अशुभ नहीं हो सकता।

अमावस्या हो या पूर्णिमा, दशहरा हो या दीपावली, सभी दिन शुभ होते हैं। दिन तो सभी समान होते हैं। इनको शुभ या अशुभ बनानेवाले हम कौन होते हैं? हम किसी दिन भी दान दें उसका महत्त्व कम नहीं होता, क्योंकि यह एक शुभ कार्य है और किसी शुभ कार्य

को करने के लिए किसी अमावस्या या पूर्णिमा की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। शुभस्य शीघ्रम्!

अंधविश्वास : 111 : मराठवाड़ा में भोजन करते समय नमक की आवश्यकता पड़ने पर नमक के स्थान पर मीठा लाने को कहते हैं। नमक माँगना अशुभ मानते हैं।

निर्मूलन : नमक को नमक न कहकर गुड़ कहें, क्या यह समझदारी की बात है? किसी वस्तु का नाम बदलने से तो वह वस्तु नहीं बदलती! या उस वस्तु के गुणों में तो कोई परिवर्तन नहीं होता!

यदि मराठवाड़ा से बाहर किसी ने नमक के बदले में गुड़ माँगा और सामने से गुड़ पेश किया गया तो क्या होगा? तब नमक ही तो माँगना पड़ेगा! वैसे ही गुड़ की आवश्यकता हो और गुड़ माँगने पर नमक मिले तो प्रतिक्रिया कैसी होगी?

वैसे आपने भी सुना होगा कि किसी का नमक खाकर नमकहरामी नहीं करनी चाहिए। इस धारणा को ध्यान में रखते हुए जब किसी व्यक्ति को नमकहरामी करनी पड़ी होगी और उसके मन में यह होगा कि नमक खाकर नमकहरामी नहीं करनी चाहिए, तो उसने अपने मन को समझाने के लिए ही नमक को गुड़ कहकर माँगा होगा। उसने नमक का नाम ही नहीं लिया होगा, ताकि वह नमकहराम न कहला सके।

नमक को नमक कहना और गुड़ को गुड़ कहना, अशुभ समझना, अन्धविश्वास नहीं तो और क्या है? नमक को गुड़ कहेंगे तो फिर गुड़ को क्या कहेंगे? अतः जिस वस्तु का जो नाम है उसे उसी नाम से पुकारना चाहिए। यही उचित है।

अंधविश्वास : 112 : इंग्लैंड में नई कार चलाने के पूर्व उस पर पुराना जूता फेंकना शुभ मानते हैं।

निर्मूलन : नई कार पर अगर पुराना जूता फेंकने से शुभ होता है तो नया जूता क्या अशुभ है? इससे इंग्लैंडवासियों का शुभ ही शुभ होगा क्योंकि जिस व्यक्ति को नया जूता मुफ्त में प्राप्त होगा वह अवश्य ही जूता फेंकनेवाले व्यक्ति को दुआएँ देगा। भारतवर्ष में भी इससे मिलता-जुलता अन्धविश्वास है कि गाड़ी के पीछे पुराना जूता लटकाने

से अशुभ नहीं होता और नजर नहीं लगती।

यहाँ दो बातें समझ में आती हैं। पहली बात यह कि या तो अंग्रेजों ने हमारी नकल कर अपने पुराने जूतों को नई गाड़ियों के ऊपर फेंकना शुभ माना, और दूसरी यह कि इन अंग्रेज़ों की देखा-देखी हम भारतीयों ने अपनी गाड़ियों के पीछे पुराने जूते लटकाना शुभ माना। दोनों ही अन्धविश्वास में एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर हैं।

अंग्रेजों ने हमारे देश पर कई सदियों तक शासन किया। हमने कई बातें उनसे सीखीं और उन्होंने भी हमारे यहाँ की अनेक बातें सीखीं। परन्तु खेद की बात है कि हम (मनुष्य) बुराइयों को तथा अन्धविश्वासों को शीघ्र ही अपना लेते हैं और अच्छाइयों (वास्तविकता) को बहुत देर बाद ग्रहण करते हैं और तब तक उम्र कट चुकी होती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ठीक ही कहा है कि "सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।"

अंधविश्वास : 113 : पश्चिमी देशों में यहाँ तक कि भारत में भी एक दियासलाई से तीन सिगरेट जलाना अशुभ मानते हैं।

निर्मूलन : यह तो अच्छा है कि एक दियासलाई से दो के जीवन बिगड़ते हैं—तीन के नहीं!

सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। वह विषय अलग है, इस समय इसकी चर्चा नहीं करेंगे। परन्तु एक तीली से एक सिगरेट जलाएँ या उससे अधिक, इसमें केवल अशुभ ही अशुभ होता है, शुभ कभी नहीं होता।

माचिस की तीली सिगरेट ही नहीं जलाती, सिगरेट पीनेवालों का भाग्य भी जलाती है। समझदार को इशारा काफी है। आशा है जो सिगरेट पीते होंगे वे इससे कुछ शिक्षा प्राप्त करेंगे!

सिगरेट का धुआँ हर प्रकार से हानि करता है। इससे बचें! सिगरेट के धुएँ में अनेक प्रकार के विष होते हैं। अत: न तो आप स्वयं सिगरेट-बीड़ी इत्यादि का सेवन करें और न दूसरों पर धुआँ छोड़ें। धूम्रपान छोड़ने से आपका तो लाभ होगा ही, किन्तु जो लोग सिगरेट नहीं पीते और उन्हें आपके छोड़े हुए धुएँ के कारण जो कष्ट

होता है, इससे वे भी बच जाएँगे। यदि हम किसी का भला नहीं कर सकते तो हमें किसी की हानि भी नहीं करनी चाहिए।

अंधविश्वास : 114 : भावना सच्ची हो तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाता है।

निर्मूलन : जो कार्य असम्भव है वह सम्भव कैसे हो सकता है! उसे असम्भव कहा ही इसलिए जाता है क्योंकि वह कभी सम्भव नहीं हो सकता, और जो सम्भव है (हो सकता है) उसे असम्भव कहना मूर्खता है। इसलिए भावना का सम्भव-असम्भव से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जैसे आत्मा अमर है (अमर अर्थात् अ+मर=अमर; अ=नहीं) जो कभी मर नहीं सकता। यदि आत्मा मर सकता है तो उसे अमर नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आत्मा का मरना सम्भव नहीं है, इसलिए यह असम्भव है। जब हम यह कहते हैं कि यह असम्भव है (असम्भव अर्थात् अ+सम्भव=असम्भव; अ=नहीं) तो वह कभी सम्भव नहीं हो सकता।

भावना कहते हैं मन के विचार को। इसे अंग्रेज़ी में Feeling कहते हैं। अग्नि जलाती है, जल शीतलता प्रदान करता है, वायु सुखाती है। अब इसके विपरीत भावना करके देखिए! यह भावना बनाकर अपना हाथ अग्नि में डालकर देखिए कि अग्नि हाथ को नहीं जलाएगी, तो क्या वास्तव में आपका हाथ नहीं जलेगा? गर्मी में ठंडे पानी से स्नान कीजिए और सोचिए कि मुझे शीतलता प्राप्त नहीं हो रही, क्या यह सम्भव है? गीले वस्त्रों को हवा में सूखने के लिए डालिए और ऐसी भावना बनाइए कि वस्त्र न सूखें, क्या केवल आपकी भावना से ऐसा हो पाएगा? इन सबका उत्तर है, नहीं। ऐसा सम्भव नहीं है।

एक और प्रयोग करके देखें। आपको दूध की आवश्यकता है और आपके घर में दूध नहीं है। आप सच्ची भावना से पानी का गिलास भरकर रख लीजिए और ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि यह दूध बन जाए। क्या ऐसा होगा? नहीं। किसी पत्थर की मूर्ति के सामने मिठाइयाँ और फल रख दीजिए और सच्ची भावना से ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि हे ईश्वर! आप इन वस्तुओं का भोग लगाइये। तो क्या वह मूर्ति

उन वस्तुओं का भोग लगाएगी ? कदापि नहीं। रात्रि में रखी गई मिठाइयों और फलों का भोग चीटियाँ और चूहे इत्यादि लगा चुके होंगे।

वास्तविकता को तो मान्यताओं के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, यह ठीक है। किन्तु मान्यताओं को वास्तविकता में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। जो वस्तु जैसी है उसे वैसी जानना, मानना और कहना सत्य कहलाता है और जो इसके विपरीत होता है वह असत्य कहलाता है।

ईश्वर ने सृष्टि में कुछ नियम बनाए हैं जिन्हें "ऋत" कहते हैं, जिनमें कभी परिवर्तन नहीं होता। अतः सम्भव कभी असम्भव नहीं हो सकता और असम्भव कभी सम्भव नहीं हो सकता। ईश्वर का विधान अटल है अर्थात् अपरिवर्तनशील है।

अंधविश्वास : 115 : इस संसार में चौरासी लाख योनियाँ होती हैं।

निर्मूलन : योनियाँ अनगिनत हैं, जिनकी गिनती करना मनुष्य के लिए असम्भव है। किसी भी आर्ष ग्रन्थ में नहीं लिखा है कि चौरासी लाख योनियाँ होती हैं। पृथ्वी के ऊपर, पृथ्वी के अन्दर, समुद्र के भीतर तथा आकाश में अनेक प्रकार के जीव रहते हैं, अनेक प्रकार के पशु-पक्षी वास करते हैं, परन्तु आज तक किसी ने भी उनकी गणना नहीं की है। वेदादि आर्ष ग्रन्थों में इसका कोई प्रमाण न होने के कारण यह भ्रान्ति है। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है और किसी भी वैज्ञानिक ने यह दावा नहीं किया है कि इस सृष्टि में चौरासी लाख योनियाँ होती हैं। वे भी ऐसा ही मानते हैं कि योनियों की गणना नहीं की जा सकती, वे असंख्य हैं। टी.वी. में डिस्कवरी नामक एक प्रसिद्ध चैनल है जिसमें विज्ञान की नई-नई खोजों का प्रदर्शन किया जाता है। इस चैनल ने भी कभी योनियों की निश्चित संख्या की जानकारी नहीं दी। विभिन्न वैज्ञानिक प्रतिदिन प्रकृति के नियमों तथा अनेक अज्ञात जीवों की खोज करते रहते हैं। उनका कहना है कि इतना परिश्रम करने के पश्चात् भी वे इस संसार के सभी जीवों के विषय में नहीं जान सकते। ब्रह्माण्ड के अनेक लोक-लोकान्तरों में हमारी पृथ्वी के

समान अनेक पृथ्वियाँ विद्यमान हैं। वहाँ भी अनेक जीव-जन्तु निवास करते हैं। जिस प्रकार अनगिनत लोक हैं, वैसे ही इनमें रहनेवाले जीव भी अनगिनत हैं।

ईश्वर, जीव के कर्मों का फल जाति, आयु और भोग के रूप में प्रदान करता है। कर्मों की सूची इतनी विशाल है कि उसे कोई भी जान नहीं सकता है। जीवों के अनेक कर्मों के फलस्वरूप योनियों का अनेक होना स्वाभाविक है। "लख चौरासी का चक्कर" यह एक कहावत-मात्र है जो कि केवल हिन्दुओं में ही प्रसिद्ध और प्रचलित है जिसका न तो सर है और न ही पैर!

योनियों की गिनती न तो आज तक कोई कर पाया है और न ही कभी कर पाएगा। अतः वैदिक मान्यतानुसार योनियाँ अनेक हैं—ऐसा कहना, समझना और मानना ही उचित है।

अंधविश्वास : 116 : ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना, विष्णु द्वारा सृष्टि का संचालन और महेश के द्वारा सृष्टि की प्रलय होती है।

निर्मूलन : आपने बिलकुल सत्य कहा है, यह भ्रान्ति नहीं है, परन्तु यहाँ एक बात समझना आवश्यक है कि जो सृष्टि की रचना करता है, उसका पालन करता है और जो अन्त में सृष्टि का संहार करता है, वे तीनों जुदा-जुदा हैं या वह कोई एक ही सत्ता है? इस भ्रान्ति को दूर करना अत्यावश्यक है।

ईश्वर एक है, अद्वितीय है, वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। सृष्टि का निर्माण, उसका पालन-पोषण और उसका प्रलय करनेवाला केवल ईश्वर ही है जो किसी की सहायता लिये बिना अपने सब कार्य स्वयं ही करता है। इसीलिए तो उसे सर्वशक्तिमान् कहते हैं। सर्वज्ञ होने से केवल वही इस सृष्टि का निर्माण, पालन एवं संहार करता है।

अब यह शंका उत्पन्न होनी स्वाभाविक है कि यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश कौन हैं? ये तीनों उसी परम पिता परमात्मा के ही नाम हैं। ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव अनन्त होने से उसके गौणिक और आलंकारिक नाम अनन्त हैं—अनगिनत हैं।

ब्रह्मा का अर्थ है—सबसे महान्, विष्णु का अर्थ है—सबमें

व्यापक, और महेश का अर्थ है—सब (जड़ और चेतन) का ईश अर्थात् स्वामी। ईश्वर अनन्त शक्तियों वाला है और अपने सभी काम वह स्वयं ही करता है, उसका कोई सहायक नहीं है। क्योंकि हमें ईश्वर के तीन मुख्य कार्य दिखाई देते हैं—सृष्टि-रचना, उसका पालन, एवं प्रलय, इसलिए साधारण लोगों ने अज्ञानता के कारण भ्रमित होकर ईश्वर के तीन नामों (गुणों) को अलग-अलग व्यक्तित्व प्रदान कर उसे तीन भागों में बाँट दिया है। यह अनुचित है, क्योंकि ईश्वर एक और पूर्ण होने से विभाजित नहीं किया जा सकता।

अंधविश्वास : 117 : श्री रामचन्द्र में बारह कलाएँ थीं और श्री कृष्ण सोलह कला सम्पूर्ण थे। इसलिए श्री कृष्ण श्री राम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

निर्मूलन : भारतीय संस्कृति में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र और योगेश्वर श्री कृष्ण महाराज दोनों ही युग-पुरुष एवं आदर्श पुरुष थे। इनमें कोई छोटा या बड़ा नहीं।

विचारकों ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को द्वादश कलावतार और श्री कृष्ण को जो षोडष कलावतार कहा है, इसका अभिप्राय एक को दूसरे से बड़ा या छोटा कहने से नहीं, अपितु राम क्योंकि सूर्यवंशी थे और सूर्य की ज्योतिष के हिसाब से गति बारह राशियों के अन्दर होती है, इसलिए श्री रामचन्द्र महाराज को भी उन्होंने द्वादश कलाओं के अवतार के रूप में सम्बोधित कर दिया, और श्री कृष्ण क्योंकि चन्द्रवंशी थे और चन्द्रमा की कृष्ण पक्ष से शुक्ल पक्ष तक सोलह कलाएँ मानी जाती हैं, इसलिए श्री कृष्ण महाराज को षोडष कलावतार कह दिया।

श्री रामचन्द्र आज से नौ लाख वर्ष पूर्व हुए हैं और श्री कृष्ण आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व ही हुए हैं। दोनों के युगों की परिस्थितियाँ अलग-अलग थीं। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि श्री राम को जिस युग में और जिन परिस्थितियों में अपने विराट स्वप्न को पूर्ण करने का सौभाग्य मिला, कदाचित् वे परिस्थितियाँ उतनी जटिल नहीं थीं, जितनी श्री कृष्ण के समय थीं।

श्री रामचन्द्र का युग मर्यादाओं से बँधा था और श्री कृष्ण-कालीन

समाज मर्यादाओं के होते हुए भी उनको तोड़ने में ही अपनी शान समझता था। जिस युग में और जिन परिस्थितियों में श्री कृष्ण ने सफलता प्राप्त की, उस युग में और उन परिस्थितियों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम होते तो क्या करते, या रामायणकालीन परिस्थितियों में योगेश्वर श्री कृष्ण होते तो क्या करते, यह केवल कल्पना का ही विषय बन सकता है।

श्री राम या श्री कृष्ण को छोटा–बड़ा समझना भ्रान्ति है। दोनों ही महान् आत्माएँ थीं, दोनों ही पूजनीय हैं। उनके चित्र काल्पनिक ही सही, उन्हें देखकर उनके चरित्र को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

●●●

अंतिम पृष्ठ

इस छोटी-सी पुस्तक के द्वारा प्रचलित भ्रान्तियों—संशयों-अन्धविश्वासों को समझने तथा दूर करने का प्रयास किया है। आशा है कि पाठकगण इससे अधिक से अधिक लाभ उठाएँगे तथा इस पुस्तक को जनसाधारण तक पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। हर परोपकारी कार्य को ही 'यज्ञ' कहते हैं, अतः दूसरों के भ्रमों को दूर करना भी परोपकारी कार्य है। मेरा निवेदन है कि आप सभी इस यज्ञ में अपनी आहुति अवश्य प्रदान करें।

इसके अलावा किसी के मन में और कोई शंका-भ्रम हो तो लिखें, अथवा कोई सलाह देनी हो तो अवश्य भेजें ताकि आगामी संस्करण में उनको भी शामिल किया जा सके।

ओ३म् असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय॥